मानव

भारती साहित्य सदन
नई-देहली

भूमिका

यूं तो मानव नाम का प्राणी आदि काल से लेकर आज तक विद्वानो के मनन और लिखने का विषय बना रहा है। इस पर भी यह नही कहा जा सकता कि इस विषय में अब और लिखने की आवश्यकता नही रही। एक गाय, भैंस अथवा किसी इतर जन्तु का वर्णन तो समाप्त हो सकता है परन्तु मनुष्य का नही। इसमें कारण है।

मनुष्य बुद्धिशील प्राणी है। सब मनुष्यो की बुद्धि एक ही सांचे में ढलकर नही बनती। इस कारण एक ही कार्य की मानव-मन पर प्रतिक्रिया एक समान नही होती। यही कारण है कि मानव-कथाएं असख्य लिखी जाने पर भी अभी और लिखने की आवश्यकता अनुभव होती है।

मनुष्य-मनुष्य में अन्तर दिखाई देता है। एक बार एक बालक अपने पिता की छडी घुमाता हुआ चला जा रहा था। वह छडी उसके पीछे आते हुए एक देहाती भले आदमी के लग गई। बालक अपनी विशेष शिक्षा के कारण उस देहाती से क्षमा मांगने लगा। वह देहाती कहने लगा, "कुछ हानि नही बालक! इतनी सी चोट से हम लोगो का क्या होता है?"

एक अन्य स्थान पर कुछ बालक सडक पर कांटे बिछा रहे थे। एक भद्र पुरुष बाईसिकल पर आया तो बिछे कांटो से उसकी बाईसिकल पक्चर हो गई। कांटे बिछाने वाले बालक, जो कुछ अन्तर पर खडे तमाशा देख रहे थे, अपने किये का यह फल देख खिलखिलाकर हंस पडे। बाईसिकल सवार बच्चो की शरारत से क्रुद्ध हो, बाईसिकल रख उनको मारने दौडा। बच्चे भाग खडे हुए।

एक अन्य स्थान पर एक स्कूल का विद्यार्थी चला जा रहा था कि उसके पांव की ठोकर से एक रूमाल, जिसमें कुछ बँधा हुआ था, आगे को लुढका। विद्यार्थी ने रूमाल उठाया, उसे खोला और देखा कि उसमें दस-दस रुपये के कई नोट थे। विद्यार्थी ने सडक के किनारे खडे होकर आवाज़ देनी आरम्भ कर दी, "ये नोट किसके गिर गए है ? ये नोट किसके गिर गए है ?" आने-जाने वालो की भीड एकत्रित होने लगी। एकाएक एक युवक भीड में से आगे बढ, उस लडके के हाथ से रूमाल छीन, सबके देखते-देखते भाग गया।

इस प्रकार की भिन्नता सस्कारो के कारण कही जाती है, परन्तु एक गाय, भैंस अथवा इतर जन्तुओ में सस्कारो से इतनी विलक्षणता नही आती। एक गाय को भूख लगी है और सामने चारा रखा हो तो गाय खायेगी ही, परन्तु भूखे मनुष्य के सामने भोजन रखने पर वह खायेगा ही, यह निश्चय से नही कहा जा सकता। वह देखेगा कि भोजन उसके विचार, स्वभाव, प्रकृति के अनुकूल है या नही। कभी कोई यह जानने का यत्न भी करेगा कि भोजन निरामिप है अथवा मांस आदि युक्त। कोई दूसरा यह देखेगा कि इसका पाचक एक गन्दा व्यक्ति है अथवा शुद्ध पवित्र। एक तीसरा यह भी देख सकता है कि इसमें घी आदि सामग्री कैसी लगी है। कोई यह भी विचार कर सकता है कि भोजन का रूप-रग अच्छा नही है, अथवा यह ठीक प्रकार मे पका नही है।

मनुष्य में इतनी भिन्नता होने में कारण है इसकी बुद्धिशीलता। सस्कार मन पर प्रभाव डालते है। वे प्रभाव बुद्धि की चलनी से छन कर छँट जाते हैं। अतएव मनुष्य-मनुष्य में विभिन्नता उसकी बुद्धि की चलनी के छिद्रो में छोटा, बडा आदि विभेद होने के कारण है।

बुद्धि बनती है पूर्व जन्मो के कर्मो के अधीन, अथवा इस जन्म की शिक्षा के आश्रय। सस्कार समान होने पर और शिक्षा समान मिलने पर भी कार्य की प्रतिक्रिया में भिन्नता यह प्रकट करती है कि

मनुष्य मे निर्णयात्मक प्रवृत्ति सस्कार और शिक्षा के अतिरिक्त किसी अन्य बात के अधीन होती है। वह है पूर्व जन्म का कर्मफल।

मानव-प्रकृति के इस विश्लेषण पर भी यह मानना पडेगा कि कोई वस्तु तो ऐसी होनी चाहिए, जो सब मनुष्यो में साझी हो। सुख, दु ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न तो सब जीवधारियो में एक समान होते हैं। इस पर भी मनुष्य और पशु में अन्तर है।

उस अन्तर का एक रूप इस पुस्तक 'मानव' में प्रकट करने का यत्न किया गया है। विचारकर अथवा बिना विचारे प्रत्येक मानव के समक्ष कुछ उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य वह अपने सस्कारो और बुद्धि के आश्रय निर्माण करता है। तदनन्तर वह उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यत्न करता है।

कभी बुद्धि मे मोटापन होने मे अथवा दूषित सस्कारो और कुशिक्षा के कारण उद्देश्य बहुत ही निकृष्ट बन जाता है। इस पर भी मानव अपनी प्रकृति के अधीन उस निकृष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही यत्नशील हो जाता है।

यह है मानव की एक बात अर्थात् यत्नशील होना। इस यत्न में सफल होना अनेक बातो पर निर्भर है। उपाय और उन उपायो के प्रयोग में कौशल मुख्य बातें हे। कभी जीवन का उद्देश्य घटिया बन जाता है और फिर उस उद्देश्य की सिद्धि में उपाय भी घटिया ही सूझ पडते हे तथा प्रयोग में लाए जाते हैं।

इस प्रकार मानव एक अति सजटिल प्राणी है। इसके पथ न्यारे-न्यारे हैं, इसके उद्देश्य न्यारे-न्यारे हैं। इस पर भी इस प्राणी को समझने की आवश्यकता है। इस समझने में यह पुस्तक एक प्रयास है।

एक बात है। मानव यत्नशील जन्तु है। यह विरोध को छिन्न-भिन्न कर अपना मार्ग बनाने की प्रकृति रखता है। यह उपन्यास इसी विचार को स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है। मनुष्य को एक समान करने (रैजिमैन्टेशन) के उपाय आदि काल से किये जा रहे हैं।

समष्टिगत शिक्षण, समष्टिगत पालन और समष्टिगत जीवन न्यूनाधिक कई बार करने का यत्न किया गया। आज तो इसका बोलबाला है। इस एकीकरण करने के बहुत प्रयत्न होने पर भी विभिन्नता और विलक्षणता रही है और कदाचित् यह सदैव रहेगी।

इस प्रकार के जटिल प्रश्न का उत्तर लिखने में पूर्ण सफलता न सही, आंशिक सफलता भी मिली है अथवा नहीं, यह देखना पाठकों का काम है। यह उपन्यास है और इसके सभी पात्र तथा स्थान काल्पनिक हैं। किसी के मान अथवा अपमान से इसका प्रयोजन नहीं।

'गुरुदत्त'

प्रथम परिच्छेद

"बाबा ! माँ रो क्यों रही है ?" एक तीन वर्ष का बालक, प्रौढावस्था के पुरुष के पास बैठा हुआ, उत्सुकता से पूछ रहा था। वह पुरुष दस बच्चों से घिरा हुआ एक कमरे मे बैठा था और चिन्ता मे बगल के कमरे की ओर देख रहा था। उस कमरे का द्वार बन्द था।

पुरुष सिर से नगा और अस्त-व्यस्त कपड़े पहने था। कमरा अच्छा-खासा बडा था। इस पर भी ग्यारह प्राणियों के उसमे बैठे होने से भरा-सा लग रहा था।

बच्चों मे सबसे वडी लडकी थी। उसकी आयु पन्द्रह वर्ष की प्रतीत होती थी। वह बहुत ही साधारण सलवार, कुर्ता पहने थी। बाल, जो कई दिनो से न धोये जाने के कारण, मैले हो रहे थे, एक चोटी मे गुँथे हुए पीठ पर लटक रहे थे। पाव से नंगी थी और हाथ घर का काम-काज करने से खुरदरे-से हो रहे थे।

दिन का तीसरा प्रहर था। बच्चे दिन का भोजन कर चुके थे। कमला, यह लडकी का नाम था, सबको भोजन करा और चौका-बासन कर, कमरे के एक कोने में दीवार से ढासना लगा विश्राम कर रही थी।

इसी समय बन्द कमरे के भीतर से एक जोर की चीख का शब्द हुआ। पुरुष का ध्यान उस ओर चला गया। वह बालक भी, जो माँ के रोने का

कारण पूछ रहा था, चीख मार कर रो पड़ा। पुरुष का ध्यान बच्चे की ओर नहीं था। बालक उठकर कमरे की ओर भागा। एक और बालक ने, जो सात-आठ वर्ष का था। आगे बढ उसकी बाँह पकड़ ली और कहा, बैठो। अन्दर मत जाओ।"

"माँ रोती है।"

"उसको दर्द हो रही है।"

"मैं माँ के पास जाऊँगा।"

"अन्दर डाक्टरनी है। वह कान कतर लेगी।"

छोटा बालक सहम कर बैठ गया।

बच्चों में सबसे छोटा एक गोदी का बच्चा था। वह बच्चों के बीच बैठे पुरुष की गोदी में सो रहा था। इस लम्बी चीख के पश्चात् भीतर के कमरे मे शान्ति हो गई। पहले, जो धीरे-धीरे ऊँ ऊँ की आवाज हो रही थी, वह भी अब बन्द हो गई थी। दो मिनट तक वह पुरुष बन्द द्वार की ओर देखता रहा। जब भीतर पूर्ण शान्ति हो गई, तो वह घबरा कर उठा। गोदी के बालक को कमला को देकर बन्द द्वार से कान लगा-सुनने का प्रयत्न करने लगा। कमरे में से पहले धीरे-धीरे, पश्चात् जोर-जोर से ऊँवाँ ऊँवाँ की आवाज आने लगी। यह एक नवजात शिशु के रोने का स्वर था। यह सुन पुरुष के मुख पर से चिन्ता की रेखाएँ विलीन हो गईं।

सबने नवजात शिशु के रोने का स्वर सुना था और वे पिता की ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देख रहे थे। कमला अभी भी दासना लगाए अपने विचारों मे लीन थी। उसके मुख पर देखने से प्रतीत होता था कि वह किसी स्वप्नलोक में विचर रही है। उसका मन उस कमरे में नहीं था।

बन्द द्वार थोड़ा-सा खुला और एक स्त्री, जो दाई प्रतीत होती थी, खुले द्वार मे से मुख निकाल कर बोली, "गरम पानी चाहिए।"

पुरुष ने कमला को पुकारा, "कमला! गरम पानी।"

कमला का स्वप्न टूटा। उसने सोये बालक को भूमि पर लिटा दिया

और कमरे से बाहर निकल गई। कमरे के बाहर बरामदे में चौका बना था। दाई के कहने से एक पतीले में पानी गरम करने के लिए पहले से ही रखा था। कमला ने पतीले का पानी एक बाल्टी में उडेल दिया और बाल्टी को उठाकर अन्दर कमरे के पास ले गई। दाई ने बाल्टी पकड़ ली और उसको भीतर ले द्वार बन्द कर लिया।

कमला ने पूछा, "पिता जी ! क्या है ?"

"पता नहीं बेटा !" पिता के मुख पर से चिन्ता की बहुत कुछ रेखाएँ मिट चुकी थीं। कमला पुनः अपने स्थान पर, सोये हुए बालक के समीप दीवार से ढासना लगा बैठ गई और अपने स्वप्नलोक में पहुँच गई।

कमला से छोटा, परमानन्द उठा और सोए बालक को गोदी में लेकर कमरे से बाहर निकल गया। पिता उसकी ओर देखने लगा, परन्तु परमानन्द ने पिता की ओर देखा तक नहीं।

परमानन्द नेकर और कमीज़ पहने हुए था। नेकर के नीचे टाँगें नंगी थीं। वह चप्पल पहन मकान की सीढ़ियाँ उतर गया।

परमानन्द से छोटा सदानन्द भी नेकर और कमीज़ पहने हुए था। वह भी उठा और नंगे पाँव ही कमरे से बाहर निकल नीचे उतर गया। दोनों मकान के नीचे गली में जा खड़े हुए।

परमानन्द की आयु चौदह वर्ष की थी और सदानन्द की साढे बारह वर्ष। दोनों अपने तीन-चार भाई-बहनों के जन्म को देख चुके थे और उनको भली भाँति स्मरण था कि जैसा आज हुआ था, वैसा ही पहले भी हुआ करता था। गरम पानी बन्द कमरे में गया तो वे समझ गए कि उनका एक और भाई अथवा बहन आई है।

परमानन्द मकान की ड्योढ़ी में बच्चे को गोदी में लिये हुए बैठ गया। सदानन्द उसके समीप खड़ा हो पूछने लगा, "इसका क्या नाम होगा ?"

परमानन्द ने मुस्करा कर पूछा, "लड़का है या लड़की ?"

सदानन्द को यह विदित नहीं था। इस कारण चुप रह गया। इस

समय एक पडोसिन हाथ मे गागरा लिये गली के कूएँ से पानी भरने आई और ड्योढी मे दोनो बालको को बैठा देख पूछने लगी, "पमी ! क्या आया है तुम्हारे घर ? भाई या बहन ?"

"पता नही।"

"कितने हो गए हो तुम ?"

परमानन्द मुस्कराया और पडोसिन, "भाग्यवान है तुम्हारी माँ।" कहती हुई कूएँ की ओर चली गई।

परमानन्द के पिता का नाम नन्दलाल था। उसका विवाह बीस वर्ष की आयु मे हुआ था। उस समय उसकी स्त्री, लक्ष्मी पन्द्रह वर्ष की थी। विवाह के एक वर्ष के भीतर ही कमला का जन्म हुआ और फिर डेढ-डेढ वर्ष के अन्तर पर परमानन्द, सदानन्द और देवानन्द तीन लडके उत्पन्न हुए। इस समय नन्दलाल पच्चीस वर्ष से ऊपर का हो गया था और लक्ष्मी बीस वर्ष से ऊपर हो गई थी।

नन्दलाल एक वकील कॅवरसेन का मुन्शी था। अच्छी आय हो जाती थी। इस कारण चार बच्चो के हो जाने पर भी, वह कुछ कठि-नाई अनुभव नही करता था। केवल लक्ष्मी जल्दी-जल्दी बच्चे होने से लज्जा अनुभव करने लगी थी। उसने पडोसी स्त्रियो को कहते सुना था, "कुतिया की भॉति बच्चे पैदा करती जाती है।"

इस समय एक घटना घटी। कॅवरसेन की आयु चालीस वर्ष की हो गई थी। उसके घर मे कोई सन्तान नही थी। पहले तो कॅवरसेन अपनी स्त्री को डाक्टर, हकीम, वैद्य तथा मन्त्र-टूना करनेवालो को दिखाता रहा, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। पश्चात् उसने अपनी परीक्षा करवाई। डाक्टर ने उसकी शुक्र-परीक्षा कर कह दिया कि उससे सन्तान नहीं हो सकती।

डाक्टर का यह निदान कँवरसेन ने अपनी स्त्री को नहीं बताया। इस पर भी उसका मन संसार से विरक्त रहने लगा। फिर एकाएक उसने निश्चय कर लिया कि भ्रमणार्थ विदेश चला जाए। इसका अर्थ यह था कि नन्दलाल बेकार हो गया।

यह सुन नन्दलाल के पाँव तले से मिट्टी निकल गई। उसने वकील साहब से पूछा,

"श्रीमान्! मैं क्या करूँगा?"

"तुम किसी अन्य वकील के साथ काम कर लो।"

"इसमे तो समय लगेगा और मेरे घर में तो अभी से खाने को नहीं है।"

कंवरसेन यह सुन गम्भीर हो गया। कुछ विचार कर उसने कहा, "अच्छा, तुम मेरी अनुपस्थिति मे मेरी कोठी की देख भाल करना। माली, चपरासी और अन्य नौकरो से काम लेना। मैं तुमको एक सौ रुपया मासिक दे दिया करूँगा। शेष तुम कचहरी मे काम से पैदा कर, काम चलाना।"

वकील साहब को विदेश में दो वर्ष लग गए और इस अवधि मे नन्दलाल ने बच्चे पैदा करने बन्द रखे। यह तो वह समझ गया था कि उसकी स्त्री उर्वरा भूमि की भाँति बहुत उपजाऊ है। इस कारण उसने स्त्री-संसर्ग त्याग दिया।

लक्ष्मी ने भी इस कार्य मे पति को पूर्ण सहयोग दिया। रात को वह बच्चो को लेकर भीतर के कमरे मे सोती और पति को बाहर के कमरे में कर, भीतर से कुण्डा चढ़ा लेती। दिन के समय तो पति-पत्नी को एकान्तवास का अवसर ही नहीं मिलता था।

कवरसेन दो वर्ष तक विदेश-भ्रमण करता रहा। स्वदेश लौटने तक उसका मन बहुत-कुछ स्थिर हो चुका था। अब वह पुनः अपने काम मे मन लगाने लगा था। इससे नन्दलाल की आर्थिक अवस्था फिर सुधर गई।

आय का स्रोत पुनः खुल जाने पर नन्दलाल और लक्ष्मी में पुन' ससर्ग बन गया। इसके बनने के नौ मास व्यतीत होने पर लक्ष्मी के जुडवाँ लडकियाँ हुईं। इनके नाम प्रभा और रमा रखे गए।

नन्दलाल अपनी पत्नी को दो बच्चों को एक साथ दूध पिलाते देख हँस देता। वह अपनी पत्नी से कहता, "क्या लाभ हुआ है सयम से रहने का? जहाँ पहले डेढ वर्ष में एक बच्चा होता था, वहाँ अब अढाई वर्ष में ही दो हो गए हैं।"

लक्ष्मी का भी सयम से रहने का उत्साह ठण्डा पड गया। अब फिर बच्चे बाहर के कमरे में सोने लगे और पति-पत्नी भीतर के कमरे में। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक बच्चे के जन्म होने के छः महीने के भीतर ही गर्भ-स्थित हो जाता और जब पहला सवा-डेढ वर्ष का होता, एक नया शिशु आ जाता।

यह अब ग्यारहवाँ बच्चा था। पहली लड़की अब पन्द्रह वर्ष की हो गई थी। कमला को घर का काम-काज करना पडता था। माँ बच्चे पैदा करने में और उनके पालन-पोषण में लगी रहती थी। अतएव कमला स्कूल में पढने गई तो थी, परन्तु पाँचवीं श्रेणी से ऊपर नहीं जा सकी। घर का काम इतना बढ गया था कि वह प्रभा और रमा की सहायता से भी पूर्ण नहीं कर पाती थी। वह स्वय तो सदा थकी हुई ही अनुभव करती थी। प्रभा और रमा स्कूल जाती थीं, परन्तु घर पर पढने का अवसर न मिलने के कारण, श्रेणी की अन्य लडकियों से सदा पिछडी रहती थीं।

प्रभा और रमा से चार छोटे भाई और थे और अब यह पाँचवाँ हुआ था। इस बार लक्ष्मी को पहले से अधिक कष्ट हुआ था। वह इतने बच्चे उत्पन्न करने से बहुत ही दुर्बल हो गई थी और उसकी प्रजनन-शक्ति बहुत ही क्षीण हो चुकी थी।

सौभाग्य से यह रविवार का दिन था। नन्दलाल को कचहरी नहीं जाना था। इस कारण वह प्रात. से बच्चों को समेटकर बैठा था।

जब उसकी स्त्री प्रसव-पीडाएँ ले रही थी, वह भयभीत बच्चों को सान्त्वना दे रहा था।

मध्याह्न-पश्चात् तीन बजे बच्चा हुआ और प्रसूति-गृह का काम समाप्त कर जब दाई बाहर निकली तो नन्दलाल और सब बच्चे भीतर चले गए और प्रसूता की चारपाई के चारों ओर खड़े हो गए। कमला दीवार के साथ ढासना लगाए, बैठी-बैठी सो गई थी। वह भीतर नहीं गई। परमानन्द और सदानन्द मकान के नीचे ड्योढ़ी में बैठे बातें कर रहे थे।

जब दाई अपना बक्स लिये हुए मकान से उतरी, तो उन दोनों को ड्योढी मे बैठे बातें करते देख मुस्कराई और बोली, "अपने भाई को देखने नहीं जाओगे ?"

उत्तर सदानन्द ने दिया, "हमसे कुछ विलक्षण है क्या ?"

इस प्रश्न का उत्तर दाई नहीं दे सकी। वह चुपचाप गली से बाहर निकल गई। इस पर सदानन्द ने कहा, "तो अब फिर लडका हुआ है ?"

"यही मालूम होता है।"

"यह कैसे होता है ?"

परमानन्द इसका ठीक-ठीक उत्तर नहीं जानता था। इस कारण चुप रहा।

सदानन्द, जो अब साढ़े बारह वर्ष का था और डी० ए० वी० स्कूल की आठवीं श्रेणी मे पढता था, बोला, "पिता जी ने दो मास से फीस नहीं दी। अब तो वे दे ही नहीं सकेंगे और मेरा नाम स्कूल के रजिस्टर से कट जायगा।"

"मुझको फीस तो नहीं देनी पडती पर मेरे पास किताबें नहीं हैं।"

इस पर दोनों एक-दूसरे का मुख देखते रह गए।

उनके पडोस मे एक रामलाल रहता था। वह गली के बाहर दुकान करता था। वह दुकान पर जा रहा था कि दोनों भाइयों को

चिन्ताग्रस्त बैठा देख पूछने लगा, "पमी सेठ! क्या कर रहे हो?"

"कुछ नहीं।"

"सुना है तुम्हारे एक और भाई आया है?"

"हाँ, सुना तो है।"

"तो देखा नहीं अभी?"

"नहीं।"

'क्यों?'

"कुछ नई बात हो तो देखें।"

रामलाल हँस पडा। उसके चले जाने के पश्चात् दोनों भाई उठ मकान के भीतर चले गए।

पण्डित कँवरसेन की वकालत खूब चलती थी और इसके साथ उसके मुन्शी नन्दलाल को भी अच्छी आय हो जाती थी। किसी-किसी मास तो उसकी आय आठ-नौ सौ और हजार तक पहुँच जाती थी।

इस पर भी नन्दलाल के घर की हालत अच्छी नहीं थी। जहाँ एक ओर दस बच्चों के खाने-पीने, कपड़े, पढाई आदि का खर्चा था, वहाँ दूसरी ओर नन्दलाल को मद्य-सेवन और वेश्यागमन की चटक लग गई थी। अन्य मुन्शियों की सगत और घर पर पत्नी के बच्चे-पर-बच्चा पैदा करने की बात उसके मस्तिष्क पर बोझा बनी रहती थी। इस बोझे को कम करने का उपाय नन्दलाल को मद्यपान और वेश्यागमन ही ठीक प्रतीत हुआ।

ग्यारहवाँ बच्चा होने के अगले दिन, वह हजामत बनवा, साफ-सुथरे कपड़े पहन वकील साहब के कार्यालय में जा पहुँचा। वकील साहब का कार्यालय उनकी अपनी कोठी के एक कोने में बना था। वकील साहब अभी नहीं आए थे, परन्तु कई मुवक्किलों की भीड वहाँ लगी थी।

नन्दलाल के अतिरिक्त एक और मुन्शी भी था, परन्तु न तो वकील साहब उससे सन्तुष्ट थे और न ही ग्राहक उस पर विश्वास करते थे। इस कारण जब नन्दलाल आया तो ग्राहक उसको घेर कर खड़े हो गए।

नन्दलाल की दृष्टि सदैव यह देखती रहती थी कि कोई नया ग्राहक आया है अथवा नहीं। आज भी एक नया ग्राहक दिखाई दे रहा था। नन्दलाल ने सबसे पहले उससे ही बातचीत की।

उस आदमी ने अपनी बात बताई, "मेरा नाम मीरीलाल है। मेरे फूफा ने मुझको गोद लिया था, परन्तु लिखत-पढत कुछ नहीं की गई। पडोसी और सम्बन्धी गवाही भर देंगे।

"मेरे फूफा का नाम लाला सूरजभान था। उनका देहान्त हो चुका है। उन्होंने लगभग दस लाख की सम्पत्ति छोडी है। अब उनके भतीजे क्षेमचन्द्र और सुमनलाल ने उनके उत्तराधिकारी घोषित किये जाने का दावा किया है।

"मुझको इस बात की सूचना मिल गई है। मै इस घोषणा को रुकवाना चाहता हूँ और साथ ही अपने को लाला जी का उत्तराधिकारी घोषित किये जाने का प्रबन्ध करवाना चाहता हूँ।"

"इसके लिए यत्न किया जा सकता है और सफलता की पूरी आशा भी की जा सकती है। पहले तो आप वकील साहब की इस मुकद्दमे मे सम्मति की फीस पॉच सौ रुपया और मुन्शियाना पचास रुपया जमा करा दें।"

नन्दलाल की बात सुन मीरीलाल ने विचार कर एक घण्टे मे रुपया जमा कराने की बात कह दी और नन्दलाल दूसरे ग्राहकों से मिलने लगा।

ठीक आठ बजे वकील कँवरसेन कार्यालय मे आया और नन्दलाल मुकद्दमे की फाइलें लेकर भीतर कार्यालय मे चला गया।

कँवरसेन कुछ चिन्तित प्रतीत होता था। इस कारण नन्दलाल ने पूछ लिया, "सरकार! आप कुछ अस्वस्थ प्रतीत हो रहे हैं।"

"अस्वस्थ तो नहीं, परन्तु   छोडो इस बात को।"

"मेरे योग्य कोई सेवा हो बता दीजिए।"

कँवरसेन बताने में झिझकता था। कुछ विचार कर बोला, "देखो नन्दलाल! तुम तो जानते ही हो कि मेरे कोई सन्तान नहीं है। मेरी स्त्री ने यह निश्चय किया था कि रमाकान्त के घर लड़का होगा तो गोद ले लेंगे। उसके घर लगातार पाँच लड़के हो चुके हैं। कल उसके घर लडकी हुई है। इससे मेरी स्त्री को भारी दुःख हुआ है। वह समझने लगी है कि हमारे घर में सन्तान का वास ही नहीं है। हमने बच्चे को गोद लेने का विचार किया तो वह लडकी निकली।"

"पण्डित जी!" नन्दलाल ने कुछ गम्भीर होकर कहा, "एक बात कहूँ। नाराज़ तो नहीं होंगे?"

"कहो।"

"आखिर रमाकान्त में ही कौन विशेषता है। किसी अन्य का लडका भी तो गोद लिया जा सकता है।"

"रमाकान्त की स्त्री और मेरी स्त्री परस्पर सहेलियाँ हैं।"

"तो फिर क्या हुआ? आप एक लडका गोद ले लें और उसकी सगाई रमाकान्त की लडकी से कर दें। आपका काम भी बन जायगा और रमाकान्त की पत्नी से भी बात रह जायगी। लडका भी मिल गया और सहेली भी प्रसन्न हो जायगी।"

कँवरसेन नन्दलाल की बात पर हँस पडा। वास्तव में नन्दलाल इस प्रकार के जोड़-तोड़ के लिए विख्यात था। जब कभी किसी मुकद्दमे में कोई अडचन आ उपस्थित होती तो वह उसको निकाल देने का उपाय सोच ही लिया करता था।

परन्तु यह मुकद्दमा नहीं था। यह तो तिरिया हठ था। इस पर भी सुझाव अच्छा था। कँवरसेन ने पूछा, "लडका कहाँ मिलेगा?"

"वह मैं ढूँढ दूँगा। कल मेरे घर ग्यारहवीं सन्तान हुई है और वह लड़का है। श्रीमान् जी यदि पसन्द करें तो काम बन जायगा।

मेरा, आपका, पण्डिताइन जी का और फिर रमाकान्त की पत्नी का भी।"

कँवरसेन इस प्रस्ताव से फड़क उठा। वह अपनी कुर्सी से उठा और नन्दलाल को ठहरने के लिए कह कोठी में अपनी स्त्री से बातचीत करने चला गया।

नन्दलाल अपनी सूझ-बूझ और सतर्कता पर प्रसन्न हो वहाँ प्रतीक्षा करता रहा। लगभग आधे घण्टे के पश्चात् कँवरसेन और उसकी स्त्री सरोजिनी देवी कार्यालय में आ उपस्थित हुए। ऐसा प्रतीत होता था कि वकील साहब को हाईकोर्ट के जजों से भी अधिक अपनी पत्नी को समझाने में यत्न करना पड़ा था। आते ही कँवरसेन ने कहा, "देखो नन्दलाल! इनको बता दो। ये तुमसे कुछ पूछना चाहती हैं।"

नन्दलाल वकील साहब की मेज के समीप खड़ा था। वकील साहब बैठे तो सरोजिनी देवी उनकी कुर्सी के समीप रखी दूसरी कुर्सी पर बैठ गई।

नन्दलाल ने देखा कि सरोजिनी देवी की आँखें, रोती रहने के कारण फूली हुई हैं और लाल हो रही हैं। इससे नन्दलाल बहुत ही सहानुभूतिपूर्ण मुद्रा बनाकर खड़ा रहा। सरोजिनी ने पूछा, "आप कौन जाति के हैं?"

"सारस्वत ब्राह्मण हूँ।"

"कहाँ के रहने वाले हैं?"

"जिला काँगड़ा के। भट्टी गाँव है। वहाँ मेरा बड़ा भाई खेती-बाड़ी करता है। मुझको वहाँ से आये सोलह वर्ष हो चुके हैं।"

"कितने बच्चे हैं आपके?"

"कल ग्यारहवाँ उत्पन्न हुआ है।"

"बहुत भाग्यशालिनी है आपकी पत्नी।"

"जी हाँ।" नन्दलाल मन-ही-मन अपनी पत्नी को कोस रहा था।

"तो आप अपना लड़का हमको देंगे?"

"यह मेरा सौभाग्य होगा।"

"कैसा है वह ?"

"देखने मे बहुत सुन्दर है। फिर भी आप देख लें। ईश्वर की कृपा से आठ हैं। जो पसन्द आये वही ले सकती हैं।"

"अच्छी बात है। आज सायकाल आपके घर देखने आऊँगी।"

"बहुत कृपा होगी।"

जब सरोजिनी उठकर चली गई तो कँवरसेन ने मुस्कराकर कहा, "बहुत बहस करनी पड़ी है देवी जी को मनाने के लिए। यदि किसी मुकद्दमे में इतनी बहस करता तो पाँच सौ रुपये का काम था।"

नन्दलाल ने मुस्कराते हुए कहा, "इतनी फीस मिलने का प्रबन्ध तो कर ही दिया है। पाँच सौ आज ही मिल जाएँगे।"

"नन्दलाल! तुम बहुत काम के आदमी हो। मैं समझता हूँ कि यदि यह काम हो गया तो मेरे मन से बहुत भारी बोझ उतर जावेगा।"

नन्दलाल भी इससे कम प्रसन्न नहीं था।

आज नन्दलाल को साठ रुपये से ऊपर मुन्शियाना मिला था। इस धन का, अपने विचार से, सदुपयोग करने के लिए वह कचहरी से सीधा शराबखाने जा पहुँचा। उसका एक साथी मुन्शी राधाकृष्ण, एक गरीब वकील का काम करता था। उस वकील का काम ढीला था और मुन्शी बेचारा मस्जिद के चूहे की भाँति दुबला, पतला, भूख से व्याकुल, फटेहाल नन्दलाल के आगे-पीछे घूमा करता था। जिस दिन नन्दलाल को विशेष आय होती थी, वह राधाकृष्ण को साथ ले उसके लिये कष्ट भूलने का अवसर पैदा कर देता था।

दोनों अनारकली बाजार वाले शराबखाने में जा बैठे। देशी शराब की बोतल और दो प्लेट सीख कबाब सामने रखवा लिये।

बातें करते-करते नन्दलाल को याद आया कि कवरसेन की स्त्री ने उसके घर जाकर, उसके बच्चे को देखने की बात कही थी। अभी उसने पीनी आरम्भ ही की थी कि इस बात के याद आने पर वह उठ खड़ा हुआ। उसने आधी बोतल राधाकृष्ण के गिलास मे उड़ेल दी और शेष डाट लगाकर जेब में रख ली। पश्चात् दाम चुकता कर शराबखाने से बाहर आ गया और ताँगा कर वकील साहब की कोठी मे जा पहुँचा।

वहाँ जाकर उसको विदित हुआ कि वकील साहब अपनी स्त्री के साथ मोटर मे बैठ कहीं चले गए है। वकील साहब उसके घर का पता जानते थे। इससे उसको विश्वास हो गया कि वे अवश्य उसके ही घर गये होंगे। अतएव उसी ताँगे मे सवार हो शाहालमी दरवाजे के भीतर कूचा बाबेयाँ मे जा पहुँचा। शाहालमी दरवाजे के बाहर वकील साहब की मोटर गाडी देख उसे आशा हो गई कि वे अभी उसके घर ही होंगे।

वकील साहब उसके घर ही आये थे, परन्तु नन्दलाल के वहाँ पहुँचने से कुछ ही काल पूर्व वे वहाँ से अन्यत्र जा चुके थे। परमानन्द मकान के नीचे दरवाजे की दलहीज पर बैठा था। वह ठुड्डी को हाथो की हथेली पर रखे और हाथो को घुटने पर टेक दिये गम्भीर विचार में पडा था।

नन्दलाल ने उसको इस मुद्रा में देखा तो पूछा, "पमी ! क्या सोच रहे हो ?"

"आज किताबें न होने के कारण मास्टर ने मुख पर एक चाँटा मारा है।"

"तुमको सबक याद नही था क्या ?"

"वह तो मै अपने एक दोस्त की किताब मे से देख, याद कर गया था।"

"तो उसने मारा क्यो ?"

"वे पुस्तके देखते थे, जो मेरे पास नहीं थीं। मैने कहा भी कि मुझको पाठ याद है। इस पर वे झुँझलाकर कहने लगे, 'मै किताब देख रहा हूँ। सबक नही सुन रहा।' "

"बहुत ही मूर्ख है तुम्हारा मास्टर।"

"जी। मैंने पढाई छोड देने का विचार कर लिया है। ऐसे मूर्ख मास्टर से मैं पढना नहीं चाहता।"

"किताब कितने की आती है?"

"पाँच रुपये चार आने की।"

"यह तो बहुत मँहगी है।"

"साथ ही आठ आने की दो कापियाँ चाहिए।"

नन्दलाल जेब से रुपये निकालने लगा। इस समय सीढियों से दाई उतर कर नीचे आ गई और नन्दलाल को खड़ा देख बोली, "बाबू साहब! मेरी फीस दे दीजिये। आज बीबी जी बिल्कुल ठीक हैं।"

"कितना बिल है तुम्हारा?"

इस पर दाई ने जेब से बिल निकाल कर सामने रख दिया। बिल तीस रुपये पन्द्रह आने का था। बीस रुपये उसकी फीस के थे और शेष की औषधियाँ लिखी थीं।

नन्दलाल ने बिल देख कर पूछा, "पिछली बार तो तुमने फीस पन्द्रह ही ली थी?"

"हाँ। इस बार दो घण्टे अधिक लगे हैं। अगली बार तो सम्भव है, तीस लूँ।"

"क्यों?"

"जिस प्रकार आपकी स्त्री की अवस्था चल रही है, वह अगली बार अवश्य अधिक बीमार होगी।"

"भगवान् न करे। अच्छा यह लो।" यह कह उसने इकतीस रुपये गिनकर दाई के हाथ पर रख दिए। दाई गई तो वह परमानन्द को छः रुपये देने लगा। इसी समय सीढियों के ऊपर से कमला ने पुकारा, "पिता जी! दाई को रुपये देने से पहले ऊपर आइए। माताजी बुला रही हैं।"

"पर दाई तो रुपये ले गई है?"

"आप आइये। माता जी बुला रही हैं।"

नन्दलाल ने रुपये परमानन्द को नहीं दिये। उन रुपयों को जेब मे रख वह सीढ़ियाँ चढने लगा। परमानन्द मुख देखता रह गया।

नन्दलाल अन्दर के कमरे मे, जहाँ उसकी स्त्री लक्ष्मी लेटी थी, पहुँचा तो अपनी स्त्री का, हल्दी की भाँति पीला मुख देख, विस्मय मे खडा रह गया। स्त्री ने अपने पति को देख धीमे स्वर में कहा, "बैठिए।"

नन्दलाल बैठ गया। लक्ष्मी ने कहा, "अब तो सम्हलो। यह जेब मे जो कुछ है, वह यहाँ किसलिए लाए हो?"

अनायास ही नन्दलाल का हाथ जेब पर चला गया और उसने बात बदल कर पूछा, "हमारे वकील साहब और उनकी पत्नी आई थीं क्या?"

"आई थीं। तुमने अब शराब पीने के लिए बच्चे बेचने आरम्भ कर दिये हैं क्या?"

"किसको बेचा है?"

"इसको और किसको?" लक्ष्मी ने खाट पर सो रहे शिशु की ओर संकेत किया, "वकील साहब के पास।"

"मैंने बेचा नहीं। वे गोद लेना चाहते हैं।"

"तो नगर मे और बच्चे नहीं रहे क्या, जो इधर दृष्टि डाली है। बताओ क्या दाम माँगा था तुमने?"

"मैंने कुछ नहीं माँगा। वे इस लडके को अपना लडका बनाएँगे। लाखों की सम्पत्ति इसके नाम लिख देंगे। साथ ही उनके एक मित्र की लडकी, जो कल ही पैदा हुई है, से इसका विवाह कर देंगे।"

"मुझको मालूम हो गया है। वे बता गए हैं कि रमाकान्त की बीबी ने लडकी का मूल्य पाँच हजार लिया है और आपको भी वे इतना देंगे। अभी एक सौ का नोट यहाँ रख गए है, जिससे तेरह दिन तक मैं इसको दूध पिला सकूँ। तब तक वे आया का प्रबन्ध कर लेंगे। अर्थात् मै तेरह दिन के लिए उनकी नौकरानी हो गई और वे मुझको

मजदूरी का एक सौ रुपया दे गए हैं।"

नन्दलाल लक्ष्मी को इतना भावुक नहीं समझता था। वह सोचने लगा कि उसने तो मेहनत कर खीर पकाई है, परन्तु इस औरत ने उस पर राख छिड़क दी प्रतीत होती है। इस पर उसने कहा, "रमाकान्त की स्त्री ने क्या लिया है, इससे मुझको कोई मतलब नहीं। मैंने तो यह देखा है कि हमारी खेती में बच्चे अधिक हो रहे हैं, उनको रखने के लिए घर में स्थान नहीं। एक पडोसी के घर में, जहाँ स्थान बहुत है, रखने का प्रबन्ध कर दिया है। कभी खेत में खरबूजे अधिक हो जाते हैं, तो पडोसियों और मित्रों को भेंट में नहीं दिए जाते क्या ?"

"तो ये खरबूजे हैं ? तभी इनके लिए खाने-पहिरने के लिए न देकर, यह जेब वाली वस्तु खरीदते फिरते हो ?"

नन्दलाल ने, जो बात बनाने में सदा तत्पर रहता था, कहा, "देखो रानी ! अपनी ही कहती जाओगी या मेरी भी सुनोगी ?"

बच्चे माता-पिता में तकरार सुन उनके चारों ओर आ खड़े हुए। उनको देख नन्दलाल ने कहा, "ओ पमी, सदा, कमला ! सब बाहर जाओ। मैंने तुम्हारी माँ से कुछ बात करनी है। अभी जाओ। थोड़ी देर में तुमको बुलाऊँगा।"

कमला सबसे पहले निकल गई। परमानन्द की इच्छा थी कि पुस्तक का मूल्य माँग ले, इस कारण खड़ा रहा, परन्तु माँ के संकेत पर वह भी बाहर चला गया। पश्चात् सदानन्द इत्यादि बच्चे भी बाहर निकल गए।

जब सब चले गए तो नन्दलाल खाट के समीप भूमि पर बिछी चटाई पर बैठ कहने लगा, "दो वर्ष से ऊपर हो गए हैं कि मैं शराब घर पर नहीं लाता। आज मैं यह अपने पीने के लिए नहीं लाया। यह तो तुम्हारे लिए है। एक एक चम्मच दिन में दो बार पी लिया करोगी तो कमजोरी बड़ी जल्दी दूर हो जाएगी। डाक्टर ने बताया है और कल दाई ने भी बताया था कि ब्रांडी और दूध लेने से बहुत

जल्दी ठीक हो जाओगी। यह पन्द्रह दिन के लिए काफी है।"

दाई का नाम सुन लक्ष्मी का ध्यान उस ओर चला गया। उसने पूछा,

"दाई कुछ ले गई है क्या?"

"हाँ, इकत्तीस रुपये।"

"यह तो वह वकील साहब की स्त्री से भी ले गई है।"

"बड़ी धूर्त है वह। पर यह हुआ कैसे?"

"बात यूँ हुई कि साढ़े पाँच बजे के लगभग आपके वकील साहब और उनकी स्त्री दोनों आए और पूछने लगे कि आप कहाँ हैं। पमी ने बताया कि आप अभी कचहरी से नहीं लौटे। दोनों ऊपर चढ़ आए और कमला के साथ भीतर आ गए। मैंने वकील साहब को देखा हुआ था। उन्होंने अपनी पत्नी का परिचय दिया। यहाँ बैठने को न कोई जगह थी और न ही कोई कुर्सी। आपकी कमाई सारी तो शराब में चली जाती है। वे बेचारे इस चटाई पर ही बैठ गए। मैंने जलपान के लिए पूछा तो कहने लगे कि चाय पीकर ही चले थे।

"वकील साहब की पत्नी ने बच्चे को गोदी में ले लिया और देखकर बोलीं,

'अच्छा मोटा-ताजा मालूम होता है।'

"इस पर वकील साहब ने कहा, 'बहुत सुन्दर है।'

"वे मुझसे बोलीं, 'अच्छा बहन! हमने यह बच्चा गोद ले लिया। अभी तो इसको हम अपने घर नहीं ले जा सकते। ग्यारह दिन के पश्चात् ले जाएँगे। आज से जो खर्चा इस पर होगा, हम करेंगे। अभी तो यह तुम्हारा दूध पीता होगा। सो उसके लिए हम यह दे जाते हैं।'

"उन्होंने एक सौ रुपये का नोट बच्चे के सिरहाने रख दिया और कहा, 'शेष बात इसके पिता से करेंगे।'

"वे उठकर जाने लगे तो दाई आ गई। उससे उन्होंने पूछ लिया, 'कितनी फीस है तुम्हारी?'

"उसने तीस रुपये पन्द्रह आने माँगे। वकील साहब ने पैंतीस रुपये उसको देकर कहा, 'काम अच्छी तरह से करना। ग्यारहवें दिन और देंगे।'

"इतना कह वह बिना कुछ कहे-सुने बाहर चले गए। दरवाजे से बाहर जा वकील साहब की पत्नी लौट आई और कहने लगीं, 'हमने इसके विवाह के लिये एक लड़की भी तय कर ली है। पाँच हजार वहाँ देना पड़ेगा।' "

"तो तुमने क्या कहा ?" नन्दलाल ने डरते हुए पूछा। उसका विचार था कि लक्ष्मी ने जली-कटी सुनाई होंगी।

"मैं बच्चों को खरीदने वाली को सुनाने वाली थी कि वकील साहब अन्दर आ गए और कहने लगे, 'सरोजिनी डियर! अब चलो न। हमने एक अन्य स्थान पर भी तो जाना है।'

"इस प्रकार मुझको कहने का अवसर ही न मिला। वे दोनों चले गए।"

"बहुत अच्छा हुआ है।" नन्दलाल ने कहा, "लक्ष्मी! एक बात तुमको समझ लेनी चाहिए। वकील साहब दिल के बहुत अच्छे हैं। उनकी पत्नी धन का कुछ अभिमान करती है। परन्तु हमने उसके धन को क्या करना है। लड़का वहाँ जायगा तो सुखी रहेगा। पढ़ेगा, बड़ा आदमी बनेगा। माँ का दिल ठण्डा करेगा और बुढ़ापे में बाप का सहारा बनेगा।

"अच्छा देखो। तुम बहुत दुर्बल हो गई हो। एक चम्मच यह ले लो। बस तेरह दिनों मे ही घोड़ों की भाँति दौड़ती फिरोगी।"

"और आप फिर बारहवें के लिए यत्न कर सकेंगे।"

"नहीं, नहीं। मेरी रानी! मैं अब तुमको छूऊँगा तक नहीं। कहोगी तो रात को घर से बाहर जाकर सो जाया करूँगा।"

नन्दलाल ने बिना और कुछ कहे ग्लास ले, उसमें आधा पेग मद्य डालकर कहा, 'यह पी लो। औषधि-मात्र ही तो है। इतने से नशा नहीं होगा।"

लक्ष्मी बहुत ही दुर्बलता अनुभव कर रही थी। उसने ग्लास हाथ मे लेकर पी ली। पीने पर पहले तो उसको मचली हुई। स्वाद वैसा ही था, जैसा अंग्रेजी दवाई का होता था। पीने के दो मिनट पश्चात् उसके शरीर मे गर्मी आने लगी और वह अनुभव करने लगी कि उसका शरीर हल्का हो रहा है।

सौ रुपये का नोट, जो सरोजिनी दे गई थी, तुडाया गया और बच्चो की फीस, पुस्तकें, कमला के लिए सलवार और दो कुर्ते खरीद लिये गए। शेष कुछ बच्चो के तथा लक्ष्मी के अपने कपडो पर व्यय हो गए।

इसके पश्चात् कई बार सरोजिनी आई और लक्ष्मी के पास बैठ बच्चे को गोदी में ले प्यार करती रही। सरोजिनी मुन्शी के घर की दुर्दशा देख रही थी। एक दिन उसने कह ही दिया, "लक्ष्मी बहन! मुन्शी जी की कमाई तो अच्छी खासी है। फिर यह घर मे भॉग क्यो भुज रही है?"

"ग्यारह बच्चे और मै मुन्शी जी की सब कमाई ब्लौटिंग पेपर की भॉति सोख लेते हैं। हम खाते हैं और यदि कुछ बच जाता है तो बच्चो के कपड़ों और पढाई पर व्यय हो जाता है।"

"फिर क्या हुआ! एक हजार रुपया तो इस प्रकार व्यय नहीं हो सकता।"

"एक हजार?" लक्ष्मी ने विस्मय में आँखें खोलकर पूछा। हमको तो कभी भी ये अढाई-तीन सौ से अधिक नहीं देते।"

"अच्छा? तो फिर बाकी कहॉ जाता है?"

यह कथन नन्दलाल और उसकी स्त्री में विग्रह का विषय बन गया। उसी रात मुन्शी पीकर घर आया। आकर वह सीधा अपनी खाट पर, जो बाहर के कमरे मे थी, लेट गया। लक्ष्मी प्रसूति-गृह से बाहर आ

चुकी थी। नन्दलाल आकर लेटा तो लक्ष्मी ने खाट के एक ओर बैठकर पूछा, "आज भोजन नहीं करना क्या?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"बाजार से खा आया हूँ।"

"कितना खर्चा हुआ है?"

"यही चार आने का शोरबा और दो आने की रोटी।"

"और शराब कितने की पी है?"

"एक मित्र ने पिला दी थी। मेरा कुछ नहीं व्यय हुआ।"

"आपके मित्र का कितना व्यय हुआ है?"

"मुझे पता नहीं।"

"अच्छा तो तलाशी दो। कितने रुपये जेब में हैं?"

"क्यों?"

"आज आपकी चालीस रुपये से ऊपर की आय हुई है।"

"कौन कहता है? झूठ है। एक ग्राहक से बहुत कठिनाई से चार रुपये निकलवाये थे। उसमें से आठ आने बचे थे। छ आने की रोटी खाई है। दो आने जेब में हैं।"

"अच्छी बात है। देखने दो।"

नन्दलाल ने लेटने से पूर्व अपना कोट खूँटी पर टाँग दिया था। लक्ष्मी ने कोट उतार लिया और उसकी जेबें टटोलने लगी।

जेब में एक रुमाल था, जिसमें से मद्य की दुर्गन्ध आ रही थी। रुमाल के एक कोने में एक रुपया बँधा था। एक दुअन्नी जेब में खुली रखी थी। कोट के अन्दर की जेब में एक डिबिया थी। जब लक्ष्मी ने डिबिया निकाली तो नन्दलाल ने छीन ली और कहा, "एक बात तो मैं भूल ही गया था। ये कानों के टॉप्स मैं तुम्हारे लिए लाया था।"

"कितने के लाए हैं?" लक्ष्मी ने डिबिया पुन. अपने हाथों मे लेते हुए पूछा।

लक्ष्मी ने डिबिया खोली और टॉप्स देखे। पश्चात् फिर बोली, "बहुत सुन्दर हैं।" लक्ष्मी इसके आगे कुछ कहने ही वाली थी कि एकाएक रुक गई। डिबिया के ढकने में एक कार्ड पडा हुआ था। नन्दलाल उसके विषय मे भूल ही गया था। उस कार्ड पर लिखा था, "निर्मला रानी के लिए सप्रेम भेंट।"

यह पढ लक्ष्मी का मुख लाल हो गया। नन्दलाल को अभी भी उस कार्ड की याद नही थी। उसने कहा, "ये टॉप्स तुम्हारे लिए लाया था। अच्छा जाओ अब मुझे सोने दो।"

लक्ष्मी अभी भी भीतर के कमरे मे सोती थी। उसने डिबिया बन्द कर ली और कुछ देर तक नन्दलाल के मुख पर देख भीतर के कमरे में चली गई।

मकान मे दो ही कमरे थे। परमानन्द और सदानन्द पढते-पढ़ते बाहर के ही कमरे मे सो गए थे। प्रभा और रमा अभी अपने भाइयो के कपड़े मुरम्मत कर रही थीं। छोटे बच्चे एक ही बिस्तर पर पड़े हुए थे। केवल कमला अपने माता-पिता की बात सुन रही थी और कुछ-कुछ समझ रही थी। अन्त की बात वह सुनकर भी नहीं समझी थी। केवल उसने अपनी माँ की आँखो मे भर रहे आँसू देखे थे।

जब लक्ष्मी भीतर के कमरे मे चली गई तो वह भी उठी और माँ के पीछे-पीछे अन्दर जा पहुँची। लक्ष्मी अपनी खाट पर छोटे बच्चों के पास जा बैठी। कमला ने चटाई पर बैठ माँ से पूछा, "माँ! क्या है?"

"सर्वनाश, बेटी! मै समझती थी कि तुम्हारे पिता अकेले कमाने वाले हैं और हम इतने प्राणी खाने वाले, इस कारण उनको अपना पेट काटकर हमारे खाने-पहिरने का प्रबन्ध करना पडता है। परन्तु आज सरोजिनी देवी से पता चला था कि उनकी आय एक हजार रुपया मासिक के लगभग है। हमको वे कभी भी अढाई-तीनसौ से अधिक नहीं देते थे। शेष वे ऐसी औरतो को खिला-पिला देते है।" इतना कह उसने टॉप्स की डिबिया खोल, उसमें का कार्ड निकाल दिखा दिया।

कमला मन-ही-मन बहुत कुछ समझती थी परन्तु अपने मन की बात को शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती थी। इस समय वह माँ की धुँधलाई आँखों में से टपकते आँसू देख रही थी। उसकी अपनी आँखें भी डबडबा आई थीं।

माँ ने कहा, "कमला! यह लो। यह तुम अपनी सन्दूकची में रख लो। मैं इस समस्या का सुझाव ढूँढने का यत्न करूँगी।"

अगले दिन नन्दलाल को फिर भारी आय हुई थी। मीरीलाल मुक-द्दमा करने की फीस जमा करा गया था। सायंकाल वह राधाकृष्ण को ढूँढने लगा तो उसको पता चला कि अभी वह खाली नहीं हुआ। इस कारण वह अकेला ही चल पड़ा। आज वह अनारकली बाजार में कौरोनेशन होटल में जा पहुँचा। वहाँ के बैरे नन्दलाल से भली भाँति परिचित थे। इसके वहाँ पहुँचते ही एक बैरा उसको ऊपर के एक कमरे में ले गया। वहाँ बैठा बैरे ने पूछा, "पण्डित जी! क्या चाहिए?"

"निर्मला को बुला दो।"

"वह कल यहाँ आई थी और आपकी प्रतीक्षा करती रही थी।"

इस समय नन्दलाल को स्मरण हो आया कि जो टॉप्स कल लक्ष्मी ने उसकी जेब में से निकाले थे, वे निर्मला के लिए थे। इस बात के याद आते ही उसके मुख का रंग उड़ गया। उसको यह भी ध्यान आया कि डिबिया के अन्दर हिन्दी में लिखा भेंट-कार्ड भी रखा था।

होटल का बैरा नन्दलाल के मुख का उड़ता रंग देख पूछने लगा, "क्या बात है पण्डित जी?"

"कुछ नहीं। कल वह आई थी। कितनी देर तक प्रतीक्षा करती रही थी?"

"एक घन्टा भर।"

"अच्छा तो आज मत बुलाओ। उसके लिए कुछ लाना था, वह भूल गया हूँ।"

"तो फिर?"

"एक अद्धा ह्विस्की और नान-कबाब ले आओ।"

खाने के पश्चात् नन्दलाल ने दाम चुकाया और एक रुपया बैरे को टिप दे, झूमता हुआ घर जा पहुँचा।

आज घर पर वकील कवरसेन और सरोजिनी देवी आई हुई थीं। वे बच्चे को ले जाना चाहते थे, परन्तु उसकी देखभाल करने के लिए किसी अच्छी आया का प्रबन्ध नहीं हो पाया था। सरोजिनी को एक तरकीब सूझी। उसने लक्ष्मी से कहा, "बहन! अभी बच्चा बहुत छोटा है। कोई उसकी देख-रेख करने वाला चाहिए। अभी तक कोई अच्छी आया मिली नहीं। इस कारण यदि तुम कमला को कुछ दिनों के लिए साथ भेज दो तो, हम बहुत अहसान मानेंगे। कमला का अपने भाई से स्नेह भी है। वह उससे बहुत प्यार करती है।'

लक्ष्मी को यह प्रस्ताव पसन्द नहीं था। कमला, जो वहाँ खड़ी यह बात सुन रही थी, अपनी माँ की गम्भीर मुद्रा देख बोली, "मैं चलूँगी।"

"बहुत अच्छी लड़की है। मुझको तुमसे यही आशा थी।"

परन्तु लक्ष्मी ने कहा, "पिता जी से पूछ लो, कमला!"

"उन्होंने हमसे कब पूछा है?"

"क्या पूछते तुमसे?"

"जब दूसरी स्त्रियों को टॉप्स देते हैं तो हमसे पूछकर देते हैं?"

"चुप रहो कमला!" लक्ष्मी ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा।

सरोजिनी को मुन्शी का बाजार में अपनी आय-व्यय करने का पहले से ही सन्देह था। वह कमला की बात से स्पष्ट हो गया। इस पर सरोजिनी ने लक्ष्मी को समझाने के लिए कह दिया, "कमला को हमारे यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा और वह आपसे मिलने तो आया करेगी। क्यों कमला! ठीक है न?"

सरोजिनी ने कमला को प्रोत्साहन देने के लिए कह दिया, "तुम अपने कपड़े लेकर तैयार हो जाओ। हम मुन्शी जी के आने तक बैठेंगे

ही और तुम्हारे विषय में उनसे स्वीकृति ले लेंगे।"

लक्ष्मी को घर की एक युवा लडकी दूसरों के घर भेजने में और वह भी एक प्रकार से नौकर बनाकर, पसन्द नहीं था। वह कुछ कहना चाहती थी परन्तु कमला के बाहर चले जाने तक सरोजिनी ने उसको कुछ कहने ही नहीं दिया। जब वह जाने के लिए अपना सामान एकत्रित करने चली गई, तो सरोजिनी ने कहा, "आज हम बच्चे को ले जा रहे हैं। देखो लक्ष्मी! सकोच न करना। हम तुमको क्या दें, जिससे बच्चे को अपना कह सकें?"

"रुपया-पैसा देने से भला कोई अपना हो सकता है?"

"तो कैसे हो सकता है?"

"यह मैं क्या जानूँ?। यहाँ तो कमला मेरे अग का अग होते हुए भी, अवसर मिलते ही मुझको छोडने को तैयार हो गई है।"

"मै बच्चे के विचारों की बात नहीं कर रही। मैं तो तुम्हारे कष्ट की बात कह रही थी। सुना है इस बार तुमको बहुत कष्ट रहा है।"

"उसका दाम मैं लेना नहीं चाहती। यह तो अपने बच्चे को बेचने के समान होगा। आप इसे ले जाइये। केवल एक बात है, जिसके लिए प्रत्येक स्त्री यह सब कष्ट भोगने में समर्थ होती है और जिसकी स्वीकृति मैं चाहती हूँ। में चाहती हूँ कि मेरा यह अधिकार बना रहे कि मैं इसको अपना पुत्र कह सकूँ।"

"हाँ हाँ। इसकी दो माँ होंगी। यह हम इस पर छोड़ देंगे कि वह किसको अधिक चाहेगा।"

इस समय वकील साहब ने भी अपनी स्त्री के कथन का समर्थन कर दिया। उन्होंने कहा, "क्या हम नहीं जानते कि कितना व्यय हम करने को तैयार हैं, जिसमे सरोजिनी देवी अपने को एक पुत्र की माँ कह सके। लक्ष्मी देवी! निश्चिन्त रहो कि लडके द्वारा हमारा आपसे सम्बन्ध घना ही होगा और भगवान् की कृपा रही तो यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर बढेगा।"

"पर कमला को भेजने मे सकोच होता है।"

"बहन ! तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। यहाँ से वहाँ उसके लिए अधिक सुरक्षित और हितकर वातावरण रहेगा।"

लक्ष्मी को कमला के पिता का शराब पीकर घर आना तथा अपना धन बाजारू स्त्रियों पर लुटाना स्मरण हो आया। वह चुप कर रही।

इस समय नन्दलाल झूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वहाँ कँवर सेन और सरोजिनी देवी को बैठा देख बहुत झेंपा। कंवरसेन ने उसको बाँह से झकझोरा तो वह कुछ सचेत हुआ। इस पर कंवरसेन ने कहा, "हम लडके को आज ले जा रहे हैं। कुछ दिनों के लिए कमला भी उसकी देखभाल के लिए हमारे साथ चल रही है।"

"तो ले जाइये। मैंने ही तो आपको ऐसा कहा था।"

लक्ष्मी ने आवेश मे कहा, "कमला भी जा रही है।"

"तो क्या हुआ ? काका बडा होगा तो आ जाएगी।"

लक्ष्मी चुप कर रही।

कंवरसेन और सरोजिनी देवी नीचे उतर गए। पीछे कमला भी अपने कपडों की गठरी बगल मे दबाये तथा गोद में बच्चे को लिए नीचे उतर गई। जब वे चले गये तो लक्ष्मी ने माथे पर त्योरी चढाकर कहा, "आज भी मद्य किसी ने पिला दी है क्या ?"

"नहीं। आज अपने पैसों से पी है।"

"कितना व्यय हुआ है ?"

"केवल तीन रुपये।"

"और बाकी रुपये कहाँ हैं ?"

"पहले कल वाले टॉप्स दो।"

"क्यों ? वे तो आप मेरे लिए लाए थे न ? मैंने वे कमला को दे दिए हैं। वह उनको अपने साथ ले गई है।"

"तो रुपये नहीं दूँगा।"

"मत दो। सो जाओ।"

"तुम मेरी जेब से निकाल लोगी। कल एक रुपया दो आने और भी तो मेरे पास थे।"

"तो आज और भी जो कुछ है, निकाल लूँगी।"

"क्यों?"

"इसलिए कि मैं आपके बच्चों की माँ हूँ और उनको खिलाने-पिलाने के लिए मुझको चाहिए।"

"वह मैं स्वयं देख लूँगा। पहले तुम बताओ कि वकील साहब कुछ दे गए है क्या?"

"देना चाहते थे पर मैंने नहीं लिया।"

"क्यों?"

"मैं अपने बच्चों का मूल्य लेना नहीं चाहती थी।"

"अजीब औरत हो, तुम? घर में न खाने को है, न पहिनने को और तुम बच्चों को ऐसे दे रही हो, जैसे किसी परती भूमि की पैदावार हो।"

जब से लक्ष्मी को पता चला था कि उसके पति की आय काफी हो जाती है और वह इसको अन्य स्त्रियों पर व्यय करता रहता है, तब से उसका मन जल उठा था। वह दिन-भर मन में योजनाएँ सोचती फिरती थी कि किस प्रकार उसके रुपये ले लिया करे। इससे आज वह क्रोध में कहने लगी, "यदि घर में खाने को नहीं तो यह आपके अन्य औरतों पर धन व्यय करने के कारण है?"

"यह बात गलत है?"

"तो निर्मला कौन है?"

"मेरी दूसरी बीवी है।"

"एक का तो खर्चा चलता नहीं और दूसरी रख ली है।"

"देखो लक्ष्मी! एक बात बताता हूँ। वह यह कि निर्मला तुम्हारी

तरह बच्चे पैदा नहीं करती। वह पाँच वर्ष से मेरे पास है और उसके एक भी बच्चा नहीं हुआ। इतने काल में, मैं सौगन्धपूर्वक कहता हूँ कि मेरी परछाई-मात्र से ही तुमने तीन बच्चों को जन्म दिया है।"

"तो यह मेरा अवगुण है क्या?"

"बिल्कुल। अब बताओ न, यह पलटन, जो तुमने बना ली है, इसका क्या होगा?"

"तुम मुझको मेरे हाल पर छोड देते। न बीज डालते और न ये बनते।"

"तो विवाह किसलिए किया था?"

"बच्चे पैदा करने के लिए। स्मरण है या नहीं कि विवाह के पश्चात् पंडित ने आशीर्वाद में क्या कहा था। उसने कहा नहीं था क्या कि पुत्र-पौत्रों के साथ एक सौ वर्ष तक जियो।"

नन्दलाल हँस पडा और बोला, "कहा होगा, मुझको स्मरण नहीं। मैं तो जब तक वेदी पर बैठा रहा था, यही विचार करता रहा था कि तुम सुन्दर हो और कब अभिसार की घडी आवेगी। मुझको न तो पंडित का आशीर्वाद सुनाई दे रहा था और न ही वेद-मन्त्र।

"क्या तुमको पता नहीं कि विवाह के पश्चात् मैं तुमको घर ले चलने के लिए कितना उतावला हो रहा था? मेरे मन में उस समय एक ही धुन सवार थी कि मिलन-समय कब आवेगा।

"मेरे वे सब सुख-स्वप्न समाप्त हो गए, जब हमारे घर पर आने के पन्द्रह दिन के पश्चात् ही तुम्हें अरुचि रहनी आरम्भ हो गई और कै आने लगी। माँ ने कह दिया कि बहू को तंग मत करो। उसके पेट में बच्चा है।

"इसके पश्चात् मैं लाहौर आया। तुम तीन मास की कमला को गोदी में लिये हुए आई। आने के पन्द्रह दिन पश्चात् वही कहानी आरम्भ हो गई, जो गाँव में थी। तुमको गाँव भेजा तो एक वर्ष तक वहाँ रहकर तुम कमला के साथ परमानन्द को लेकर आ गई।

"इसके पश्चात् मैंने तुम्हें गाँव नहीं भेजा। माँ का देहान्त हो चुका था और भूमि पर भाइयों का अधिकार हो चुका था। इस पर भी तुमको बच्चे होते गए और मैं सयम से ऊब गया।

"प्रभा और रमा के उत्पन्न होने के पीछे की बात है। मैं एक बजाज की दुकान पर कपड़ा खरीदने गया तो वहाँ एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की अपने ब्लौज के लिए कपड़ा खरीद रही थी। उसने रेशम का एक टुकड़ा पसन्द किया। बजाज ने उसके लिए तीन रुपये बारह आने मागे। उसने अपने बैग में से पैसे निकाले और बजाज को दे दिये। बजाज ने गिने तो दो रुपये बारह आने थे। उसने एक रुपया और माँगा। लड़की ने कह दिया कि उसने पूरे पैसे दिए हैं। दोनों में झगड़ा हो गया। मैं देख रहा था कि लड़की ने दो रुपये बारह आने ही दिए हैं। परन्तु लड़की विश्वास के साथ कह रही थी कि उसने तीन रुपये बारह आने दिए हैं। दुकानदार ने पुलिस बुलाने की धमकी दी। झगड़ा बढ़ता देख मैंने अपनी जेब से एक रुपया निकाला तथा उसको हाथ मे छिपाकर, तनिक झुकने का बहाना कर कहा, 'यह एक रुपया गिरा हुआ है, किसका है?' और हाथ सीधा कर मैंने रुपया दिखा दिया।

"लड़की के मुख का रग लाल हो गया। वह समझ गई कि रुपया मैंने अपनी जेब से दिया है। उसकी झिझक मिटाने के लिए मैंने रुपया लड़की की ओर बढ़ाकर कहा, 'मै समझता हूँ कि यह रुपया तुम्हारा ही होगा।

"इतने में लड़की सँभल गई। उसने रुपया मेरे हाथ में से लेकर दुकानदार को देते हुए कहा, 'क्षमा करना। मुझसे यह गिर गया मालूम होता है।'

"दुकानदार काउन्टर के दूसरी ओर था। वह मेरे इस नाटक को देख नहीं सका। उसने रुपया लड़की के हाथ से ले लिया और कपड़ा, रसीद सहित उसको दे दिया। लड़की कपड़ा लेकर चली गई।

"मैने भी कपडा लिया और दुकान से निकल घर की ओर चल पडा। परन्तु कुछ दूर सडक के किनारे उस लडकी को खडा देख मेरी हँसी निकल गई। इस पर भी मेने मुख मोड लिया और चलता गया। वह लडकी मेरे साथ चल पडी और चलते हुए बोली, 'आपने रुपया देकर मेरी बहुत सहायता की है। मै आपका धन्यवाद करती हूँ।'

"मैने कहा, 'धन्यवाद की आवश्यकता नही। परन्तु तुमने झूठ क्यो बोला ?"

'मुझको कपडा बहुत पसन्द था और मेरे पास पूरा दाम नही था। इस अवस्था में यही करना पडता है।'

'तुम्हारे पिता क्या काम करते है ?'

'वे नही है। माँ सूत कातकर दो-चार आना रोज कमाती हैं। हमने अपने मकान का एक भाग किराए पर दे रखा है। उससे बीस रुपया महीना मिलता है। इनसे साधारण भोजन तो मिल जाता है, परन्तु अच्छे कपडे और अच्छा भोजन नहीं मिलता।'

'तुम क्या करती हो ?'

'यह तो आपने देख ही लिया है।'

'अर्थात् जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, उठा लेती हो और बिना दाम दिए कह देती हो कि दाम दे दिया है।'

'आपने ठीक ही समझा है।'

'परन्तु इसमे तो किसी दिन जेल की हवा खानी पड़ेगी।'

'तो क्या करूँ ? खाने को तो वहाँ भी मिलेगा।

'इस पर भी वहाँ बहुत कष्ट होगा।'

'आप ठीक कहते है, परन्तु और कुछ करने को है भी तो नही।'

'मै एक उपाय बता सकता हूँ।'

'बताइये।'

'मेरे साथ सामने होटल मे आओ। वहाँ फोकट मे चाय पी सकोगी और कहा मानोगी तो जीवन भी सुलभ हो जायगा।'

'चाय के साथ कुछ खाने को भी मिलेगा क्या ?'

'हाँ मिल सकेगा।'

'हम दोनों एक होटल में चले गए। वहाँ एक पृथक् कमरे में हमको स्थान मिल गया। मैंने लड़की से पूछा, कुछ पढ़ी-लिखी भी हो ?'

'सातवीं श्रेणी तक। अधिक पढ़ने के लिए न पैसा था और न रुचि।'

'तुम जो यह काम करती हो, इसमें भारी खतरा है। इससे सुगम तो विवाह कर लेना होगा।'

'पर कौन विवाह करेगा मुझसे ?'

'मैं ही कर सकता हूँ।'

'इस समय बैरा चाय, पेस्ट्री, रसगुल्ले, समोसे इत्यादि खाने-पीने के लिए ले आया। लड़की ने बिना मेरी ओर देखे और बिना मुझसे पूछे खाना आरम्भ कर दिया। जिस गति से वह खा रही थी, उससे स्पष्ट था कि वह बहुत ही भूखी है। मैंने उसके लिए चाय बना दी, परन्तु उसने चाय की ओर ध्यान भी नहीं दिया और अपना खाना चालू रखा।

'मैंने उसको विवाह करने का अभिप्राय समझाना चाहा, परन्तु वह सब-कुछ जानती थी। उसने मुझको बताया कि उसे यदि कभी किसी वस्तु की बहुत आवश्यकता होती है तो दूसरों को प्रसन्न करना पड़ता है। इस पर मैंने कहा, 'मैं इस प्रकार नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी जो भी आवश्यकता हो, मुझसे पूरी करो और तुम केवल मुझको ही प्रसन्न करो। मैं तुमको हरजाई नहीं देखना चाहता।'

'पर यदि मेरी आवश्यकताएँ न पूर्ण कर सके तो ?'

'मैं समझता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। यदि हुआ भी तो मुझको सदैव के लिए छोड़ देना और अपनी आवश्यकताएँ जहाँ से पूर्ण हों, करा लेना।'

'तो मुझको आप भूषण भी ला देंगे ?'

'हाँ, क्यों नहीं ?'

'इस प्रकार बात तय हो गई और वह मेरी पत्नी बन गई। यह है निर्मला।

"कल मैं उसके लिए टॉप्स लाया था, परन्तु नशे में भूल गया था। वे साठ रुपये में खरीदे थे। सुना है वह कल इनकी प्रतीक्षा करती रही है।"

लक्ष्मी को इस कथा पर सन्तोष नहीं हुआ। न ही उसका क्रोध शान्त हुआ। उसने कहा, "मैं नहीं जानती कि आपकी कितनी बीवियाँ हैं। मैं तो यह कहती हूँ कि ये बच्चे आपने पैदा किए हैं। इनके खाने-पहिरने और पढाई के लिए देकर जो-कुछ आपके पास बचे, वह जहाँ चाहे आप दें। मैं आपत्ति नहीं करूँगी।"

"मैं इन सबका पालन-पोषण नहीं कर सकता।"

"यह तो करना ही होगा। बच्चे पैदा जो किए हैं।"

"इसमें मेरा दोष नहीं। यदि मैं बच्चे पैदा करने में मुख्य होता तो निर्मला के भी बच्चे हो जाते।"

"वह तो बंजर भूमि है।"

"मुझको पसन्द है।"

"तो मैं कैसे निर्वाह करूँ ?"

"जिसको बच्चा और बच्ची दी है, उसी से माँगना था।"

"वे क्या मुर्गी के बच्चे थे, जो मैंने बेचे थे ?"

"मेरे लिए इससे अधिक उनका कोई मूल्य नहीं।"

माता-पिता में यह तकरार बाहर सब बच्चे सुन रहे थे। परमानन्द इन सबका अर्थ भली भाँति समझ रहा था। वह इस पूर्ण समस्या

पर विचार करता-करता ही सोया था और स्वप्नों में अपने पिता से लड़ने लगा था। स्वप्न में मानो उसे उसका पिता कह रहा था, 'तुम माँ के बेटे हो। मैं तुम्हारा खर्चा नहीं दूँगा।'

अगले दिन नन्दलाल शौचादि से निवृत्त हो भोजन करने बैठ गया। लक्ष्मी ने भोजन परस दिया। इस पर नन्दलाल ने पूछा, "तुम तो कहती थीं कि आटा और घी नहीं है?"

"सायंकाल के लिए नहीं था। मैंने तेरह रुपये जेब से निकाल लिए हैं। सदानन्द आटा और घी लेने गया है। दालें मैं रमा को साथ ले जाकर ले आऊँगी।"

"तो तुमने मेरे रुपये निकाल लिए हैं?"

"आपकी जेब में से मैंने अपने रुपये लिए हैं।"

"तुम्हारे बाप के थे?"

"नहीं जी! मेरे बच्चों के बाप के थे और बच्चों के लिए ही निकाले हैं।"

"मेरे रुपये वापस कर दो।"

"तो मैं कहाँ जाऊँ?"

"जहाँ मन करे।"

लक्ष्मी कलुछी से परमानन्द के लिए दाल डाल रही थी। उसके मन में आया कि इस कलुछी से उसका सिर फोड़ डाले। परन्तु अपने संस्कारों के वश ऐसा नहीं कर सकी। वह चुपचाप दाल डालती रही।

परमानन्द ने भोजन आरम्भ कर दिया था। नन्दलाल भोजन समाप्त कर उठा और हाथ धो कुल्ला कर कपड़े पहनने चला गया। उसने कोट पहन, जेब में हाथ डाला तो देखा कि जेब में केवल एक रुपया है। इस पर उसे पुन. क्रोध चढ़ आया। वह भागता हुआ चौके में चला आया और आते ही चिल्लाया, "मेरे रुपये दे दो।"

इस समय सदानन्द आटे की गठरी सिर पर उठाये हुए और घी का बर्तन लटकाए हुए आ पहुँचा। लक्ष्मी ने उसकी ओर उँगली कर

कहा, "वे रहे आपके रुपये।"

नन्दलाल ने देखा और क्रोधवश सामान को, जिसे सदानन्द ने जमीन पर रख दिया था, पाँव की ठोकर मार दी। ठोकर से घी का बर्तन दूर जा गिरा। घी भूमि पर बिखर गया। इससे लक्ष्मी को बहुत दुःख हुआ। उनके घर मे घी कभी-कभी आता था। प्राय. रूखी रोटी-दाल ही बना करती थी। लक्ष्मी को ऐसा प्रतीत हुआ कि ससार उसके सामने रसातल को जा रहा है। वह क्रोध मे बोली, "बस, बच्चो के मुख से रोटी छिनती नहीं देख सकती।"

वह उठी और घी का बर्तन सीधा कर, बिखरा हुआ घी उठाकर उसमे भरने लगी। इस पर नन्दलाल ने लक्ष्मी की चोटी पकड ली और उसको खडा करने के लिए बालों को ऊपर खींचकर कहा, "मै बच्चो को नहीं जानता। मेरे रुपये लाओ।"

परमानन्द सब-कुछ देख रहा था। वह रात मे माता-पिता की बाते सुन, ग्लानि अनुभव कर रहा था। वह अपने मित्रो के घर में जाता था और अपने तथा उनके घर मे रहन-सहन और खाने-पीने मे अन्तर देखता था। रात जब उसको विदित हुआ कि उसके पिता ने एक और बीबी रखी हुई है और उसको भूषण भी देता है तो वह पिता से घृणा करने लगा था। अब माँ के बाल खींचे जाते देख उससे सहन नही हो सका। वह खाना छोड उठ खडा हुआ और कहने लगा, "माँ को छोड दो।"

परन्तु नन्दलाल ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया और बालो को और जोर से खींचकर बोला, "लाओ रुपये।"

लक्ष्मी के मुख मे 'आ····· आ की आवाज निकल गई और वह भूमि पर लुटक गई। अब परमानन्द अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सका। उसने तानकर एक मुक्का पिता के मुख पर दे मारा।

नन्दलाल इसकी आशा नहीं करता था। मुक्का उसके कान के पास, आँख के नीचे लगा। उसने लक्ष्मी के बाल छोड अपने मुख

पर हाथ रख लिया। वह अभी उस स्थान की पीड़ा को शान्त करने मे लगा था कि परमानन्द का दूसरा मुक्का फिर उसके कान पर लगा। नन्दलाल के सिर मे चक्कर आने लगे और जब परमानन्द ने तीसरी बार हाथ उठाया तो वह लुढ़कता-गिरता सीढियो के नीचे भाग गया। माँ ने देखा कि लहू की बूँदे सीढियो पर गिरी है और नीचे तक गिरती चली गई है। इससे वह घबराई और उठकर नन्दलाल के पीछे-पीछे नीचे उतर गई।

नन्दलाल सीढियो से नीचे उतर ड्योढी मे बैठा नाक मे से बह रहे खून को पोछ रहा था। आँखो के नीचे का स्थान और कनपटी सूजने लगी थी। लक्ष्मी ने सीढियो मे खड़े-खड़े आवाज दी, "ऊपर आ जाइए। ठण्डे पानी की पट्टी कर देती हूँ।"

"हद्द हो गई। समझ लो कि अब मै तुम लोगों के लिए मर गया। अब मेरा पीछा छोडो।" इतना कह वह वहाँ से उठ गली से बाहर निकल गया। लक्ष्मी सिर को हाथो मे पकड वही बैठ गई और सिस-कियाँ भरने लगी।

परमानन्द और दूसरे बच्चे सीढियो के ऊपर खड़े थे। वे देख रहे थे कि उनका पिता लौटता है या नही। परमानन्द मन-ही-मन मना रहा था कि न लौटे। छोटे बच्चे परमानन्द को दोषी मानते थे।

सदानन्द ने परमानन्द से पूछा, "पमी भैया! अब क्या होगा?"

"देखा नही कि माताजी को मार रहा था और सारा घी गिरा दिया है।"

"पर तुमने क्यो मारा?"

"माँ को मार डालता तो क्या होता?"

"पर पिता जी अब नही आए तो?"

"तो न आएँ।"

"खाना-पीना कैसे चलेगा?"

"हम नौकरी करेंगे।"

"और पढ़ाई ?"

"पढ़ाई अब नहीं होगी।"

परमानन्द सदानन्द से केवल डेढ़ वर्ष ही बड़ा था, परन्तु वह पिता की बातों को उससे कहीं अधिक समझता था। यह बात तो वह लगभग एक वर्ष से ही समझ चुका था कि उसको शीघ्र ही नौकरी करनी पड़ेगी। वह माँ की दुर्दशा को अनुभव करता था और छोटे बच्चे के होने के समय माँ के कराहने की आवाज़ को भूला नहीं था।

रात के वार्तालाप में निर्मला की कथा उसने सुनी थी। इसके पश्चात् उसको विश्वास हो गया था कि पढ़ने के कुछ भी अर्थ नहीं रहे। पहले भोजन का प्रबन्ध करना होगा। पिता उनको अब कुछ नहीं देगा।

जब नन्दलाल चला गया तो परमानन्द ने माँ के पास जाकर कहा, "माँ! अब ऊपर चलो। अब इनसे किसी प्रकार की भी आशा करना बबूल से आम की आशा करने के समान होगा।"

माँ ने आँखें पोंछी और उठकर सीढ़ियाँ चढ़ते हुए कहा, "पमी! तुमने यह क्या कर दिया है ?"

"माँ! एक दिन तो यह होना ही था। इस प्रकार तो जीवन चल नहीं सकता।"

"वे तुम्हारे पिता हैं। तुम्हें उनको पीटना नहीं चाहिए था।"

"पर तुम मेरी माँ जो हो। मेरी माँ को कोई पीट नहीं सकता।"

"परन्तु अब हम सब भूखे मरने लगेंगे।"

"क्यों ? क्या भगवान् हमको खाने को नहीं देगा ?"

"इसके लिए पुरुषार्थ करना होगा। तुम अभी बहुत छोटे हो। वह तुम कर नहीं सकोगे।"

"माँ! मैं नौकरी करूँगा।"

"दसवीं पास तो की नहीं। नौकरी कौन देगा तुम्हें ?"

"पढ़ाई तो अब नहीं हो सकती। पर माँ! मैं और सदानन्द शीघ्र ही कमाने लगेंगे।"

माँ को यह योजना पसन्द नहीं थी। इस कारण वह अपने मन में ई दूसरा ही प्रबन्ध सोच रही थी। अतएव उसने पूछा, "अच्छा ताओ। वकील साहब की कोठी जानते हो कहाँ है ?"

"जानता हूँ। परन्तु मैं उनके यहाँ नौकरी करने नहीं जाऊँगा।"

"क्यो ?"

"वे कहेंगे कि हमारे भाई को क्या लिया है, सारा परिवार ही नके यहाँ खाने को पहुँच गया है।"

"मै तुमको वहाँ नौकरी के लिए नहीं कहूँगी। मैं तो बेबी तथा मला से मिलने जाना चाहती हूँ।"

"पर माँ! उनसे पिता की बात मत कहना।"

"बेटा! वह स्वय ही कर देंगे तो ?"

नन्दलाल जब कँवरसेन के सामने उपस्थित हुआ तो उसके मुख पर ट्टियाँ बँधी थीं। वह घर से निकल रास्ते में डॉक्टर से मरहम पट्टी करवा गया था। वकील साहब ने उसकी अवस्था देख पूछा, "नन्द-लाल! यह क्या हुआ है ?"

"रास्ते में एक बैल ने सींग मार दिया था। बच गया हूँ, यही गनीमत है।"

इसके पश्चात् दोनों काम में लग गए। ठीक दस बजे दोनों मोटर में बैठ कचहरी जा पहुँचे। उनके जाने के आधा घण्टा पीछे परमानन्द और लक्ष्मी वहाँ पहुँच गए। परमानन्द माँ को कोठी के भीतर छोड नौकरी की तलाश में चला गया।

लक्ष्मी ने कोठी में प्रवेश किया तो सबसे पहले उसकी दृष्टि कमला पर गई। कमला बच्चे को 'पिरैम्बुलेटर' में बैठा कोठी के लॉन मे घुमा रही थी। बच्चा गाडी में सोया हुआ था। कमला माँ को देख

गाडी चलाती हुई माँ के सामने आकर बोली, "माँ ! देखो कितनी सुन्दर गाडी है ?"

माँ ने गाडी देख प्रसन्नता प्रकट की। पश्चात् पूछा, "सुनाओ तुम कैसी हो ?"

"मौसी ने मुझको पहनने को ये कपड़े दिये हैं और मेरे कपडे उतरवा कर माली की बीवी को दे दिये हैं।"

"और ?" उसने मन की प्रसन्नता को छिपाते हुए पूछा।

"उन्होंने मुझको अपने पास बैठाकर भोजन कराया। प्रातः की चाय और नाश्ता भी पास बैठाकर खिलाया था।"

"कुछ कष्ट तो नहीं है ?"

"नहीं माँ ! सब ठीक है।"

इस समय सरोजिनी देवी कोठी से बाहर आई। उसने लक्ष्मी की कमला से बातें करने की आवाज सुन ली थी। वह इनके पास आई और लक्ष्मी की बाँह-मे-बाँह डालकर कोठी के भीतर ले गई। जाते समय कमला को कह गई, "इसको भीतर ले जाकर खटोले मे सुला दो और अपनी पढाई करो।"

लक्ष्मी ने प्रश्न-भरी दृष्टि से कमला की ओर देखा परन्तु उत्तर सरोजिनी ने दिया, "इतनी बडी हो गई है और अभी हिन्दी की पाँचवीं किताब ही पढती है। मैं इसको पढाऊँगी।"

लक्ष्मी मुस्कराई और चुप कर गई। इस समय उसको घर का काड स्मरण हो आया और उसकी मुस्कराहट विलीन हो गई। सरोजिनी ने उसके मुख पर बदलते भाव देखे और ड्राइंग-रूम मे ले जाकर कहा, "हम तुम्हारे यहाँ से निकल सीधे बाजार चले गए थे। वहाँ बच्चे की जरूरत का सामान खरीद लिया। उसके पहनने के कपडे, डिब्बे का दूध, सवारी की गाडी, सोने के लिए झूला आदि।

"कमला ने मुझसे पूछा था कि वह मुझे कैसे बुलाए। मैंने कह दिया कि मौसी कहा करे।

कँवरसेन कुछ काल तक विचार करता रहा। पश्चात् बोला, "अच्छा मैं उसको समझाऊँगा।"

अगले दिन नन्दलाल की पट्टियाँ खुल गई थी और घाव के स्थान स्टिकिंग प्लास्टर लगा था। उसके मुख को देख कँवरसेन ने कहा, "आज तो घाव ठीक मालूम देते हैं।"

"जी। आज मैं उस मार्ग से आया ही नही, जहाँ कल बैल ने मारा था।"

"तो वह मार्ग ही छोड दिया है तुमने?"

"जी हाँ।"

कँवरसेन ने शेष बात आरम्भ कर दी, "नन्दलाल! तुम्हारी आय तो काफी है। परन्तु तुम्हारी पत्नी के कपड़े फटे ही रहते हैं?"

"जी हाँ। उसको खर्च करने का ढग नही आता। इसीसे इतना कुछ लेकर भी, 'न चूल्हे आग, न घड़े पानी' वाली कहावत बन रही है।"

"कल तुमने अपनी पत्नी को क्या दिया था?"

"कल? जी, कुछ नही दिया।"

"क्यों? मै समझता हूँ कि कल की तुम्हारी आय पचास रुपये से कम नही थी।"

"जी! मैंने लक्ष्मी को कुछ नही दिया और अब मन मे विचार कर रहा हूँ कि उसे कुछ दूँगा भी नही।"

"क्यों?"

"उसको व्यय करने का ढग नही आता। जितना कुछ मैं उसे देता हूँ, वह बैलों को खिलाती है और उसके पले बैल मुझको ही मारने दौडते हैं।"

"बैल पालती है? लक्ष्मी बैल पालती है?" कँवरसेन ने विस्मय मे पूछा। उसको सन्देह हो गया कि नन्दलाल सब बात व्यगात्मक रूप मे कह रहा है।

नन्दलाल ने आगे कहा, "जी! उसके पालतू बैलो में से ही एक ने कल मुझे मार डालने का यत्न किया था। अपने भाग्य से बच गया हूँ।"

"देखो नन्दलाल! तुम बातें करने मे बहुत ही चतुर हो, परन्तु मै वकील हूँ और तुम्हारी बात समझने की योग्यता रखता हूँ। बताओ निर्मला कौन है?"

"तो क्या आप मुझको नौकरी से निकाल देना चाहते हैं?"

"मैंने यह नहीं कहा। हाँ यदि तुम छोडना चाहो तो छोड सकते हो। नन्दलाल के जाने पर योग्यता शेष नहीं हो जायगी।"

नन्दलाल को विश्वास हो गया था कि लक्ष्मी ने वकील साहब को सब बात बता दी है। इस कारण उसने बात स्पष्ट रूप मे कह देनी ही उचित समझी। उसने कहा, "नौकरी की बात भी कर लेंगे। पहले आप निर्मला की बात सुन लीजिए। वह मेरी दूसरी पत्नी है। वह मेरे साथ पिछले पाँच वर्ष से रहती है। नित्य सायंकाल मै उसके पास जाता हूँ। कल से मैंने लक्ष्मी को छोड देने का निश्चय कर लिया है और अब निर्मला के साथ रहने का विचार है। मै लक्ष्मी के पास कल से नहीं गया। उसके लडके ने ही कल सुबह मुझे पीटा था और ये घाव उसी के दिये हैं।"

"अच्छा! तो यह बात है! इन बैलो को वह पाल रही है। परन्तु नन्दलाल! क्या यह सत्य नहीं कि इन बैलो के नाम का दाना तुम किसी दूसरी गाय के आगे डालते हो?"

"निर्मला मुझको लक्ष्मी से अधिक प्रिय है। वह मेरी प्रसन्नता और सुख मे अधिक कारण बन रही है। इस कारण उसको लक्ष्मी से अधिक देता हूँ। अब लक्ष्मी के पुत्रो के व्यवहार से जो कुछ उसको देता था, वह भी नहीं दूँगा।"

कँवरसेन यह सुन चकित रह गया। उसको बात इस सीमा तक चली गई है, पता नहीं था। लक्ष्मी के बच्चो ने उसको पीटा। उन

छोटे-छोटे बच्चों ने किस कारण उसको पीटा होगा, वह विचार कर
था। उसने नन्दलाल से पूछा, "कल झगड़ा क्यों हुआ था, क्य
बता सकते हो?"

"मैं इसको बताने की आवश्यकता नहीं समझता। आपको
से पूछना चाहिए था।"

"लक्ष्मी ने इस विषय में मुझसे कुछ नहीं कहा। उसने
विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। मैं उससे पूछता क्या? यह तो मैं
अनुमान से बात कर रहा था। झगड़े की बात पहले-पहल तुम्हा
से सुनी है। तुम ही झगड़े का कारण बता सकते हो।"

"यह मेरे घर की बात है। आपको इसमें दखल नहीं
चाहिए।"

"नन्दलाल! मै तुमको कँवरसेन वकील के नाते नही पूछ
एक मनुष्य के नाते कुछ लोगों के दुःख को देख, उसके निवार
उपाय ढूँढने के लिए यत्न करना चाहता हूँ।"

"यदि आपको लक्ष्मी अथवा उसके बच्चों से बहुत हमदर्दी
आप उनकी पेन्शन लगा दीजिए न। मैं तो ऐसी स्त्री को, जो
की तरह बच्चे के बाद बच्चा पैदा करती जाती है, कुछ नहीं दे
और न ही उन बच्चों के लिए कुछ दे सकता हूँ, जो अपने पि
घूंसा तान सकते हैं।"

कँवरसेन को नन्दलाल की इस अशिष्टता-पूर्ण बातों से क्रो
आया। उसने कहा, "तुम सभ्यता की सीमा उल्लंघन कर रहे
देखो, मैं लक्ष्मी की सहायता कर सकता हूँ, परन्तु मैं चाहता था
ही करो, क्योंकि यह तुम्हारा कर्तव्य है। परन्तु तुम तो बिल्कुल अ
सगत व्यवहार पर ही तुले हुए हो।

"मैं समझता हूँ कि तुम्हारे जैसे मलिन बुद्धि वाले मुन्शी
भी हानि हो सकती है। जो बे-सिरपैर की बातें कर सकता है
भला किसी वकील का काम कैसे चला सकता है? तुम्हारे मस्ति

विकार उत्पन्न हो गया है। जब तक तुम इसको दूर नहीं करते, मैं चाहता हूँ कि तुम काम से छुट्टी ले लो।"

नन्दलाल की, इस धमकी से, होश ठिकाने आई। इस कारण कुछ नम्र हो बोला, "पर पंडित जी! मेरी नौकरी का मेरे घर के मामलों से क्या सम्बन्ध है?"

"एक सम्बन्ध है। जो बुद्धि तुम्हारे घर की बातों में काम करती है, वही बुद्धि तो मेरा काम कर रही है। यदि एक स्थान पर उसकी तर्क-शक्ति विकृत हो रही है, तो दूसरे स्थान पर भी वह युक्तियुक्त काम कर सकेगी, इसमें सन्देह है। तुम मुझको कहीं गढे में धकेल दोगे। मैं समझता हूँ कि तुम अपना हिसाब देख लो और जा सकते हो।"

"आखिर यह तो बताइए कि आप मुझसे चाहते क्या हैं?"

"मैं यह चाहता हूँ कि जितनी आय तुम्हारी हो, उसका आधा तुम लक्ष्मी और अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए दे दो। शेष आधी आय में तुम और निर्मला निर्वाह करो।"

"यह तो अन्याय हो जावेगा पंडित जी! जो मुझको अधिक सुख तथा आनन्द देती है, उसको चौथाई भाग और जिसके बच्चे मुझको पीटते हैं, उसको आधा भाग।"

"इसीलिए तो पीटे गए प्रतीत होते हो कि तुम बँटवारा करना नहीं जानते। एक चरित्रहीना को तुम सब-कुछ दे रहे हो और निष्ठावान् पत्नी को, जो तुम्हारे बच्चों की माँ है, उसको तुम कुछ नहीं देते।"

"यह प्रबन्ध मुझको पसन्द नहीं। मैं अपनी आय में से किसको कितना दूँ, यह निर्णय करना मेरा काम है।"

"तुम मेरे साथ काम नहीं कर सकते। यह निर्णय करना मेरा काम है कि कौन मुन्शी मेरे काम के योग्य है और कौन अयोग्य।"

नन्दलाल गर्दन झुकाए हुए कार्यालय से बाहर निकल आया।

कँवरसेन ने उससे चार्ज ले लिया और उसको छुट्टी दे दी। वह

अधीनस्थ मुन्शी से अपना काम चलाने लगा।

उस दिन कॅवरसेन को भागदौड बहुत करनी पडी। इस पर भी अस्थायी मुन्शी की सहायता खरीद उसने अपना काम चला लिया।

सायकाल चाय पीने के समय उसने अपनी पत्नी से नन्दलाल को निकाल देने की बात कही तो वह चिन्ता में पूछने लगी, "पर लक्ष्मी का निर्वाह कैसे होगा?"

"उसका प्रबन्ध मैं इस प्रकार कर दूँगा। आज जो मुन्शियाना मिला है, उसमें से खर्चा निकाल और भविष्य के लिए खर्चा रिजर्व में रख शेष दस रुपये बचे हैं। यह तुम लक्ष्मी को भेज देना। जब तक स्थायी मुन्शी नहीं मिल जाता, यही प्रबन्ध चलेगा। पश्चात् विचार कर लिया जाएगा।

इस प्रकार लक्ष्मी और उसके बच्चों को सहायता पहुँचने लगी। परिणाम यह हुआ कि परमानन्द आदि बच्चे पढाई मे लगे रहे।

एक सप्ताह तक नन्दलाल नहीं आया। इस बीच मे लक्ष्मी सरोजिनी से मिलने दूसरे-तीसरे दिन जाती रही तथा जो कुछ उसके भाग का मुन्शियाना में से बचता था, लेती रही। इस प्रकार एक सप्ताह में साठ रुपये के लगभग उसको मिल गए।

एक सप्ताह तक प्रतीक्षा कर कवरसेन को गम्भीरतापूर्वक अपने मुन्शी रखने और लक्ष्मी के निर्वाह के विषय में विचार करने की आवश्यकता पडी। कुछ समय तक आर्थिक सहायता वह अपने पास से भी दे सकता था, परन्तु समस्या इस परिवार को अपना जीवन चलाने के योग्य बनाने की थी। सरोजिनी का लक्ष्मी से लगाव हो गया था। उसको यह समझ आया था कि यह स्त्री सीधी, सरल और शुद्ध हृदय वाली है। कमला के विषय मे भी उसके मन में बहुत अच्छी धारणा बनी थी और

वह अपने पति से इनके लिए कुछ करने को कहती रहती थी।

इस चिन्ता और विचार का फल यह हुआ कि कवरसेन ने परमानन्द को एक दिन बुलाया। उसके आने पर वह पूछने लगा, "किस श्रेणी मे पढते हो ?"

"दसवीं मे। इस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा दे रहा हूँ।"

"पास हो जाओगे ?"

"कम-से-कम प्रथम श्रेणी मे तो अवश्य आ जाऊँगा।"

"और अधिक-से-अधिक ?" कवरसेन ने मुस्करा कर पूछा।

"प्रयत्न कर रहा हूँ कि प्रान्त मे सर्वप्रथम आऊँ।"

"ओह ! क्या तुम्हे विश्वास है कि तुम सर्वप्रथम आ जाओगे ? तुम्हारे मास्टर का तुम्हारे विषय मे क्या विचार है ?"

"मास्टर तो मुझे पुस्तकों के बिना निर्धन समझ यह कहते हैं कि केवल पास ही हो सकूँगा। परन्तु मैं जानता हूँ कि मै उन सब लडकों को पछाड दूँगा, जिनको वजीफे के लिए तैयार किया जा रहा है।"

कवरसेन इन आत्मविश्वास के शब्दों को सुन हँस पडा। उसने फिर पूछा, "परन्तु बिना पुस्तकों के पढाई कैसे कर सकोगे ?"

"मेरा एक मित्र सुन्दरलाल है। वह मेरी श्रेणी में पढता है और फुटबाल का खिलाडी है। मैंने उसके साथ प्रबन्ध कर लिया है। वह धनी पिता का अकेला बेटा है। मेरे लिए पुस्तको का प्रबन्ध कर रहा है। वह मुझको पढने को पुस्तकें देता है और मै उसे अपने नोट्स दे देता हूँ।"

"अच्छा एक काम करो।" कवरसेन ने कहा, "तुम्हारे घर मे तो पढने के लिए स्थान नहीं है। तुम स्कूल से सीधा यहीं चले आया करो। सायकाल की चाय आदि यहीं पी लिया करना और रात को दस बजे तक पढा करना। पश्चात् रात को घर चले जाया करना।

"मै चाहता हूँ कि यदि तुम यहाँ आने लगो तो तुमको तुम्हारे पिता के काम मे लगाने का यत्न करूँगा।"

परमानन्द को वास्तव मे एक कठिनाई उत्पन्न हो रही थी। जब भी वह सुन्दर के घर पढने जाता था, सुन्दर की माँ नाराज़ होती थीं। अपने घर वह पढ नहीं सकता था। अब कवरसेन के सुझाव पर वह सुन्दर से पुस्तकें ले आता और कोठी में जाकर पढता। पुस्तकों के नोट्स तैयार कर वह अगले दिन सुन्दर को दे देता था। सुन्दर उनकी नकल कर लेता। इस प्रकार दोनों का कार्य चलने लगा।

परमानन्द स्कूल से आता तो उसको पीने के लिए दूध मिल जाता था। पश्चात् वह रात के नौ बजे तक वहाँ पर बैठ कर पढाई करता था और फिर रात का खाना वह अपने घर जाकर खाता था।

उधर नन्दलाल का विचार था कि कवरसेन को उस जैसा योग्य मुन्शी नहीं मिलेगा और कुछ दिन पश्चात् उसे अवश्य बुला लिया जायेगा। वह नित्य कवरसेन को कचहरी में छोटे मुन्शी के साथ भाग-दौड करते देखता था। परन्तु जब एक सप्ताह व्यतीत हो गया और कवरसेन ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा तो उसने अपने मित्र राधाकृष्ण को समझा-बुझाकर भेजा।

कवरसेन एक दिन कचहरी के बार-रूम में बैठा था कि राधाकृष्ण नमस्कार कर सामने आ खडा हुआ। कवरसेन ने पूछा, "क्या बात है राधाकृष्ण ?"

"हजूर ! नन्दलाल बेकार घूम रहा है। बहुत बहुत तग है।"

"तो वह स्वय आकर बातचीत क्यों नहीं करता ?"

"उसने कोई अपराध किया है क्या ?"

"हाँ मानवता की हत्या करने का यत्न किया है।"

"हजूर ! उसके घर की बात घर पर छोडिए। आप अपने काम मे वास्ता रखिए और यदि वह आपके काम में कुछ खराबी करता हो तो उसे दण्ड दीजिए।"

"मेरे काम मे खराबी पैदा होने का डर पैदा हो गया था। उसकी बुद्धि मलिन हो गई है। वह शराब पीने लगा है और वेश्या-

गमन करता है। इस सब समय उसकी अपनी बीवी और बच्चे भूखे रहते रहे है। ऐसी मलिन बुद्धि का आदमी मेरी मुन्शीगिरी चला नहीं सकता।"

"तो फिर किस प्रकार काम चलेगा? उसको नौकरी से निकाल कर तो आप उसको वह कुछ भी देने के अयोग्य कर रहे है, जो वह अपनी बीवी को पहले दिया करता था।"

"देखो राधाकृष्ण! उसको अपनी बीवी के लिए अपनी आय का आधा भाग देना होगा। यदि नहीं देगा तो वह मेरे यहाॅ नौकरी नहीं कर सकेगा। रहा उसकी बीवी और बच्चो का पालन-पोषण, वह भगवान् करेगा। मै इसमे कुछ नही कहता।"

"आप तो इस व्यवहार मे न केवल अन्याय कर रहे है, प्रत्युत् क्रूरता भी प्रकट कर रहे हैं।।'

कंवरसेन ने माथे पर त्योरी चढाकर कहा, "क्रूरता कैसे?"

"अन्याय तो यह कि केवल सम्भावना मात्र से आप नन्दलाल को अयोग्य मान बैठे हैं। क्रूरता उसकी बीवी लक्ष्मी के प्रति है। उसको जो कुछ भी मिलता था, वह अब बन्द हो गया है।"

"मै समझता हूॅ कि उसकी बीवी को उस समय से अब अधिक मिल रहा है, जब नन्दलाल देता था। मै ऐसा प्रबन्ध कर रहा हूॅ कि दो वर्ष के भीतर उसका लडका इतना कमाने लगेगा कि नन्दलाल का देना लक्ष्मी भूल जाएगी।"

राधाकृष्ण अपना-सा मुख ले लौट आया। राधाकृष्ण ने नन्दलाल को वार्तालाप का सार सुनाया तो वह आग-बबूला हो गया। किसी अन्य वकील के पास काम पाने का वह यत्न करने लगा।

इस प्रकार पन्द्रह दिन और व्यतीत हो गए। कंवरसेन को एक मुन्शी मिल गया था। उसने नवीन मुन्शी, जिसका नाम जीवन लाल था, के साथ यह तय किया कि ग्राहको मे मुन्शियाना दस प्रतिशत लिया जाएगा और उस रकम मे से तैंतीस प्रतिशत् नन्दलाल के लडके परमानन्द

को मिला करेगा। जीवनलाल ने इसका कारण पूछा तो कवरसेन ने बताया, "नन्दलाल मेरे साथ सोलह वर्षों तक काम करता रहा है। उसने इन सोलह वर्षों में अत्यन्त ही चतुराई और मेहनत से काम किया है। इसके फलस्वरूप मेरी प्रेक्टिस में बहुत उन्नति हुई है। उस उन्नत प्रेक्टिस का फल तुमको भी मिलने वाला है। इस कारण तुमको अपने भाग में से पैन्शन के रूप में नन्दलाल के परिवार को देना चाहिए।"

जीवनलाल ने स्वीकार कर लिया। वह जानता था कि किसी अन्य वकील के यहाँ से पूरा दस प्रतिशत् लेकर भी उसे यहाँ के सात प्रतिशत् से कम ही मिलेगा। उसने कवरसेन की बात मान ली और अपने भाग में से एक तिहाई परमानन्द को देने लगा। इस प्रकार परमानन्द को तीन सौ रुपया मासिक मिलने लगा।

परमानन्द इतना कुछ पाने पर कार्यालय के काम में हाथ बटाना चाहता था। वह इसे अपना कर्तव्य समझता था, परन्तु कवरसेन की उसके लिए आज्ञा थी कि परीक्षा समाप्त होने तक वह कोई काम भी कार्यालय का न करे।

नन्दलाल को अभी भी कोई काम नहीं मिला था। उसका विचार था कि उसकी योग्यता को देख कर कोई भी वकील उसको अपने साथ रखने के लिए उद्यत होगा। परन्तु कुछ ऐसा चक्र चला कि जब भी वह किसी वकील से नौकरी के लिए कहता, तो वह वकील उससे पूछता कि उसने कवरसेन की नौकरी क्यों छोडी। इसके उत्तर में नन्दलाल कवरसेन की निन्दा करने बैठ जाता। किसी को कहता कि उसका उसकी पत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध हो गया है। कभी किसी को कह देता कि उसकी कुमारी लडकी को कवरसेन ने घर रख लिया है। इस प्रकार की निन्दा सुन वकील स्वय डर जाते कि नन्दलाल कभी उनसे लड, उनकी ही निन्दा न करने बैठ जाए! कवरसेन को लाहौर के प्राय सब लोग जानते थे और उसके विषय में इस प्रकार की शका कोई करने को तैयार नहीं होता था।

परिणामस्वरूप नन्दलाल स्वयं बदनाम होने लगा और उसको नौकरी मिलने में और भी कठिनाई होने लगी।

नन्दलाल को दूसरी ओर एक और निराशा हुई। जिस दिन परमानन्द ने उसको पीटा था और वह अपने घर नहीं गया था, उस दिन होटल में निर्मला को बुलाकर उसने कहा, "निर्मल! मैंने अब अपनी पत्नी को बिल्कुल छोड़ दिया है। मैं चाहता हूँ कि मैं एक मकान लेकर तुम्हारे साथ प्रकट रूप में रहूँ।"

निर्मला यह सुन अवाक् रह गई। वह ऐसी परिस्थिति की न तो आशा करती थी और न ही अपनी वर्तमान परिस्थिति को बदलना चाहती थी। उसने कहा, "क्या आजकल के मिलने का तरीका ठीक नहीं?"

"इसमें घर वाली बात नहीं बनती। तुमको एक बड़ा सा मकान ले दूँगा। उसमें बढ़िया फर्नीचर, चाँदी के बर्तन, दरियाँ, कालीन, पर्दे होंगे। वास्तव में जीवन का आनन्द आ जायगा।"

"मैं समझती हूँ कि यही मौजूदा प्रबन्ध अच्छा है। आपको भी आराम रहेगा और मुझको भी।"

"पर तुमने ही एक बार कहा था कि घर बन सकता तो ठीक था।"

"वह तो पाँच वर्ष पुरानी बात है। उस समय से कितना ही जल रावी के पुल के नीचे से बह चुका है। मैं पहले से अधिक समझदार हो गई हूँ और इस स्वतन्त्र जीवन को अच्छा समझती हूँ।"

"फिर भी विचार कर लो।"

"मैंने विचार कर लिया है। आप जब भी बुलाया करेंगे, चली आया करूँगी।"

उस दिन नन्दलाल को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि कँवरसेन के पास से उसका काम छूट जायगा। अगले दिन उसकी नौकरी समाप्त हो गई। अभी भी उसको आशा थी कि उसके काम का कुछ-न-कुछ प्रबन्ध हो ही जावेगा। यदि कँवरसेन के यहाँ नहीं तो किसी भी अन्य

वकील के पास वह आसानी से काम पा जायगा। इस आशा मे वह अपने बैंक से रुपये निकालकर व्यय करता रहा। अब उसने होटल मे ही एक कमरा किराये पर ले लिया और दिन-रात का भोजन आदि वही करने लगा।

बैंक मे रुपये कम होने लगे तो उसको कुछ चिन्ता हुई। उसने राधाकृष्ण को कँवरसेन के पास भेजा, परन्तु वहाँ से सूखा जवाब पा वह अब गम्भीरतापूर्वक कही काम पाने के लिए यत्न करने लगा।

बेकार हुए उसे एक मास व्यतीत हो चुका था। बैंक-बैलेंस दो सौ रुपयो से कम ही रह गया था। वह बहुत परेशान था। कभी विचार करता था कि कँवरसेन के पाँव पकड ले, परन्तु उसकी की हुई निन्दा ही उसके अपने सामने भूत बन उसे डराती थी कि कँवरसेन उसको धक्के मारकर कोठी से निकाल देगा।

पश्चात् जीवनलाल सुचारु रूप से काम करने लगा तो उसकी रही सही आशा भी विलीन हो गई। विवश हो उसने एक योजना बनाई। वह जीवनलाल को कँवरसेन की नौकरी से भगा देना चाहता था और पश्चात् कँवरसेन से क्षमा माँग काम पाना चाहता था।

इस निमित्त, एक दिन वह जीवनलाल को जा मिला। जीवनलाल सब जज की कचहरी के बाहर अपने एक ग्राहक की प्रतीक्षा कर रहा था। नन्दलाल ने जीवनलाल के सामने हो हाथ जोड नमस्ते कही। जीवनलाल ने पूछा, "सुनाओ भाई! कही काम मिला?"

"काम की परवाह नही। वह तो मिल ही जायगा। मै तो यूँ ही एक-दो घण्टे का काम कर पाँच-सात रुपये कमा लेता हूँ। पर मैं तुमसे एक बात करने आया हूँ।"

"हाँ, बताओ।"

"तुमको मालूम है कि सब मुन्शी दस प्रतिशत् मुन्शियाना लेते हैं और तुम केवल सात प्रतिशत् पर ही काम कर रहे हो?"

"हाँ! और मै यह भी जानता हूँ कि अनेको दस प्रतिशत् वालो

से मैं अधिक कमा लेता हूँ।"

"इस पर भी मुन्शियाना की दर कम होने जा रही है। मुन्शियों ने यह फैसला किया है कि या तो तुम आज से दस प्रतिशत् लो, नहीं तो सब मिलकर तुम्हारी मुरम्मत करेंगे।"

जीवनलाल नन्दलाल का मुख देखता रह गया। इस पर नन्दलाल ने कहना जारी रखा, "सब लोग जानते हैं कि तुम्हारे मेहनताना का एक तिहाई निकालकर वकील साहब अपनी प्रेमिका को देते हैं।"

"मैं जानता हूँ कि वह रकम तुम्हारी बीवी को दी जाती है। वह इसलिए कि तुमने वकील साहब के काम में सोलह वर्ष तक सहायता की है और उस सहायता से उनके काम में भारी उन्नति हुई है। उनके बढ़े हुए काम का मुझको भारी लाभ हो रहा है। इस कारण तेतीस प्रतिशत् तुम्हारे काम की पैन्शन तुम्हारे बच्चों को मिल रही है।"

"यह सब बकवास है। कौन किसी की फोकट में सहायता करता है? मेरी बीवी है, मेरी लड़की है। तुम्हारे गाढ़े पसीने की कमाई छीन-कर उन छिनार औरतों को दी जा रही है।"

जीवनलाल ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "बकवास बन्द करो। मैंने तुम्हारी बात सुन ली है। अब तुम जा सकते हो।"

"इस प्रकार नहीं जीवनलाल! कल तक या तो कवरसेन की नौकरी छोड़ दो, नहीं तो दो दिन का नोटिस देकर अपना पूरा हक माँगो। यदि तुम्हारा हक मिल गया तो ठीक, नहीं तो काम छोड़ना पड़ेगा और यदि तुमने काम नहीं छोड़ा तो तुम्हारी जान की खैर नहीं।"

जीवनलाल ने हाथ जोड़कर कहा, "बहुत अच्छा हजूर! फिर भी छोड़ने में कुछ समय तो लगेगा ही।"

जीवनलाल कवरसेन के पास आने से पहले एक फौजदारी वकील के साथ काम करता रहा था। इस कारण उसको नन्दलाल जैसे बदमाशों से बहुत काम पड़ता रहता था और वह अच्छी प्रकार जानता था कि ऐसे लोगों से कैसा व्यवहार किया जाए।

नन्दलाल को वही छोड, वह एक स्थान पर बैठ एक प्रार्थना-पत्र लिखने लगा। प्रार्थना-पत्र लिख वह वकील साहब को दिखाने के लिए ले गया। इसमे उसने लिखा था,

"हजूर!" यह प्रार्थना-पत्र लाहौर के डिप्टी कमिश्नर बहादुर के नाम पर था, "मै श्री कवरसेन एडवोकेट का मुन्शी हूँ। वकील साहब के पहले मुन्शी नन्दलाल ने, जिसको वकील साहब ने, उसके बिगडे चरित्र और काम मे लापरवाही के कारण निकाल दिया हुआ था, मुझको धमकी दी है कि यदि मै वकील साहब की नौकरी नही छोड देता तो वह मुझको मार डालेगा। मुझको भय है कि मेरी जान खतरे मे है। इस कारण मै हजूर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी जान की रक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया जाए।"

कवरसेन ने प्रार्थना-पत्र पढा तो पूछा, "इसे सिद्ध भी कर सकोगे?"

"पण्डित जी! यह तो मै साबित कर दूँगा। आपसे इतना सहयोग चाहता हूँ कि आप मेरे बयान का समर्थन कर दे कि आपने उसे इन्ही कारणो से निकाला था।"

"यह तो है ही। मै कर दूँगा।"

"तो ठीक है।" इतना कह मुन्शी जीवनलाल ने प्रार्थना-पत्र को खुशखत लिख कर, डिप्टी कमिश्नर बहादुर के इजलास मे दे दिया।

डिप्टी कमिश्नर ने प्रार्थना-पत्र पढा और कहा, "इतनी बडी बात कि वह तुमको मार डालना चाहता है, सिद्ध करनी कठिन हो जावेगी।"

"हजूर! आप किसी उचित अफसर को नियुक्त कर दे। मै अपनी जान के खतरे की बात सिद्ध कर दूँगा।"

"अच्छी बात है। हम कर देगे।"

नन्दलाल ने जीवनलाल को धमकी तो दे दी, परन्तु उसको विश्वास नही होता था कि धमकी का परिणाम शीघ्र निकल आएगा। इस कारण वह किसी अन्य काम की खोज मे कचहरी मे निकल, सोचता हुआ, गोल बाग की ओर चल पडा। वह सडक पर चला जा रहा था कि उसको अपने समीप से दो स्त्रियाँ टाऊन हॉल की ओर जाती दिखाई दीं। उनमे से एक ने बहुत ही सुन्दर सोने की कंठी पहिनी हुई थी। नन्दलाल ने वह कंठी देखी और उसके मुख मे पानी भर आया। वह मन मे विचार करने लगा कि यदि वह कंठी उसको मिल जाए, तो इसे निर्मला को देकर एक मास के लिए और कुछ देने से छुट्टी पा सकता है। यह कंठी कैसे प्राप्त हो, इसका उपाय वह सोचने लगा।

स्त्रियाँ टाऊन हाल और मेयो स्कूल ऑफ आर्ट्स के बीच सडक पर चल पडीं। यह सडक प्रायः निर्जन रहती थी। इस समय वहाँ कोई आने-जाने वाला दिखाई नही देता था। इससे नन्दलाल का उत्साह बढ गया। जब दोनो स्त्रियाँ सडक के बीच मे पहुँचीं, तो नन्दलाल ने जो लगभग उनके पीछे ही था, आवाज दी, "बहन जी ! बहन जी !"

वे दोनो ठहर गई और घूमकर पीछे देखने लगीं, "क्या है ?" एक ने पूछा।

नन्दलाल ने उनके समीप हो एकदम हाथ से कंठी पकड, झटका दिया। कंठी टूटी और गले से निकल नन्दलाल के हाथ मे आ गई। नन्दलाल ने कंठी हाथ मे आते ही वहाँ से भागना शुरू कर दिया। सडक पर लगी तारो मे कूद आर्ट्स स्कूल के मैदान मे चला गया। वहाँ से अजायब घर के पिछवाडे मे जा पहुँचा।

भागता हुआ वह पंजाब पब्लिक लायब्रेरी के पीछे जाकर खडा हो गया और देखने लगा कि उसका कोई पीछा कर रहा है अथवा नहीं। न तो किसी प्रकार का शोर उन स्त्रियो ने मचाया था और न ही उसके पीछे कोई आ रहा था।

नन्दलाल के पास समय नही था कि वह विचार करे कि उसका

ताला लगा दिया और दोनों सीढियाँ उतरने लगे। आगे-आगे निर्मला थी और पीछे-पीछे नन्दलाल।

जब वह नीचे उतर रहा था, तो नन्दलाल ने उन्हीं दो स्त्रियों को होटल में चढते देखा, जिनसे वह कण्ठी छीन लाया था। उसका मुख विवर्ण हो गया। उसकी टाँगें काँपने लगीं। वह दीवार का सहारा ले खडा हो गया। उसके सिर मे चक्कर आया और वह सज्ञा खो बैठा। निर्मला नीचे उतर गई।

नन्दलाल को चेतनता तब हुई, जब नीचे से निर्मला ने पुकारा, "आइये न।"

चेतना होने पर उसने देखा कि दोनों स्त्रियाँ सीढियाँ चढ ऊपर खडी उसकी ओर देखकर मुस्करा रही हैं। निर्मला सीढियों के नीचे खड़ी उसको बुला रही थी। उसने नीचे भाग जाने में ही अपनी भलाई समझी। जब वह नीचे पहुँचा तो निर्मला ने पूछा, "ये कौन थीं ?"

"मै नहीं जानता। मुझको चक्कर आ गया था। मालूम होता है कि होटल वालों ने मीट मे मिर्चें अधिक डाल दी थीं।"

"वे मेरी और आपकी ओर देखकर हँस रही थीं !"

"मै नही जानता क्यो।"

"तो मुझसे छिपाकर कोई नवीन सम्बन्ध बना रहे हैं ?"

"भला यह कैसे हो सकता है ?"

"जैसे अपनी बीवी से छिपकर मुझसे बनाया था।"

"तुममें और उनमें कोई तुलना नहीं निर्मला !"

"ऊँह ! जो मन में आए करो। मैं कब परवाह करती हूँ। मुझे कल पचास रुपये चाहिएँ। उनका प्रबन्ध कर दीजिएगा।"

नन्दलाल चुप रहा। दोनों ताँगे में सवार हो ऐलफिन्स्टन सिनेमा की ओर चल दिए।

परमानन्द, जो अब नित्य स्कूल के समय के पश्चात् कँवरसेन के कार्यालय मे जाया करता था, देख रहा था कि जीवनलाल बहुत ही परिश्रम से काम कर रहा था। उसका पिता तो सायकाल मद्यपान कर घर आता था और जीवनलाल उस समय वकील साहब के कार्यालय मे पहुँच जाता और अगले दिन होने वाले मुकद्दमों की फाइलें स्वयं पढ़ और जो कुछ उनमे करना होता, वह एक कागज में लिखकर, उस फाइल मे रख देता। कँवरसेन रात को क्लब से लौटता तो भोजन कर कार्यालय मे आ जाता और अगले दिन का काम उसकी मेज पर तैयार रहता। परमानन्द उस समय तक वहाँ रहता और अपने स्कूल का काम करता रहता। जब वकील साहब आते तो वह अपनी पुस्तकें उठाकर अपने घर का रास्ता पकड़ता।

कँवरसेन जीवनलाल के काम से बहुत प्रसन्न था। उसके सायंकाल आकर लिखे नोट्स मे, उसको बहुत सहायता मिलती थी।

इस सबका परिणाम यह हो रहा था कि कँवरसेन का काम बहुत बढ़ने लगा था। उसने फीस बढ़ा दी थी। इस पर भी लोग अपना मुकद्दमा उमसे ही करवाना चाहते थे।

परमानन्द के छोटे से मन मे ये विचार उत्पन्न हो रहे थे कि जीवन-लाल की मेहनत का एक भाग उसकी माँ को मिलता है क्योंकि वह तो उम धन को पाने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करता। अपने मन के ये विचार वह अपनी माँ से कहे बिना नहीं रह सका। एक रात खाना खाने के समय उसने माँ से कहा, "माँ! कितना रुपया वकील साहब दे चुके है?"

"क्यो क्या बात है?"

"कुछ नहीं। मै विचार करता हूँ कि यह रुपया हमको फोकट मे ही मिलता है। जीवनलाल की मेहनत से हम पल रहे है।"

"तो तुम वहाँ कुछ काम नहीं करते?"

"मुझको तो कुछ आता-जाता नहीं। साथ ही अब परीक्षा में

केवल पन्द्रह दिन रह गए हैं। एक दिन मैंने जीवनलाल से कहा भी था कि कुछ काम दो तो वह कहने लगा, "पहले पढाई करो। पीछे बात करना।' "

"पमी! ये बहुत अच्छे लोग हैं। यदि ये अपनी सहायता का हाथ न बढाते तो हम भूख से बिलख-बिलख कर मर गए होते। यह सब हुआ कैसे, कहा नहीं जा सकता। इसमें भगवान् का हाथ है, यही कहना पड़ेगा। सरोजिनी देवी को तुम्हारा भाई पसन्द आ गया और हमें एक भारी आश्रय मिल गया।"

"पर माँ! यह लिया हुआ सब कुछ देना भी तो पड़ेगा। इस जन्म मे नहीं तो अगले जन्म में ही देना पड़े।"

लक्ष्मी गभीर विचार में पड गई। कुछ विचार कर बोली, "मैं तो इसको इस प्रकार समझती हूँ कि हम सबको खाने-पहिरने के लिए देना चाहिए तुम्हारे पिता जी को। उन्होंने तुम सबको जन्म दिया है और तुम्हारा पालन करना उनका कर्तव्य है। इस कारण जो कुछ हम जीवन-लाल से ले रहे हैं, वह सब तुम्हारे पिता को देना पड़ेगा।"

"और हमको जो अपने पिता से पाने वाले थे, वह कब और किसको देना पड़ेगा?"

"जब तुम बड़े हो जाओगे तो अपने बच्चों को पढा-लिखा कर तुम उनके दिए से उऋण हो जाओगे। देखो पमी! मैं समझती हूँ कि तुमको शीघ्रातिशीघ्र पढ-लिख कर तैयार हो जाना चाहिए, जिससे जीवनलाल से तुम्हारे पिता के नाम में उतना ही लेना पड़े, जितना हमारे नाम बनता है।"

"वह उतना और अधिक का निर्णय कैसे होगा?"

"ईमानदारी से जितना आवश्यक है उतना ही लो। वह सब तुम्हारे पिता को तुम्हारे लिए देना बनता है।"

परमानन्द को यह युक्ति ठीक प्रतीत हुई या नहीं कहना कठिन है। हाँ, इसका एक परिणाम अवश्य हुआ कि वह अन्य सब विचार छोड

कर पढ़ाई में लग गया। प्रातः चार बजे उठ स्नानादि से निवृत्त हो लिखने-पढ़ने बैठ जाता। नौ बजे भोजन कर स्कूल चला जाता। वहाँ से सीधा वकील साहब की कोठी में पहुँच जाता। दिन रहने तक बाहर लॉन में, पश्चात् अन्धेरा होने पर कोठी के अन्दर पढ़ाई करता। जब कंवरसेन क्लब से लौट कर कार्यालय में आता तो वह अपने घर चला आता था।

परमानन्द अपनी पढ़ाई के नोट्स बनाता था सुन्दर के लिए। परन्तु इससे उसको स्वयं बहुत लाभ हो रहा था। उसको सारे-के-सारे नोट्स कंठस्थ हो जाते थे। परीक्षा के लिए तैयारी की छुट्टियों में परमानन्द ने सुन्दर को ऐलजैबरा और ज्योमैट्री का पूर्ण पाठ्यक्रम समझा दिया। सुन्दरलाल को समझाते समय उसे वह बात स्वयं पूर्ण स्मरण हो जाती थी।

सुन्दरलाल का पिता चरणदास परमानन्द के मकान से दो-तीन मकान दूर एक बड़े अच्छे मकान में रहता था। उसका पिता काफी धनी था और पिता की अकेली सन्तान होने से उसे कभी पैसों की कठिनाई नहीं पड़ी थी। सुन्दर लाल की माँ कुछ झिक्की स्वभाव की स्त्री थी। इसी कारण परमानन्द सुन्दरलाल के घर जाने से बचता रहता था।

परीक्षा हुई और इसके पश्चात् परमानन्द को कंवरसेन ने अपने कार्यालय में काम देना और सिखाना आरम्भ कर दिया। परमानन्द की लिखाई बहुत अच्छी थी। इस कारण नकल करने का काम उसको मिलने लगा।

जिस दिन जीवनलाल डिप्टी कमिश्नर के पास नन्दलाल के विरुद्ध प्रार्थना-पत्र देकर आया था, उसी सायंकाल परमानन्द वकील साहब के कार्यालय में बैठा एक मिसल की नकल उतार रहा था, जीवनलाल अपनी जगह पर बैठा सदा की भाँति अगले दिन के मुकद्दमों की फाईलें देख रहा था इस समय एक पुलिस अफसर सफेद कपड़ों में जीवन लाल से मिलने आया। जीवनलाल समझ गया कि वह डिप्टी-

कमिश्नर का आदमी है। उसको अपनी समीप रखी कुर्सी पर बैठा जीवनलाल ने पूछा, "फरमाईये।"

उस आदमी ने बैठते ही कहना आरम्भ कर दिया, "तुम लोग वकील के मुन्शी बन अपने को क्या समझने लगते हो ? इतनी तो तमीज होनी चाहिए कि मुकद्दमा बनाने से पहले कोई बिना तो कायम कर लो। किसके सामने नन्दलाल ने तुमको मारने की धमकी दी है ?"

जीवनलाल चुप बैठा उस पुलिस कर्मचारी का मुख देखता रहा। इस पर वह आगे कहने लगा, "देखो लाला ! पुलिस तुम्हारे बाप की नौकर नही। जब चाहा बुला लिया और सच-झूट जो मुख मे आया कह दिया। यह अदालत नहीं, पुलिस है। समझे ! बताओ तुम्हारे पास क्या सबूत है तुम्हारे कहने का ?"

जीवनलाल अभी भी चुप था। इस पर कह आदमी और भी नाराज हो गया। उसने क्रोध से उबलते हुए कहा, "दुनिया मे ऐसे हरामजादों की कमी नहीं है, जो बिना वजह अफसरो को तग करते है। तो तुम्हारे पास कोई सबूत नहीं ?"

"सबूत तो है।" जीवनलाल ने कहा, "पर तुम हो कौन ?"

"मैं पुलिस अफसर हूँ।"

"तुम पुलिस अफसर नही मालूम देते। क्या सबूत है तुम्हारे पास ? मेरा विचार है कि तुम नन्दलाल के आदमी हो। इस कारण तुम फौरन कोठी से निकल जाओ, नही तो मै थाने में टेलीफोन करता हूँ।"

इस पर वह आदमी हँस पडा और बोला, "बुला लो पुलिस वालों को।"

"तो लो।" इस समय वकील साहब कार्यालय में नहीं होते थे और टेलीफोन जीवनलाल के पास ही रहता था। जीवनलाल ने टेली-फोन उठाकर डिप्टी कमिश्नर के घर का नम्बर घुमाया। डिप्टी कमिश्नर का क्लर्क बोला तो जीवनलाल ने कहा, 'मै पडित कवरसेन ऐडवोकेट का मुन्शी हूँ। मैंने आज साहब को एक अर्जी दी थी कि मुझको एक

नन्दलाल ने मार देने की धमकी दी है। इस समय एक आदमी, जो पोशाक और बातो से नन्दलाल का ही आदमी लगता है, यहाँ आकर मुझको धमकी दे रहा है कि या तो पाँच सौ रुपया फौरन दूँ, अन्यथा मै कोठी से बाहर निकल नहीं सकूँगा। आप इसी समय ....पर वह तो भाग गया है। हमारे चौकीदार ने उसको पकड़ने की कोशिश की है, पर वह अपने को छुडाकर भाग गया है।"

डिप्टी कमिश्नर का क्लर्क कंवरसेन और जीवनलाल दोनो को जानता था। वह जीवनलाल की बात सुन हँस पडा। इस पर जीवन-लाल ने कहा, "भाई! यह हँसने की बात नहीं। मुझको शक है कि बाहर कुछ गुडे मेरी जान लेने के लिए बैठे हैं।"

"अच्छी बात है।" उधर से क्लर्क ने कहा, "मै सुपरिन्टेंडेंट पुलिस को टेलीफोन कर देता हूँ। तुम समीप थाने मे फोन कर दो।"

जीवनलाल ने पुलिस चौकी, मैक्लोटरोड पर फोन किया। इसके उत्तर मे थाना-इन्चार्ज ने कहा कि वह दो कॉन्स्टेबल भेज रहा है। इसके कुछ समय पश्चात् सुपरिन्टेंडेंट का टेलीफोन आया। उसने पूछा, "कवर सेन वकील के यहाँ से बोल रहे हो?"

"जी हाँ।"

"मुन्शी जीवनलाल है?"

"बोल रहा हूँ।"

"मै सुपरिन्टेंडेंट पुलिस बोल रहा हूँ। डिप्टी कमिश्नर साहब का फोन आया है कि कुछ गुडे तुमको घेरे बैठे है?"

"जी! ऐसा ही मेरा विचार है। एक आदमी भारी कद, सिर पर तुर्रेदार लुंगी बाँधे, कुर्ता और सलवार पहिने, गले मे गुलूबन्द लपेटे यहाँ आया था। आते ही गाली सुनाने लगा कि पाँच सौ रुपया दे दूँ। इस पर मैने डिप्टी कमिश्नर बहादुर के यहाँ फोन किया तो वह उठकर भाग गया। चौकीदार ने पकडने की कोशिश की तो उसको एक घूँसा लगाकर, उससे छूट भाग गया है।"

"भाई! इसी हुलिये का एक आदमी तो मैंने तुम्हारे पास भेजा था।"

"वह आपका आदमी नहीं हो सकता। वह तो कोई गुंडा शोदा मालूम होता था। आते ही कहने लगा, 'हरामजादे रुपया निकालो।'"

"अच्छा, मैं स्वय आता हूँ।"

इसके दस मिनट पश्चात् मोटर साईकिल पर सुपरिन्टैंडेंट पुलिस और एक हैड-कॉन्स्टेबल वहाँ आ पहुँचे। सुपरिन्टैंडेंट ने चौकीदार और परमानन्द के बयान लिये। उन्होंने भी हुलिया और अन्य बातें वही बताईं, जो जीवनलाल ने कही थीं।

इस पर पुलिस अफसर ने कहा, "हिफाजत के लिए मैं दो कान्स्टे-बल यहाँ भेज देता हूँ। परन्तु असली तहकीकात का क्या होगा?"

"शुकरिया। मेरी एक तजवीज है। मुझको पूरी उम्मीद है कि हम कामयाब होंगे। आप स्वय और एक मैजिस्ट्रेट अगर कल जिला कचहरी में किसी हलवाई की दुकान में पर्दे के पीछे छुपकर बैठ जायँ, तो मैं नन्दलाल के मुख से तस्दीक करवा दूँगा।"

"ठीक है, मैं इस बात का इन्तजाम करवा दूँगा।"

बात तय हो गई। अगले दिन सुपरिन्टैंडेंट पुलिस, एक मैजिस्ट्रेट, दो सफेदपोश गवाहों के साथ जिला कचहरी के एक हलवाई की दुकान में, एक पर्दे के पीछे छिप कर बैठ गए।

नन्दलाल निर्मला को सिनेमा दिखा कर घर छोड़, रात को साढे बारह बजे होटल में लौटा। जब वह अपने कमरे का दरवाजा खोल कर भीतर जाने लगा तो एक लिफाफा उसके पाँव की ठोकर से कमरे के बीच में जा गिरा। नन्दलाल ने प्रकाश किया, तो उसको लिफाफा कमरे के बीच में पड़ा मिला।

उसने वह उठा लिया। उस पर कोई नाम नहीं लिखा था। लिफाफे के अन्दर एक चिट्ठी थी, जिसमें लिखा था,

"जनाबे-आली !

"मुझको यह देख निहायत ही खुशी हासिल हुई है कि मेरी कंठी मुझसे किसी अच्छी औरत के गले की रौनक बन रही है। अब मुझको इस बात का अफसोस नहीं कि जब आप कंठी झपट कर भागे थे, तो मैंने आपको पकड़वाने की कोशिश क्यों नहीं की। मेरा ख्याल कि कंठी की आपको बहुत जरूरत है, ठीक ही निकला है। जब मैंने आपको अपनी महबूबा के साथ, जो कंठी पहने थी, जाते देखा तो मैं समझ गई कि यह नाचीज कंठी आपके लिए कितनी पुरलुत्फ साबित हुई है।

"आपने मुहब्बत के लिए सरे-बाजार डाका डालने की जो जुर्रत की है, मैं उसकी तहे दिल से दाद दिए बिना नहीं रह सकती।

"मैं भी एक जुर्रत का काम कर रही हूँ। क्या ही अच्छा हो, अगर आप उसमें मेरी थोड़ी सी मदद कर दें।

"मैं इसी होटल में कमरा नं० बीस में ठहरी हुई हूँ। अगर आपके मन में मेरे लिए करने का कुछ भी खयाल हो, तो कल सुबह मेरे कमरे में आइयेगा। सुबह का नाश्ता यहीं नोश फरमाइयेगा।"

नन्दलाल इस चिट्ठी को पढ़ कर चिन्ता करने लगा। उसको भय लग गया कि कहीं ये औरतें उसको पुलिस के हवाले न कर दें। उसने चिट्ठी को कई बार पढ़ा। अन्त में इस परिणाम पर पहुँचा कि पकड़वाने के लिए यह तरीका ठीक नहीं हो सकता। उनको, सम्भव है, सहायता की बहुत ही आवश्यकता हो। उनसे मिलकर पता करना चाहिए।

रात को वह बहुत काल तक इस चिट्ठी का अर्थ जानने का यत्न करता रहा। प्रातः उठ स्नानादि से छुट्टी पा, कपड़े पहिन, वह बीस नम्बर के कमरे के बाहर जा पहुँचा। दरवाजा बन्द था। उसने उसे धीरे से खटखटाया। दरवाजा उस स्त्री ने, जो कंठीवाली के साथ थी, खोला।

नन्दलाल को देखते ही वह मुस्कराई और बोली, "तो आप आ गए हैं ? आइये।"

कमरा नम्बर बीस, दो कमरों का सैट था। एक के पीछे दूसरा कमरा था। पहले कमरे में बैठने की जगह बनी थी। नन्दलाल को उस कमरे में सोफे पर बैठा वह स्त्री पिछले कमरे में चली गई और कुछ ही देर में दोनों स्त्रियाँ उस कमरे मे आ गईं।

कमरा बहुत ही अच्छी तरह से सजा हुआ था। सोफा के सामने एक गोल मेज थी, जिस पर एक बड़ा सा गुलदस्ता एक चीनी के जग में रखा था। दीवारों पर सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र लगे थे। दरवाजे और खिडकियों पर रेशमी पर्दे लटक रहे थे।

कठी वाली स्त्री लगभग तीस वर्ष की प्रतीत होती थी। उसके कानों और गले में भूषण थे। कपड़े तो साधारण थे, इस पर भी साफ-सुथरे थे।

उस स्त्री के आने पर नन्दलाल ने हाथ जोड नमस्ते की। वह मुस्कराई और नन्दलाल के पास ही सोफा पर बैठ गई। बैठते ही उसने पूछा, "सुनाइये आपकी महबूबा खुश तो है ?"

"जी बहुत।"

"खुदा करे कि वह खुशो-खुर्रम रहे। अच्छी खूबसूरत मालूम होती है। मैं आपकी जुर्रत से बहुत खुश हूँ। एक बात इससे जाहिर होती है कि आपका हाथ तंग है। क्या मेरा कयास ठीक है ?"

नन्दलाल ने आँखें नीची किये हुए कहा, "आपका खयाल गलत हो सकता है क्या ? हकीकत यह है कि इस समय मेरे पास बैंक में सौ रुपये से कुछ ही ज्यादा रह गए हैं। परसों उसने कोई नजर माँगी थी और मैं परेशान था। कल आप अकेली मिल गईं, तो मैंने कंठी आपके गले से उतार उसके गले में पहिना दी।"

इस पर दोनों हँसने लगीं। इस समय होटल का बैरा प्रात. का अल्पाहार ले कर आया और चाय का सामान लगाकर चला गया।

दूध, दलिया, अण्डे, कार्न-फ्लेक्स, मक्खन, डबल रोटी और चाय का पानी था। बैरे के चले जाने पर दूसरी स्त्री उठी और कमरे के बाहर का दरवाजा बन्द कर आई। अब तीनों मे काम की बातें होने लगीं।

"आप क्या यही काम करते है?"

"कौन सा?"

"यही। भरे बाजार डाके डालना।"

"जी नहीं। यह तो जरूरत के वक्त करना पड गया था।"

"इसके अलावा क्या करते है?"

"आजकल बेकार हूं। पहले एक मशहूर वकील का मुन्शी था।"

"कितनी देर तक मुन्शीगिरी की है आपने?"

"यही, लगभग सोलह वर्ष तक।"

"तब तो आप बहुत ही काम के आदमी है। आप हमसे साझेदारी कर लीजिए।"

"आपका काम क्या है?"

"इन्सान की सबसे बडी जरूरत हम पूरी करती हैं।"

"क्या आटा-दाल बेचती हे?"

"इससे भी ज्यादा जरूरी। मेरा मतलब है, औरत।"

नन्दलाल अवाक् बैठा रह गया। इस पर उस औरत ने कहा, "मैं अपने साथ दस लडकियाँ लाई हूँ। वे मैंने मुख्तलिफ होटलो मे रखी हुई है। जरूरतमन्दो को मुहैया करती हूँ।

"हमारे लिए एक मुश्किल है। हम औरतें है और सब काम खुद नहीं कर सकतीं। यूँ तो यह नसीम है। इसको जरूरतमदो की बहुत पहचान है। इस पर भी कल दिन भर घूमने के बाद हमको सिर्फ तीन ग्राहक मिले थे।

"अच्छा आपका नाम क्या है?" उस स्त्री ने एकदम बात बदल कर पूछा।

"जो आपका नहीं हो सकता। मेरा मतलब है कि मै आदमी हूँ

और आप औरतें हैं। हम दोनो का नाम एक जैसा नहीं हो सकता। हाँ तो आपका क्या नाम है ?"

दोनों औरतें हँस पड़ी। नसीम ने कहा, "ठीक तो कहते हैं। पहले अपनी वाकफियत दो। पीछे किसी से पूछने का हक रखती हो।"

वह औरत मुस्कुराई और बोली, "होटल में मैंने अपना नाम रामप्यारी लिखाया है। असल मे मैं मुसलमानिन हूँ। पर आपका काम रामप्यारी से ही चल जाएगा।

"मेरे पास दस लड़कियो के फोटोग्राफ हैं। हम जरूरतमंदों के पास जाती हैं और फोटो दिखा कर सौदा कर आती है। बाद में मुकर्रिर जगह पर लड़की पहुँचा देते हैं। दिक्कत यह पेश आ रही है कि हमारी वाकफियत कम है। लोग हमारा एतबार नहीं करते और रुपया देने के समय कम देकर टाल जाते हैं।

"आप हमसे इनकी तस्वीरें ले जाइये। हर एक लड़की का, एक रात के लिए एक आदमी की खिदमत का दाम तस्वीर के पीछे लिखा है। जो कुछ आप लाएँगे, उसका दस फीसदी आपको मिलेगा।"

दस फीसदी ? मुन्शी की फीस दस फीसदी। औरत की दलाली दस फीसदी। नन्दलाल मन में विचार करता था कि यह काम भय-युक्त है और कमिशन सिरफ दस फीसदी कम है। परन्तु कुछ देर विचार कर वह इसके लिए तैयार हो गया।

जीवनलाल नन्दलाल को ढूँढ रहा था। साढे दस बजे से पुलिस अफसर हलवाई की दुकान में, पर्दे के पीछे छिप कर बैठे थे और जीवनलाल नन्दलाल की खोज मे भाग-दौड कर रहा था। उस दिन बारह बजे के पश्चात् नन्दलाल बार-रूम मे निकलता दिखाई दिया। जीवन-

लाल ने उसके समीप जाकर कहा, "मुन्शी नन्दलाल ! तुमने तो मेरी नींद हराम कर दी है।"

"क्यों, क्या हुआ है ?"

"आओ मेरे साथ। एक प्याला चाय पियेंगे और मैं अपनी बात बताऊँगा।"

नन्दलाल उसके साथ हलवाई की दुकान की ओर चल पड़ा। उसको प्रातः का अल्पाहार किए चार घण्टे हो चुके थे और इस समय वह अपने पेट में कुतर-कुतर अनुभव कर रहा था। दोनों हलवाई की दुकान पर जा पहुँचे और मेज़ के पीछे कुर्सियों पर जा बैठे। उनकी पीठ के पीछे पर्दा पड़ा था और पर्दे के पीछे डिप्टी सुप्रिन्टेंडेंट पुलिस तथा एक मजिस्ट्रेट बैठे इनकी बातें सुन रहे थे। जीवनलाल ने वहाँ बैठ कर पूछा, "चाय पियोगे अथवा पूरी वगैरह लोगे।"

"पहले पूरी मँगवाओ। चाय पीछे लेंगे।"

जीवनलाल ने चार-चार पूरी लाने के लिए कह दिया। नौकर पूरी लेने गया तो जीवनलाल ने बात आरम्भ कर दी। उसने कहा, "कल तुमने मुझसे यह कहा था न कि यदि मैंने कँवरसेन की नौकरी नहीं छोड़ी तो तुम मेरी मुरम्मत करोगे ?"

"हाँ। मगर तुम मेरी मान रहे हो क्या ?"

"मैंने पंडित कँवरसेन जी से कहा है कि मुझे नौकरी से पृथक् कर दें। वे बहुत परेशान हैं और कहते थे कि मुन्शी के बिना उनका काम चलना बड़ा मुश्किल है। यदि मैं छोड़ कर चला गया तो नया मुन्शी न जाने कब मिलेगा। इसलिए उन्होंने कहा है कि उनको एक महीने की मोहलत दूँ। या तो कोई दूसरा मुन्शी ढूँढ लेंगे या मेरा मुन्शियाना घटा देंगे।'

"तो वे मुझको दुबारा क्यों नहीं रख लेते ?"

"यह तो मैंने पूछा नहीं। न ही मैंने तुम्हारी धमकी की बात उनसे कही है।"

"तो तुम उनको बता दो कि मेरी जगह पर, जो भी आदमी काम करेगा, मैं उसको जीता नहीं छोड़ूँगा।"

इस समय हलवाई का नौकर पूरी, साग आदि सामान ले आया और उनके सामने रख चला गया। जीवनलाल ने अपनी बात चालू रखी। उसने कहा, "मैं समझता हूँ कि यह धमकी ठीक नहीं। इसी कारण मैंने यह उन्हें नहीं बताई। यदि यह बात फैल गई कि तुम मरने-मारने को तैयार हो, तो पुलिस तुमको तग करेगी।"

"मैं पुलिस की क्या परवाह करता हूँ। मै धमकी नहीं दे रहा बल्कि ठीक कह रहा हूँ। यदि एक-दो दिन में तुम अपनी नौकरी नहीं छोड दोगे, तो ठीक नहीं होगा।"

"मैं तुम्हारे सामने एक और प्रस्ताव रखता हूँ। यदि तुम मेरा पीछा छोड़ दो, तो जब तक तुम्हारा काम नहीं बन जाता, मै तुम्हें खर्च के लिए पाँच रुपया रोज देता रहूँगा।"

"पाँच से मेरा क्या बनता है? इससे कहीं अधिक तो मैं अब कमा रहा हूँ। देखो यह क्या है?" इतना कह नन्दलाल ने जेब से लडकियों की तस्वीरें निकाल कर जीवनलाल को दिखानी आरम्भ कर दीं।

जीवनलाल ने पूछा, "ये क्या हैं?"

"ये कुछ लडकियों की तस्वीरें हैं। इनके एक-एक रात के दाम यहाँ पीछे लिखे हैं। आज रात के लिए पाँच बुक कर चुका हूँ। अढाई सौ रुपया नकद ले चुका हूँ। उसमें से दस प्रतिशत् के हिसाब से पचीस रुपये तो मैं कमा चुका हूँ।"

"इन्हें कहाँ पा गये तुम?"

"देखो जीवनलाल! यह बिल्कुल तुम्हारे लायक है। इसका दाम भी ।"

वह इससे आगे नहीं कह पाया। पर्दे के पीछे से डिप्टी सुप्रिन्टैंडेंट पुलिस और मजिस्ट्रेट बाहर निकल आये। पुलिस अधिकारियों ने नन्द-लाल को, जो उन्हें देख भाग जाना चाहता था, पकड लिया। डिप्टी

सुप्रिन्टेंडेंट पुलिस ने उसके कन्धे पर हाथ रखा और पिस्तौल दिखाकर कहा, "हिलो नहीं।"

नन्दलाल बैठ गया। इस समय एक दर्जन कॉन्स्टेबल वहाँ आ पहुँचे और नन्दलाल को हथकड़ी लगा दी गई।

इस समय पूर्ण कचहरी में नन्दलाल के पकड़े जाने का शोर मच गया। राधाकृष्ण ने सुना तो वह भी आया। नन्दलाल ने राधाकृष्ण की जेब में, अढाई सौ रुपया, जो दलाली का था, डाल दिया।

सायंकाल जीवनलाल कार्यालय में आया तो उसने नन्दलाल के पकड़े जाने की बात नहीं बताई। वह इसे परमानन्द से छिपाकर रखना चाहता था, परन्तु वह ऐसा कर नहीं सका।

कँवरसेन अभी चाय पी रहा था कि पुलिस वकील साहब के बयान लेने आ पहुँची। वकील साहब ने बयान दिए तो परमानन्द समझ गया।

परमानन्द ने रात घर पहुँच सारी बात माँ को सुना दी। लक्ष्मी वह सुन कि उसका पति हवालात में है और उस पर संगीन जुर्म है, चिन्तित हो गई। रात-भर उसे नींद नहीं आई। उसके मन में द्वन्द चल पड़ा कि अब वह क्या करे। मन कहता था कि उसको पति को छुडाने के लिए यत्न करना चाहिए। बुद्धि कहती थी, 'क्या लाभ होगा इससे।' अब कँवरसेन की कृपा से उनकी गाडी चलने लग गई थी और परमानन्द कँवरसेन के कार्यालय में काम करने लग गया था। वह आशा करती थी कि शीघ्र ही वह काफी कमाने लगेगा। इस पर भी उसका मन कहता था कि नन्दलाल उसका पति है। पत्नी होने के नाते उसको उसकी सहायता करनी चाहिए। उसका मन कहता था कि यदि वह सरोजिनी के पाँव पकड लेगी तो वह अपने पति से कहकर उसके पति को छुडाने का प्रबन्ध करा देगी।

मन और संस्कारों में झगडा चलता रहा और रात-भर वह सो नहीं सकी। प्रातःकाल उठ बच्चों को तैयार कर स्कूल भेज, छोटे बच्चे को साथ ले वह वकील साहब की कोठी में जा पहुँची। कँवरसेन

कचहरी जाने को तैयार खड़ा था। लक्ष्मी ने उसके सामने उपस्थित हो कहा, "मैं अपने पति के विषय में सारी बात जानना चाहती हूँ।"

"जीवनलाल तुमको बता देगा।"

"मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।"

"यह प्रबन्ध भी जीवनलाल कर देगा।"

"मैं उनको छुडाने का यत्न करना चाहती हूँ।"

कँवरसेन यह सुन विस्मय में उसका मुख देखता रह गया। लक्ष्मी ने जब द्रवित नेत्रों से कँवरसेन की ओर देखा तो उसने कहा, "इस विषय पर सायकाल बात कर लेंगे।"

जीवनलाल लक्ष्मी को लेकर थाने चला गया और वहाँ उसने दोनों की भेंट करा दी। नन्दलाल वहाँ चुपचाप बैठा था। उसने लक्ष्मी को देखा, परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा। लक्ष्मी भी नहीं जानती थी कि क्या कहे। जीवनलाल ने केवल इतना कहा, "यह वकील साहब से कह रही हैं कि वे आपका मुकद्दमा लड़ें।"

नन्दलाल हँस कर चुप कर रहा। मुलाकात समाप्त हुई, परन्तु लक्ष्मी और नन्दलाल में कुछ बात नहीं हुई।

उसी दिन सायकाल लक्ष्मी पुन. कोठी में पहुँच, कवरसेन से मिली। कवरसेन ने कहा, "उसके विरुद्ध लड़कियों की दलाली का आरोप सिद्ध नहीं हो सकेगा। कोई लडकी पकड़ी नहीं गई। अधिक-से-अधिक नन्दलाल का दफा एक सौ सात में चालान किया जा सकता है, परन्तु इसकी जमानत हो सकती है। मैं समझता हूँ कि यह तो हो ही जाना चाहिए।"

लक्ष्मी इस सब समय रोती रही। कँवरसेन ने कुछ विचार कर कहा, "मुकद्दमा अदालत में उपस्थित होने दो, फिर जो कुछ हो सकेगा कर दूँगा।'

जिस दिन नन्दलाल पकड़ा गया था, उसी सायंकाल निर्मला उससे पचास रुपये माँगने के लिए कमरे में जा पहुँची। नन्दलाल का कमरा बन्द देख वह विचार करने लगी कि वहाँ ठहरे अथवा फिर कुछ देर बाद आए। वह अभी विचार कर ही रही थी कि बीस नम्बर की स्त्रियाँ होटल से अपना सामान उठवा जाती दिखाई दीं। उन्होंने भी निर्मला को देखा। वे मुस्कराईं, फिर कुछ विचार कर उसके पास आ पूछने लगीं, "बाबू नन्दलाल को देख रही है आप ?"

"हाँ, क्यों ?"

"हमारे साथ नीचे आइये। कुछ जरूरी बात है।"

निर्मला उनके विषय मे अधिक जानना चाहती ही थी और नन्दलाल अभी वहाँ था नहीं। इस कारण उनके साथ सीढ़ियाँ उतर गई।

उन्होंने ताँगे मे बैठने से पूर्व कहा, "नन्दलाल से मिलना चाहती हो तो हवालात मे चली जाओ। वह पकड़ा गया है।"

निर्मला के मुख का रंग उड़ गया और वह बितर-बितर मुख देखती रह गई। इस पर उनमें से एक ने निर्मला को एक ओर लेजाकर कहा, "हम तो यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकतीं। तुम भी अब उसका पीछा छोड़ दो। रुपये की जरूरत हो तो यह कण्ठी सर्राफ के यहाँ बेच डालो। यह भी चोरी की है।"

"तो आप यह सब जानती हैं ?" निर्मला ने पूछा।

"हाँ। यह कण्ठी हमारी है। नन्दलाल ने हमारी चोरी की थी।" इतना कह वे निर्मला को वहीं छोड़, ताँगे मे सवार हो गईं। निर्मला ने होटल के बैरे से, जो नन्दलाल का काम किया करता था, पूछा, "पण्डित जी के विषय मे ये स्त्रियाँ कह रही हैं कि वे पकड़े गए हैं। क्या यह सच है ?"

"जी हाँ। पुलिस यहाँ आई थी और उनके कमरे की तलाशी ले गई है।"

"क्या किया है उन्होंने ?"

"पुलिस वाले तो कहते थे कि कई जुर्म हैं, जो इन पर लगाए जा रहे हैं। चोरी, डाका, मार डालने की धमकी और बर्दा फरोशी।"

निर्मला यह सुन कर देर तक सोचती रही। उसको उस औरत का कहना कि कठी बेच दो, यह भी चोरी की है, कानों में खटकने लगा। वह होटल से उतरी और सीधी बाजार सर्राफा में जा पहुँची। वहाँ जा, उसने अपनी कँठी एक सर्राफ को दिखाई और पूछा, "इसका क्या कुछ मिल सकेगा?"

सर्राफ ने कठी हाथ में पकड़ कर निर्मला के मुख की ओर देखा, फिर पूछा, "यह कहाँ से लाई हो बीबी?"

"क्यों?"

"यह पीतल की है। डब्बी बाजार में दस-बारह आने की मिलती है।"

निर्मला का शरीर भय तथा क्रोध से काँपने लगा और उसकी आँखों में से आँसू निकल आए। उसने दुकानदार से कहा, "भाई जी! मुझको बहुत धोखा दिया गया है। आप इसको दे दीजिए। मैं इसको वापिस करने की कोशिश करूँगी।"

दुकानदार विस्मय में निर्मला का मुख देखता रह गया। वह वहाँ से सीधी अपने घर चली गई। कठी को छिपाकर रख दिया और अपने भविष्य के विषय मे विचार करने लगी।

उसने मन में निश्चय कर लिया था कि अब वह नन्दलाल का मुख नहीं देखेगी। निर्मला की माँ तो कई महीनो से उसको कह रही थी कि नन्दलाल को छोड़ किसी अन्य का आश्रय ले ले। परन्तु निर्मला न तो नन्दलाल का कोई उपयुक्त स्थानापन्न पा सकी थी और न ही वह नन्द-लाल से निराश हुई थी। आज की बातो को सुन, उसको अपनी माँ की सूझ-बूझ पर विश्वास हो गया।

जब तक नन्दलाल का मुकद्दमा होता रहा, तब तक वह हवालात में रहा और निर्मला ने अपना प्रबन्ध एक अविवाहित युवक से कर लिया।

लगभग दो मास के मुकद्दमे के पश्चात् नन्दलाल से एक हजार की जमानत और एक हजार का मुचलका माँगा गया।

इस पर लक्ष्मी का आग्रह होने लगा कि इसका प्रबन्ध कर दिया जाए। कँवरसेन कहता था कि वह उसको फँसाने वाला है और उसके मुन्शी को मार डालने की धमकी देने के कारण ही उसकी जमानत माँगी गई है, अतः वही उसकी जमानत नहीं दे सकता।

इस उत्तर पर लक्ष्मी को भारी ठेस पहुँची और उसने खाना-पीना छोड दिया। जब कँवरसेन को यह पता लगा कि लक्ष्मी दुराग्रह करने पर उतर आई है तो वह सरोजिनी को साथ लेकर उसको समझाने के लिए गया। कँवरसेन ने कहा, "लक्ष्मी देवी! यह हठ तो ठीक नहीं है।"

"तो क्या होगा?" उसने पूछा।

"उसने इतना घोर अन्याय किया है कि उसको एक वर्ष तक जेल मे पड़े रहने देना चाहिए।"

"परन्तु पण्डित जी! वे मेरे पति हैं। मुझसे यह देखा नहीं जाता।"

"तुम मूर्ख हो लक्ष्मी! यह वही आदमी है, जो तुमको कहता था कि वह तुमको खर्चा नहीं दे सकता, तुम जहाँ चाहो चली जाओ। यह वही आदमी है, जो अपने बच्चों के लिए कपड़े अथवा पुस्तकें खरीदने के स्थान शराब पीना अधिक अच्छा समझता था। यह वही है, जो गैर औरतों के लिए भूषण खरीदने के लिए, तुमसे रुपये छीनता हुआ तुमको पीटने में भी सकोच नहीं करता था। मैं समझता हूँ कि इसको अपने पापों का फल भोगने देना चाहिए। जो इस न्याय के मार्ग मे बाधा खड़ी करना चाहेगा, वह स्वय पाप का भागी होगा।"

लक्ष्मी इन युक्तियों का तथा इन वस्तुस्थितियों का उत्तर नहीं दे सकती थी, इस कारण वह चुप थी। उसको खाना छोड़े तीन दिन हो चुके थे और वह अति दुर्बल अवस्था में लेटी हुई थी। कँवरसेन ने समझा कि उसने लक्ष्मी को निरुत्तर कर दिया है और अब वह हठ छोड़ खाना आरम्भ कर देगी। अतएव उसने कहा, "तो अब उठो। संगतरे का रस

ले लो। तुम्हारा उत्तरदायित्व बहुत अधिक है। दस बच्चों के पालन-पोषण का कार्य इस प्रकार के दुराचारी को छुडाने से अधिक श्रेष्ठ है।"

सरोजिनी ने रमा को संगतरे देकर कहा कि वह उनका रस निकाल कर ले आए। रमा उठी और रसोई में सगतरों को छील, उनका रस निकाल कर एक काँच के गिलास में भर लाई। परन्तु लक्ष्मी ने पीने से इन्कार कर दिया। उसने कहा, "आप मुझको मेरी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने पर विवश न करें। मैंने तो अपनी जीवनडोर भगवान् के हाथ में छोड दी है। बच्चे भी उसी की देन हैं और उनकी चिन्ता करना भी उसका कर्तव्य है। मैं समझती हूँ कि यह बेकार शरीर अब छूट जाए तो ठीक है।"

लक्ष्मी के इस हठ को देख वकील साहब और उनकी पत्नी विस्मय में देखते रह गए। कँवरसेन ने समझा कि उसने उसके कर्तव्य पालन कर दिया है। उसने इस मूर्ख औरत को उसके कार्य का अयुक्तिसगत होना बता दिया है। इस पर भी यह हट कर जीवन बर्बाद करना चाहती है तो वह क्या कर सकता है? इस कारण वह जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। सरोजिनी अभी कुछ और कहना चाहती थी, परन्तु कवरसेन ने उसको कहा,

"चलो सरोजिनी! जहाँ बुद्धि का कुछ भी उपयोग नहीं होता, वहाँ ठहरने से क्या लाभ होगा।"

सरोजिनी कुछ देर तक मन में कुछ सोचती रही और पश्चात् उठ लक्ष्मी को नमस्कार कर चल पडी।

मार्ग में सरोजिनी ने कहा, "इस नन्दलाल को छुडाने का कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा।"

"क्यों?" कँवरसेन ने चौंक कर आश्चर्य में पूछा।

"लक्ष्मी को कुछ हो गया तो इन बच्चों का क्या बनेगा?"

"तो मैंने बच्चो का ठेका लिया हुआ है क्या?"

"आप तो व्यर्थ में नाराज़ हो रहे हैं। प्रश्न यह नही कि नन्दलाल

का जेल मे रहना ठीक है अथवा गलत। कितने ही अपराधी है, जो पकड़े ही नहीं जाते। ऐसे उदाहरण कम नहीं कि जहाँ हत्याएँ हो गईं परन्तु हत्यारे पकड़े ही नहीं गए। ये काम राज्य का है कि वह दोषी को दण्ड दे। परन्तु हम तो मनुष्य है। हमारा कर्तव्य है कि जहाँ-कहीं कोई मुसीबत आती देखें वहाँ यथाशक्ति इसके निवारण का यत्न करें।

"हम लक्ष्मी के व्यवहार पर न्याय करने वाले कौन है? हमारी अवस्था तो ऐसी है कि हमने मार्ग चलते-चलते किसी के घर को आग लगी देखी है। उस घर मे घरवाले के बच्चो के जल जाने का भय है और समीप कोई और है नहीं, जो उनको बचा सके। हम बिना इस बात का विचार किए कि किसने आग लगाई है और जलने वालो ने क्या अपराध किया है, बच्चो को आग से बचाने के लिए तैयार हो जाते है। क्या ऐसा करने से हम भूल करते है? क्या उस समय इस बात के विवेचन का समय होगा कि कौन अपराधी है और कौन निरपराधी?"

कॅवरसेन खड़ा हो गया और सरोजिनी का मुख देखने लगा। सरोजिनी ने चलते-चलते कहना जारी रखा, "इस समय किसी भाग्य के विधान मे अथवा किसी अन्य कारण से हम लक्ष्मी के परिवार के सम्पर्क मे हैं। हम देख रहे है कि दस प्राणी वहाँ मँझधार मे पडे है। हम यह भी जानते है कि अन्य कोई न तो उनकी अवस्था को जानता है और न ही उनको मँझधार मे निकाल सकता है। ऐसी अवस्था मे मनुष्य होने के नाते हमको इन बच्चो को बचाने का यत्न करना ही चाहिए।"

कॅवरसेन निरुत्तर हो गया था। उसने कहा, "जब तुम कहती हो तो मै कोई उपाय सोचूँगा।"

सरोजिनी का मुख खिल उठा। उसने प्रसन्नता मे देदीप्यमान हो अपने पति की ओर देखा और कहा, "मै आप से यही आशा करती थी। आपने क्रोधवश ही कुछ भी न करने की बात कही थी।"

अगले दिन कॅवरसेन ने परमानन्द को एक हजार रुपया सरकारी खजाने मे जमा करा और जीवनलाल के साथ जा अपने पिता का आशिन

बनने की दरख्वास्त देने के लिए कह दिया।

कानूनी कार्यवाही पूरी कर जब नन्दलाल को छुडाया गया और उसको पता चला कि उसे छुडाने वाला परमानन्द है, तो वह भौंचक्का हो खडा रह गया। सिटी मजिस्ट्रेट की अदालत में मुचलके पर हस्ताक्षर कर, जब वह बाहर निकला तो उसने परमानन्द से पूछा, "तुम्हारी तो कोई जायदाद नहीं। तुम्हारी जमानत कैसे मान ली गई है।"

"मैंने एक हजार रुपया नकद सरकारी खजाने में जमा करा दिया है।"

"यह रुपया तुम्हारे पास कहाँ से आया?"

"मुझको मालूम नहीं। माँ ने दिया है।"

"वह यह रुपया कहाँ से लाई है?"

"चल कर स्वय पूछ लीजिए। वह मरणासन्न चार दिनों से पड़ी है।"

"क्यों?"

"उसने व्रत लिया है कि जब तक आप जेल से नहीं छूट जाएँगे, वह अन्न नहीं लेगी।"

नन्दलाल के मस्तिष्क में चक्कर आने लगा। वह तीन महीने जेल मे रहा था और वहाँ पर मन में छूट जाने के पश्चात् बम्बई अथवा कलकत्ता जाकर जीविकोपार्जन की योजना बनाता रहा था। उसने निश्चय कर लिया था कि अब वह लक्ष्मी का मुख नहीं देखेगा। परमानन्द से उसकी बात करने की इच्छा नहीं थी। पर यह क्या? परमानन्द उसका जामिन है। लक्ष्मी उसके लिए भूखे मर जाने का व्रत लिये हुए है। वह वहीं कचहरी के बाहर बरामदे की सीढियों में, सिर को हाथों में पकड़, बैठ गया।

"क्या है पिताजी ?" परमानन्द ने पूछा।

"कुछ नहीं। सिर में चक्कर आने लगा था।"

"पानी पीने के लिए लाऊँ ?" वह भागा हुआ गया और एक गिलास में जल ले आया। नन्दलाल ने जल पिया तो उसका चित्त स्थिर हुआ। उसने उठकर कहा, "तुम तो मुझको पीटते थे ?"

परमानन्द ने इस वहम में न पड़ने के लिए कह दिया, "पिताजी ! घर चलिए। माता जी की अवस्था प्रतिक्षण बिगड़ती जा रही है। आप चलेंगे तो वह कुछ खायेंगी।"

नन्दलाल किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति उठा और परमानन्द के साथ ताँगे में सवार हो चल पड़ा। घर पर पहुँच उसको पता लगा कि बच्चे पहले से साफ-सुथरे कपड़े पहने हुए हैं। लक्ष्मी का बिस्तर भी पहले से अधिक साफ-सुथरा था। लक्ष्मी अति दुर्बल, निस्तेज, खाट पर लेटी हुई थी। इस पर भी जब नन्दलाल वहाँ पहुँचा, तो वह आँखें मल-मलकर देखने लगी थी कि कहीं उसको भ्रम तो नहीं हो रहा। परमानन्द जो ताँगे वाले को पैसे देने के लिए पीछे रह गया था, आया और बोला, "माँ ! लो अब तो कुछ खा लो। पिताजी छूट गए हैं।"

"हाँ लाओ। अभी जीने में कुछ प्रयोजन प्रतीत होता है।"

लक्ष्मी को पुनः अपनी ताकत में आने के लिए पूरा एक सप्ताह लग गया। तब तक नन्दलाल अपने घर में ही रहा। उसको सब परिस्थिति का ठीक-ठीक ज्ञान हो गया था। कँवरसेन कैसे उसके परिवार की सहायता कर रहा है, परमानन्द कँवरसेन के पास काम सीखने जाता है और उसकी अनुपस्थिति में घर का कार्य कैसे चलता रहा है।

इससे वह विचार करता था कि क्या वह जीवनलाल को निकलवा-कर उसके स्थान पर काम पर लग जाए अथवा किसी अन्य स्थान पर काम ढूँढे। वह यह जानता था कि वह लाहौर में इतना बदनाम हो चुका है कि कोई भला वकील उसको अपना मुन्शी नहीं बनाएगा।

बहुत विचारोपरान्त उसने यही उचित समझा कि कहीं परदेश में

चले जाना चाहिए।

एक दिन लक्ष्मी ने उसको कहा, "आप जाकर वकील साहब का धन्यवाद तो कर आइये।"

"क्या लाभ होगा इससे ?"

"यह दुनियादारी है। जिसने इतना कुछ आपके तथा आपके परिवार के लिए किया है, उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करनी ही चाहिए।"

"देखो लक्ष्मी!" नन्दलाल ने कुछ अभिमान में कहा, "मैंने वकील साहब पर अपने काल में बहुत एहसान किए हैं। इस कारण यदि उन्होंने एक हजार रुपया जमानत में दे दिया तो मैं इसे कोई बडी बात नही समझता। रहा तुमको गुजारा देना, वह मैं जानता हूँ कि क्यों दिया जाता है। अपने परिवार की लज्जा की बात मुझसे मत कहलाओ।"

"क्या कह रहे हैं आप ? क्या कारण है अथवा क्या स्वार्थ है वकील साहब का, जो हमको तीन-चार सौ रुपया महीना दे रहे है ?"

"सब लोग कह रहे हैं कि तुमने कमला बेच डाली है। वह तीन सौ रुपया महीने में मँहगी नहीं है।"

लक्ष्मी का मुख विवर्ण हो गया। वह जानती थी वि यह झूठ है। इस पर भी वह कुछ कह नहीं सकी। नन्दलाल ने उसे चुप देखकर कहा, "मैं तुम्हारे स्वस्थ हो जाने तक ठहरा था। अब मैं शीघ्र ही किसी दूसरे नगर में काम के लिए जा रहा हूँ। यहाँ मैं किसी के सामने आँखें उठा नहीं सकता।"

"यहाँ रहो अथवा कहीं और जाओ, यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। परन्तु यह मैं कहे देती हूँ कि आपको कमला के विषय में किसी ने झूठ कहा है। वह उस प्रकार की नहीं है।"

"मुझको इस बात की सच्चाई अथवा झूठ से कोई सम्बन्ध नहीं। मुझको तो चर्चा की लाज है।"

"मैं उसको घर ले आऊँगी।"

"पर इससे निन्दा रुक जाएगी क्या ?"

"तो क्या करूँ ?"

"कुछ नहीं हो सकता। अब अपना काम चलाओ। मैं कुछ-न-कुछ काम करूँगा और यदि कुछ बचा सका तो तुम्हें भेज दिया करूँगा।"

इन दिनों नन्दलाल राधाकृष्ण से भी मिला। उसने उससे वे रुपये माँगे जो कैद होने के समय उसको दिए थे। राधाकृष्ण ने वे रुपये अपने किसी कार्य में व्यय कर लिये थे। इस पर भी उसने यत्न कर डेढ-पौने दो सौ रुपया एकत्रित कर उसे दे दिया।

नन्दलाल ने निर्मला से भी सम्पर्क उत्पन्न करने का यत्न किया, परन्तु वह उससे बोली तक नहीं। बुलाने पर आई तक नहीं। एक दिन मार्ग में उसको मिली तो उसने साफ कह दिया कि वह तो उसे जानती तक नहीं।

इस प्रकार नन्दलाल यह अनुभव करता था कि उसके लिए लाहौर में कोई आकर्षण नहीं रहा। अतएव एक दिन वह किसी को बताए बिना घर से निकला और फिर नहीं लौटा।

द्वितीय परिच्छेद

परमानन्द प्रान्त में सबसे अधिक अंक लेकर पास हो गया। उसका साथी सुन्दर भी पास हुआ था, परन्तु वह थर्ड-डिवीजन में आया था। सुन्दर का विचार आगे कॉलेज में पढ़ने का था। उसका कहना था कि वह फुटबाल का अच्छा खिलाडी होने के कारण किसी भी कॉलेज में आसानी से प्रवेश पा जाएगा। इस प्रकार वह डी० ए० वी० कॉलेज में प्रवेश पा गया।

परमानन्द का भविष्य वकील कँवरसेन निर्माण कर रहा था। परीक्षा-फल घोषित होने के तीन-चार दिन के पश्चात् उसने परमानन्द को चाय के समय बुलाकर कहा, "परमानन्द! तुमको कॉलेज की पढ़ाई के लिए वजीफा तो मिल जाएगा। अब बताओ तुम आगे पढ़ना चाहते हो, क्या?"

"पण्डित जी! वजीफा मिलेगा बीस रुपया महीना। इस बीस का क्या करूँगा? इससे तो घर के खर्चे की बात तो क्या, मेरा कालेज का खर्चा भी नहीं चल सकेगा। मैं यह चाहता हूँ कि मैं शीघ्रातिशीघ्र जीवन-लाल तथा आपकी कृपाओं से मिल रहे धन का लेना बन्द कर दूँ। मैं अपनी मेहनत से कमाना चाहता हूँ।"

"बहुत बड़ा बोझा अपने सिर पर लेना चाहते हो। कैसे कर

सकोगे यह ?"

"आप मेरी सहायता कर दीजिए। मुझे बताइये कि मैं किस प्रकार अपने में अधिक कमाने की शक्ति उत्पन्न कर सकता हूँ ?"

"परन्तु तुम्हारी माँ तो चाहती है कि तुम आगे पढ़ो।"

"माँ की बात छोड़िए। मैं समझता हूँ कि मुझको अब जीविकोपार्जन में लग जाना चाहिए।"

"तो फिर ऐसा करो कि टाईप तथा शॉर्टहैंड सीखना आरम्भ कर दो। अभी तुम मेरे पर्सनल सेक्रेटरी के रूप में कार्य करो। पचास रुपया महीना मैं तुम्हें दूँगा। जब तुम शॉर्टहैंड तथा टाईप सीख जाओगे तो तुम्हारा वेतन दो सौ रुपये हो जाएगा। साथ ही मुन्शियाना तीन प्रतिशत मिलेगा। उसके लिए तुम जीवनलाल की सहायता किया करो।"

इस प्रकार परमानन्द की जीवन-चर्या निश्चित हो गई। वह प्रातः भोजन कर आठ बजे वकील साहब के कार्यालय में पहुँच जाता। साढ़े आठ बजे वकील साहब कार्यालय में आते। कार्यालय आकर वकील साहब एक घन्टे में उस दिन के मुकद्दमे देख लेते थे। साढ़े नौ बजे परमानन्द और जीवनलाल कचहरी चले जाते और वहाँ परमानन्द, जीवनलाल जो कुछ करने को कहता, वह करता। सायंकाल चाय आदि पीकर वह टाइप और शॉर्टहैंट सीखने चला जाता। वहाँ से फिर सात बजे कोठी पर आ जाता। इस समय प्रायः नकल करने का कार्य उसे करना होता। रात के नौ बजे वह अपने घर पहुँचता।

परमानन्द अब समझने लगा था कि उसकी माँ को जो तीन सौ रुपये के लगभग दिया जाता है, उसके कमाने में उसका हाथ भी है। वह इस कमाई का ईमानदारी से बदला देने के लिए, जहाँ जीवनलाल की सहायता करता था, वहां अपनी योग्यता बढ़ाने के लिए अपनी टाईप की गति बढ़ा रहा था और शॉर्टहैंड सीखने में मेहनत कर रहा था।

परमानन्द और उसके भाई-बहनों को अब साफ-सुथरे कपड़े पहिनने के लिए मिलने लग गए थे। भोजन भी पहले से अधिक अच्छा होने लग गया था। परिणाम यह हो रहा था कि बच्चों का रूपरंग निखरने लगा था। आस-पड़ोस के रहने वाले, जो उनकी निर्धनता के काल में, उनसे मुख मोड़ लेते थे, अब बच्चों को देख मुस्कुराते थे और कभी-कभी प्यार भी दे देते थे।

पड़ोसिनें, जो पहले लक्ष्मी कह कर पुकारा करती थीं, अब लक्ष्मी को परमानन्द की माँ कह कर पुकारती थीं। कभी अपने सब बच्चों को अच्छे साफ-सुथरे कपड़े पहना कर, लक्ष्मी कँवरसेन की कोठी में जाती, तो सब मुहल्ले के लोग उसको देखने लग जाते थे। दस बच्चे और उनमें वह स्वयं एक आदर की वस्तु दिखाई देती थी।

कमला प्राय: कँवरसेन की कोठी में ही रहती थी। कमला को वहाँ आराम था। सरोजिनी को उससे सुख मिलता था। लक्ष्मी को एक युवा लड़की की देखभाल से छुट्टी मिल गई थी। इससे वह सरोजिनी के पास ही रहती थी और कोई इस प्रबन्ध को बदलने के लिए चिन्तित नहीं था। सप्ताह में एक-आध बार वह माँ तथा भाई-बहनों से मिल आया करती थी।

कँवरसेन ने गोद लिए बच्चे का नाम बड़ी धूमधाम से रखा। प्रात जातकर्म-संस्कार किया गया और सायं को उसने अपने मित्रों को दावत दी। एक सहस्र के लगभग मेहमान बुलाये गए और भाँति भाँति के पकवान तथा मिठाइयाँ खिलाई गईं।

कमला अब सोलह वर्ष की थी। यूँ तो नन्दलाल के सब बच्चे गौर-वर्णीय तथा नख-शिख से सुन्दर थे, परन्तु कमला पूर्ण यौवनता को प्राप्त हो अब अति आकर्षक दिखाई देने लगी थी।

एक दिन वह प्रमोद को साथ ले माँ से मिलने आई। वह गली में दाखिल हुई तो सामने से रामलाल, जो उनका पड़ोसी था और जिसकी गली के बाहर दुकान थी, आता दिखाई दिया। कमला रामलाल के लिए

मार्ग छोड एक ओर हट गई। इस पर भी रामलाल आगे बढ़ने के स्थान, उसके पास आकर खड़ा हो गया और पूछने लगा,

"कमला! अब तो तुम दिखाई ही नहीं देती।"

"मौसी के यहाँ रहती हूँ।"

"खूब मजे में हो।"

"हाँ भैया!" इतना कह वह निकल जाने के लिए आगे बढ़ना चाहती थी, परन्तु रामलाल ने उसका मार्ग रोक रखा था। उसने पूछा, "मुन्ना का क्या नाम रखा है?"

"प्रमोद।"

"तुम अब हमारे घर नहीं आती?"

"पहले कब आती थी।"

"जब तुम बहुत छोटी थी।"

"अच्छा तो अब, जब उतनी छोटी फिर हो जाऊँगी तो आया करूँगी।"

रामलाल हँस पड़ा और कमला निकल कर अपने मकान पर चढ़ गई। रामलाल खड़ा मुख देखता रह गया।

बात यहीं समाप्त नहीं हुई। रामलाल, जो बाईस वर्ष का नवयुवक था, नन्दलाल के परिवार की अवस्था सुधरने से अपने मन में एक कल्पना कर बैठा था। उसका विचार था कि कमला का वकील साहब से अनुचित सम्बन्ध अवश्य हो गया है। इससे वह कमला से स्वयं सम्बन्ध बनाने की आशा करने लगा था। वकील साहब पैंतालीस वर्ष के प्रौढ़ हो चुके थे और वह स्वयं अभी अविवाहित नवयुवक था।

उसको एक दिन की घटना स्मरण थी। कमला सात-आठ वर्ष की थी और वह ग्यारह वर्ष का। बहुत से बच्चे आँख-मिचौनी खेल रहे थे। वह कमला के साथ अपने मकान के एक कमरे में छिपने गया था। वहाँ दोनों में आलिंगन तथा प्यार हुआ था। कमला उस समय इसका अर्थ नहीं समझी थी, परन्तु रामलाल कमला का मुख चूम उसका स्वाद

मे टहलते हुए माँ को बता दी। लक्ष्मी के पाँव-तले से मिट्टी निकल गई। उसको अनुभव हुआ कि कमला का तुरन्त विवाह कर देना चाहिए। परन्तु प्रश्न था, "कहाँ और कैसे ?" न तो कोई लडका विचार मे था और न ही विवाह के साधन उपस्थित थे। लक्ष्मी ने कहा, "बहुत दुष्ट है वह। मै तो उसको अच्छे चाल-चलन वाला समझती थी। देखो कमला ! आगे कभी वह बुलाए तो उससे बात तक नही करना।"

"मै समझती हूँ।" लक्ष्मी ने कुछ विचार कर भूमि की ओर देखते हुए पुनः कहा, "अब तुम्हारा विवाह हो जाना चाहिए। मेरा विवाह तो पन्द्रह वर्ष की आयु मे ही हो गया था।"

"विवाह ?" कमला ने चिन्तित भाव मे पूछा। उसने माँ का मुख देखते हुए कहा, "माँ ! तुम, जो विवाह का इतना कष्ट भोग चुकी हो, मुझको कैसे इसके लिए कह रही हो ?"

"क्यो ! विवाह तो सभी करते है और ऐसा ही सब के साथ होता है।"

"नही माँ ! मै सब की तरह मूर्ख बनना नही चाहती। मै विवाह नही करूँगी।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"उस दिन मौसी ने भी कहा था। मैने उनसे भी कह दिया था कि मै विवाह नही करूँगी। मैने उन सारे कष्टो का उल्लेख कर दिया था, जो तुम भोगती रही हो। इस पर वे मान गई। वे कहती थी, 'कमला ! विवाह तो है झंझट। परन्तु इसके बिना रहा नही जा सकता। यदि तुम रह सको तो ठीक है।' उनका विचार था कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर एक अश पशु का रहता है। जब-जब वह अश उभर कर मनुष्य पर अधिकार कर लेता है, तब-तब ही वह पशुओ की भाँति व्यवहार करने लगता है। मनुष्य मे वह पशु का अश बहुत प्रबल होता है और इसको कोई विरला ही दबा कर रख सकता है।'

"मैने कह दिया था, 'मौसी ! मै पशु नहीं बनूँगी। मुझको अपने

पर विश्वास है।' "

"फिर भी बेटी!" लक्ष्मी ने कहा, "यह संसार है। लोग कई प्रकार के विचार बना लेते हैं। यदि हमने इसमें रहना है, तो समाज के विचारों का आदर करना ही पड़ेगा। हम उसकी अवहेलना नहीं कर सकते।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि लोग मेरी निन्दा करते हैं। क्या निन्दा करते हैं माँ?"

"एक युवा लड़की को किसी पराये घर में रहते देख लोग कुछ कहें तो कैसे उनका मुख बंद किया जा सकता है?"

कमला कुछ देर तक विचार करती रही। माँ ने समझा कि लड़की मान गई है। इससे उसको चिन्ता लगने लगी कि लड़का कहाँ से लाए लोग दहेज माँगेंगे। वह दहेज कहाँ से देगी? वह इन विषयों पर विचार कर ही रही थी कि कमला ने अपने मन की बात कह दी, "माँ! मैं समझती हूँ कि लोग क्या समझते होंगे? वे मूर्ख हैं। मौसा जी तो पिता जी से भी बड़ी आयु के हैं। उनके प्रति लोगों का ऐसा विचार रखना बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं माना जा सकता। ऐसे मूर्खों की बातों पर अपना जीवन बर्बाद करना कहाँ की बुद्धिमत्ता होगी।

"माँ! मैं विवाह नहीं करूँगी। मैं इन मूर्खों का मुख बंद करने में कोई लाभ नहीं समझती।"

'समाज का विरोध करना सुगम नहीं कमला!'

"माँ! तुम चिन्ता न करो।"

लक्ष्मी देख रही थी कि कमला, जो कुछ महीने पहले घर के काम-काज से थकी एक मिट्टी के ढेले की भाँति पड़ी रहती थी, अब सजीव, सतर्क और सचेत हो गई है। वह आत्मविश्वास से भरी हुई माँ को शिक्षा दे रही है।

इसके साथ ही वह यह भी अनुभव करती थी कि बच्चों में पिता के अस्वाभाविक व्यवहार की यह अस्वाभाविक प्रतिक्रिया है। एक युवा

में टहलते हुए माँ को बता दी। लक्ष्मी के पाँव-तले से मिट्टी निकल गई। उसको अनुभव हुआ कि कमला का तुरन्त विवाह कर देना चाहिए। परन्तु प्रश्न था, "कहाँ और कैसे ?" न तो कोई लडका विचार मे था और न ही विवाह के साधन उपस्थित थे। लक्ष्मी ने कहा, "बहुत दुष्ट है वह। मैं तो उसको अच्छे चाल-चलन वाला समझती थी। देखो कमला ! आगे कभी वह बुलाए तो उससे बात तक नहीं करना।"

"मैं समझती हूँ।" लक्ष्मी ने कुछ विचार कर भूमि की ओर देखते हुए पुनः कहा, "अब तुम्हारा विवाह हो जाना चाहिए। मेरा विवाह तो पन्द्रह वर्ष की आयु में ही हो गया था।"

"विवाह ?" कमला ने चिन्तित भाव में पूछा। उसने माँ का मुख देखते हुए कहा, "माँ ! तुम, जो विवाह का इतना कष्ट भोग चुकी हो, मुझको कैसे इसके लिए कह रही हो ?"

"क्यों ! विवाह तो सभी करते हैं और ऐसा ही सब के साथ होता है।"

"नहीं माँ ! मैं सब की तरह मूर्ख बनना नहीं चाहती। मैं विवाह नहीं करूँगी।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"उस दिन मौसी ने भी कहा था। मैंने उनसे भी कह दिया था कि मैं विवाह नहीं करूँगी। मैंने उन सारे कष्टों का उल्लेख कर दिया था, जो तुम भोगती रही हो। इस पर वे मान गईं। वे कहती थीं, 'कमला ! विवाह तो है झंझट। परन्तु इसके बिना रहा नहीं जा सकता। यदि तुम रह सको तो ठीक है।' उनका विचार था कि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर एक अंश पशु का रहता है। जब-जब वह अंश उभर कर मनुष्य पर अधिकार कर लेता है, तब-तब ही वह पशुओं की भाँति व्यवहार करने लगता है। मनुष्य में वह पशु का अंश बहुत प्रबल होता है और इसको कोई विरला ही दबा कर रख सकता है।'

"मैंने कह दिया था, 'मौसी ! मैं पशु नहीं बनूँगी। मुझको अपने

पर विश्वास है।' "

"फिर भी बेटी!" लक्ष्मी ने कहा. "यह संसार है। लोग कई प्रकार के विचार बना लेते हैं। यदि हमने इसमें रहना है, तो समाज के विचारों का आदर करना ही पड़ेगा। हम उसकी अवहेलना नहीं कर सकते।"

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि लोग मेरी निन्दा करते हैं। क्या निन्दा करते हैं माँ?"

"एक युवा लड़की को किसी पराये घर में रहते देख लोग कुछ कहें तो कैसे उनका मुख बंद किया जा सकता है?"

कमला कुछ देर तक विचार करती रही। माँ ने समझा कि लड़की मान गई है। इससे उसको चिन्ता लगने लगी कि लड़का कहाँ से लाए लोग दहेज माँगेंगे। वह दहेज कहाँ से देगी? वह इन विषयों पर विचार कर ही रही थी कि कमला ने अपने मन की बात कह दी, "माँ! मैं समझती हूँ कि लोग क्या समझते होंगे? वे मूर्ख हैं। मामा जी तो पिता जी से भी बड़ी आयु के हैं। उनके प्रति लोगों का ऐसा विचार रखना बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं माना जा सकता। ऐसे मूर्खों की बातों पर अपना जीवन बर्बाद करना कहाँ की बुद्धिमत्ता होगी।

"माँ! मैं विवाह नहीं करूँगी। मैं इन मूर्खों का मुख बंद करने में कोई लाभ नहीं समझती।"

"समाज का विरोध करना सुगम नहीं कमला!"

"माँ! तुम चिन्ता न करो।"

लक्ष्मी देख रही थी कि कमला, जो कुछ महीने पहले घर के काम-काज से थकी एक मट्टी के ढेले की भाँति पड़ी रहती थी, अब सजीव, सतर्क और सचेत हो गई है। वह आत्मविश्वास से भरी हुई माँ को शिक्षा दे रही है।

इसके साथ ही वह यह भी अनुभव करती थी कि बच्चों के पिता के अस्वाभाविक व्यवहार की यह अस्वाभाविक प्रतिक्रिया है। एक युवा

लडकी विवाह से घबराए, यह उस दुःख और कष्ट का ही फल था, जो इसके पिता के समय घर में विराजमान था।

सरोजिनी से भी लक्ष्मी की इस विषय पर बातचीत हुई। सरोजिनी ने इस समस्या का एक और पक्ष उपस्थित कर दिया। उसने कहा, "अभी कमला सोलह वर्ष की ही है। यह आयु कुछ पढने, लिखने और सीखने की है। इस आयु में यदि विवाह कर दिया तो जो विकास इस समय इसके मन का हो रहा है, वह रुक जावेगा।"

"पर वह तो कहती है कि विवाह झंझट है और वह नहीं करेगी।"

"नहीं करेगी तो न सही। इससे वह बिगड़ेगी नहीं। इतनी शिक्षा उसको मिलनी चाहिए कि सदैव यह अपने से बड़ों पर विश्वास रखे और उनसे अपने मन की बात कहती रहे।"

"मुझको यही डर रहता है कि कहीं यह मन के आवेगों में बिगड़ न जाए।"

"लडकी बहुत ही सुशील है। मैं उससे इस विषय पर बातचीत करती रहती हूँ।"

लक्ष्मी के सब बच्चे एक समान नहीं थे। इसके साथ ही कमला को मन के विकास का जो अवसर मिल रहा था, सब उससे दूर थे।

परमानन्द तो काम में इतना लीन रहता था कि उसका विचार विवाह तथा बाजार और मुहल्ले की लडकियों की ओर जाता ही नहीं था। सदानन्द कमला और परमानन्द से बिल्कुल भिन्न प्रकृति रखता था। वह पढने-लिखने में कुछ विशेष ध्यान भी नहीं देता था। उसकी रुचि किस्से-कहानी पढने-सुनने और सुनाने में अधिक रहती थी। वह खेलने कूदने में भी खूब रुचि रखता था। इससे उसके शरीर का विकास द्रुतगति से हो रहा था और साथ ही किस्से-कहानी पढने से उसकी रुचि शृंगार रस की ओर बढ रही थी।

सदानन्द की आयु चौदह वर्ष से ऊपर की हो गई थी। उसमें कौमार्यावस्था का प्रादुर्भाव हो रहा था और उसके मस्तिष्क में अनेका-

नेक नवीन प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे थे। उसे लड़कियों की सगत मे तथा उनके विषय मे पढने मे स्वाद आने लगा था। इसके विपरीत वह लडको पर अपनी श्रेष्ठता का प्रभाव जमाने मे भी यत्नशील रहने लगा था।

स्कूल की पढाई मे वह कुछ अधिक होशियार नही था। दूसरी ओर खेल-कूद मे अपने से बडी आयु वालो को भी पछाड देता था। परमानन्द तो सदैव अपनी श्रेणी मे प्रथम रहा था और उसने मैट्रिक मे सबसे अधिक अक प्राप्त किए थे। सदानन्द अपने मास्टरो के डर के कारण ही उनमे दिया घर का काम करता था और ज्यूँ ही काम समाप्त हुआ, वह गली मे अपने साथियो से कहानी सुनने और उनको सुनाने मे लग जाता था। उसके कहानी सुनाने का ढग बड़ा ही रोचक रहता था। मुहल्ले के लडके-लड़कियाँ उससे कहानी सुनने के लिए लालायित रहते थे।

शनिवार की सायकाल थी। सदानन्द कमला से मिलने के लिए घर से निकला। गली मे खेलते लडको ने उसे देखा तो उसको घेर कर खड़े हो गए और कहने लगे, "सदा भैया! कहानी सुनाओ।"

"नहीं। आज मै बहन से मिलने जा रहा हूँ।"

"नहीं, हम कहानी सुनेगे। कल रविवार है, कल चले जाना।"

"नहीं आज ही जाऊँगा।"

"आज कैसे जाओगे? देखूँ।" एक लडकी ने समीप आकर कहा, "शनिवार तो कहानियो का दिन होता है।"

इस समय एक और लड़की आ गई। उसने सदानन्द की बाँह पकड कर कहा, "हाँ, सदा भैया! कई दिनो से तुमसे कोई कहानी नहीं सुनी।"

इस लड़की का नाम चमेली था। लगभग सदानन्द की आयु की ही थी। वह सदानन्द को बाँह से पकड कर, गली मे एक मकान के थड़े पर बैठ गई। सदानन्द अब इन्कार नहीं कर सका। उसके बैठने ही सब

लड़की विवाह से घबराए, यह उस दु:ख और कष्ट का ही फल था, जो इसके पिता के समय घर में विराजमान था।

सरोजिनी से भी लक्ष्मी की इस विषय पर बातचीत हुई। सरोजिनी ने इस समस्या का एक और पक्ष उपस्थित कर दिया। उसने कहा, "अभी कमला सोलह वर्ष की ही है। यह आयु कुछ पढ़ने, लिखने और सीखने की है। इस आयु में यदि विवाह कर दिया तो जो विकास इस समय इसके मन का हो रहा है, वह रुक जावेगा।"

"पर वह तो कहती है कि विवाह झंझट है और वह नहीं करेगी।"

"नहीं करेगी तो न सही। इससे वह बिगड़ेगी नहीं। इतनी शिक्षा उसको मिलनी चाहिए कि सदैव यह अपने से बड़ों पर विश्वास रखे और उनसे अपने मन की बात कहती रहे।"

"मुझको यही डर रहता है कि कहीं यह मन के आवेगों में बिगड़ न जाए।"

"लड़की बहुत ही सुशील है। मैं उससे इस विषय पर बातचीत करती रहती हूँ।"

लक्ष्मी के सब बच्चे एक समान नहीं थे। इसके साथ ही कमला को मन के विकास का जो अवसर मिल रहा था, सब उससे दूर थे।

परमानन्द तो काम में इतना लीन रहता था कि उसका विचार विवाह तथा बाजार और मुहल्ले की लड़कियों की ओर जाता ही नहीं था। सदानन्द कमला और परमानन्द से बिल्कुल भिन्न प्रकृति रखता था। वह पढ़ने-लिखने में कुछ विशेष ध्यान भी नहीं देता था। उसकी रुचि किस्से-कहानी पढ़ने-सुनने और सुनाने में अधिक रहती थी। वह खेलने कूदने में भी खूब रुचि रखता था। इससे उसके शरीर का विकास द्रुतगति से हो रहा था और साथ ही किस्से-कहानी पढ़ने से उसकी रुचि शृंगार रस की ओर बढ़ रही थी।

सदानन्द की आयु चौदह वर्ष से ऊपर की हो गई थी। उसमें कौमार्यावस्था का प्रादुर्भाव हो रहा था और उसके मस्तिष्क में अनेका-

नेक नवीन प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे थे। उसे लड़कियों की संगत में तथा उनके विषय में पढ़ने में स्वाद आने लगा था। इसके विपरीत वह लड़कों पर अपनी श्रेष्ठता का प्रभाव जमाने में भी यत्नशील रहने लगा था।

स्कूल की पढ़ाई में वह कुछ अधिक होशियार नहीं था। दूसरी ओर खेल-कूद में अपने से बड़ी आयु वालों को भी पछाड़ देता था। परमानन्द तो सदैव अपनी श्रेणी में प्रथम रहा था और उसने मैट्रिक में सबसे अधिक अंक प्राप्त किए थे। सदानन्द अपने मास्टरों के डर के कारण ही उनसे दिया घर का काम करता था और ज्यूँ ही काम समाप्त हुआ, वह गली में अपने साथियों में कहानी सुनने और उनको सुनाने में लग जाता था। उसके कहानी सुनाने का ढंग बड़ा ही रोचक रहता था। मुहल्ले के लड़के-लड़कियाँ उससे कहानी सुनने के लिए लालायित रहते थे।

शनिवार की सायंकाल थी। सदानन्द कमला से मिलने के लिए घर से निकला। गली में खेलते लड़कों ने उसे देखा तो उसको घेर कर खड़े हो गए और कहने लगे, "सदा भैया! कहानी सुनाओ।"

"नहीं। आज मैं बहन से मिलने जा रहा हूँ।"

"नहीं, हम कहानी सुनेंगे। कल रविवार है, कल चले जाना।"

"नहीं आज ही जाऊँगा।"

"आज कैसे जाओगे? देखूँ।" एक लड़की ने समीप आकर कहा, "शनिवार तो कहानियों का दिन होता है।"

इस समय एक और लड़की आ गई। उसने सदानन्द की बाँह पकड़ कर कहा, "हाँ, सदा भैया! कई दिनों से तुमसे कोई कहानी नहीं सुनी।"

इस लड़की का नाम चमेली था। लगभग सदानन्द की आयु की ही थी। वह सदानन्द को बाँह से पकड़ कर, गली में एक मकान के थड़े पर बैठ गई। सदानन्द इन्कार नहीं कर सका। उसके बैठते ही सब

लडके-लडकियाँ उसको घेर कर बैठ गए। उस समय वहाँ दस-बारह थे और जब कहानी सुनानी शुरू हुई तो और भी लडके-लडकियाँ वहाँ आकर बैठने लगे। थोड़ी ही देर में वहाँ पच्चीस-तीस सुनने वाले हो गए। सदानन्द के साथ चमेली सट कर बैठी थी।

जब सदानन्द को विश्वास हो गया कि अब कहानी उसे सुनानी ही पड़ेगी तो उसने पूछा, "अच्छा बताओ, कौन सी कहानी सुनाऊँ ?"

"जो पहले कभी न सुनाई हो।" चमेली ने कहा।

"तो सुनो।" सदानन्द ने एक क्षण के लिए आँखें मूँद कर निश्चय कर लिया कि कौन सी कहानी सुनाए। उसने कहानी का चित्र मन में लाकर कहना आरम्भ कर दिया—

"एक सौदागर था। उसका नाम फरीद था। वह सौदागर दमिश्क में रहता था। वहाँ से जहाज में माल लादकर वह विदेशों में ले जाता और वहाँ माल बेच लाखों रुपये कमा कर अपने घर लाता था। जब वह अपने देश में लौटता, तो उसको धनवान देख नगर की सुन्दर से सुन्दर स्त्री उससे विवाह करने की इच्छा करतीं। इस पर भी उसने अभी तक विवाह नहीं किया था। जब कोई स्त्री उसके पास आती तो वह पूछता—

'क्यों आई हो ?'

'तुमसे विवाह करने।'

'किसी और के पास विवाह के लिए क्यों नहीं जाती ?

'तुम सुन्दर हो।'

'तुम झूठ बोलती हो। मेरी रूपरेखा साधारण है। मैं चालीस वर्ष का हूँ और औरतों को प्रसन्न करना नही जानता।'

"प्राय: औरतें इस ताडना से चुपचाप चली जातीं। कभी कोई कह देती, 'तुम धनवान हो।'

'हाँ यह बात तो है। तो पहले क्यों नहीं कहा ? अच्छा यह लो।' इतना कह वह उसको एक हजार दीनार की थैली दे देता और कहता,

'जाओ किसी नौजवान और सुन्दर पुरुष से विवाह कर लेना।'

"इस तरह औरतें उसके यहाँ से सदैव लज्जित होकर जातीं और फरीद उनको इस प्रकार जाता देख कह देता, 'औरत फरेब का दूसरा नाम है।'

"एक बार एक लड़की, जो उसके विषय में बहुत-कुछ सुन चुकी थी, उसके पास आई। फरीद ने समझा कि वह भी उसको ठगने आई है। अतएव उसके आते ही उसने सीधा पूछा, 'मुझसे विवाह करने के लिए आई हो?'

"लड़की हँस पड़ी और बोली, 'क्या समझते हो तुम अपने को? तुम बूढ़े से कौन शादी करेगा?'

'तो क्या चाहती हो मुझसे? धन चाहिए क्या?'

'धन मेरे पास बहुत है। मेरे भी जहाज चलते हैं। मैं तुमको खरीद सकती हूँ।'

'तो क्यों आई हो?'

'तुम्हारे मन के छुपे हुए दुःख के रहस्य को जानना चाहती हूँ।'

'मैं दुःखी नहीं हूँ।'

'अब मुझसे झूठ बोल रहे हो?'

"आज तक किसी ने फरीद को झूठा नहीं कहा था। व्यापारियों में उसकी सच्चाई और ईमानदारी की धूम थी। उस लड़की को यह कहते सुन कि वह झूठ बोल रहा है, उसे क्रोध आ गया। उसका मुख तमतमाने लगा। लड़की ने यह देखा और मुस्करा कर बोली, 'फरीद भैया! तुम्हें औरतों की कमजोरी पर हँसी उड़ाने का स्वभाव हो गया है, परन्तु तुममें सच्चाई सुनने का अभ्यास नहीं है। मालूम होता है कि खुशामदी और चापलूसों से घिरे रहने के कारण अपने दोष भूल गए हो।'

'आज तक किसी ने नहीं कहा कि फरीद झूठा है।'

'कदाचित झूठ भी तुमने आज पहली बार बोला है और झूठ बोलते ही पकड़े गए हो।'

लड़के-लड़कियाँ उसको घेर कर बैठ गए। उस समय वहाँ दस-बारह थे और जब कहानी सुनानी शुरू हुई तो और भी लड़के-लड़कियाँ वहाँ आकर बैठने लगे। थोडी ही देर में वहाँ पच्चीस-तीस सुनने वाले हो गए। सदानन्द के साथ चमेली सट कर बैठी थी।

जब सदानन्द को विश्वास हो गया कि अब कहानी उसे सुनानी ही पड़ेगी तो उसने पूछा, "अच्छा बताओ, कौन सी कहानी सुनाऊँ ?"

"जो पहले कभी न सुनाई हो।" चमेली ने कहा।

"तो सुनो।" सदानन्द ने एक क्षण के लिए आँखें मूँद कर निश्चय कर लिया कि कौन सी कहानी सुनाए। उसने कहानी का चित्र मन में लाकर कहना आरम्भ कर दिया—

"एक सौदागर था। उसका नाम फरीद था। वह सौदागर दमिष्क में रहता था। वहाँ से जहाज में माल लादकर वह विदेशों में ले जाता और वहाँ माल बेच लाखों रुपये कमा कर अपने घर लाता था। जब वह अपने देश मे लौटता, तो उसको धनवान देख नगर की सुन्दर से सुन्दर स्त्री उससे विवाह करने की इच्छा करतीं। इस पर भी उसने अभी तक विवाह नहीं किया था। जब कोई स्त्री उसके पास आती तो वह पूछता—

'क्यों आई हो ?'

'तुमसे विवाह करने।'

'किसी और के पास विवाह के लिए क्यों नहीं जाती ?

'तुम सुन्दर हो।'

'तुम झूठ बोलती हो। मेरी रूपरेखा साधारण है। मैं चालीस वर्ष का हूँ और औरतों को प्रसन्न करना नहीं जानता।'

"प्रायः औरतें इस ताडना से चुपचाप चली जातीं। कभी कोई कह देती, 'तुम धनवान हो।'

'हाँ यह बात तो है। तो पहले क्यों नही कहा ? अच्छा यह लो।' इतना कह वह उसको एक हजार दीनार की थैली दे देता और कहता,

'जाओ किसी नौजवान और सुन्दर पुरुष से विवाह कर लेना।'

"इस तरह औरतें उसके यहाँ से सदैव लज्जित होकर जातीं और फरीद उनको इस प्रकार जाता देख कह देता, 'औरत फरेब का दूसरा नाम है।'

"एक बार एक लड़की, जो उसके विषय में बहुत-कुछ सुन चुकी थी, उसके पास आई। फरीद ने समझा कि वह भी उसको ठगने आई है। अतएव उसके आते ही उसने सीधा पूछा, 'मुझसे विवाह करने के लिए आई हो?'

"लड़की हँस पड़ी और बोली, 'क्या समझते हो तुम अपने को? तुम बूढ़े से कौन शादी करेगा?'

'तो क्या चाहती हो मुझसे? धन चाहिए क्या?'

'धन मेरे पास बहुत है। मेरे भी जहाज चलते हैं। मैं तुमको खरीद सकती हूँ।'

'तो क्यों आई हो?'

'तुम्हारे मन के छुपे हुए दुःख के रहस्य को जानना चाहती हूँ।'

'मैं दुःखी नहीं हूँ।'

'अब मुझसे झूठ बोल रहे हो?'

"आज तक किसी ने फरीद को झूठा नहीं कहा था। व्यापारियों में उसकी सच्चाई और ईमानदारी की धूम थी। उस लड़की को यह कहते सुन कि वह झूठ बोल रहा है, उसे क्रोध आ गया। उसका मुख तमत-माने लगा। लड़की ने यह देखा और मुस्करा कर बोली, 'फरीद भैया! तुम्हें औरतों की कमजोरी पर हँसी उड़ाने का स्वभाव हो गया है, परन्तु तुममें सच्चाई सुनने का अभ्यास नहीं है। मालूम होता है कि खुशामदी और चापलूसों में घिरे रहने के कारण अपने दोष भूल गए हो।'

'आज तक किसी ने नहीं कहा कि फरीद झूठा है।'

'कदाचित झूठ भी तुमने आज पहली बार बोला है और झूठ बोलते ही पकड़े गए हो।'

'क्या झूठ बोला है मैने ?'

'तुमने कहा है कि तुम दुःखी नही हो। यह झूठ है।'

'तो तुम जानती हो मैं दुःखी हूँ। क्या दु.ख है मुझको ?'

'निसन्देह तुम दुःखी हो। जिसकी आत्मा को इतना धन कमाने पर भी सन्तोष न हो, वह सुखी नही हो सकता। प्रत्येक तीसरे वर्ष तुम सागर की तरगो पर अपने जीवन की होड लगा देते हो। धन के लिए तो यह है नही। तुमको इसका लोभ नही। यह तो तुम ऐसे ही बॉट देते हो।

'तुम को औरतो का मोह नही। दमिष्क की सुन्दर-से-सुन्दर लडकी तुम्हारे लिए जवानी गॅवाने को तैयार रहती है।

'इस पर भी कुछ बात है, जिसकी तुमको आवश्यकता है और वह तुम्हारे पास है नही। मै जानने आई हूँ कि वह क्या है।'

''लडकी के इस युक्तियुक्त कथन को सुन फरीद ऑखे मूॅद बैठा रहा। लडकी उसके कहने की प्रतीक्षा करती रही। बहुत देर इसी प्रकार ऑखे मूॅदे रहने के पश्चात् फरीद ने सिर उठाया और उस लडकी की ऑखो मे देखते हुए पूछा, 'मेरी अन्तरात्मा की बात जानकर क्या करोगी तुम ?'

'मै समझती हू कि तुमको लाभ होगा। साथ ही घर-घर मे हो रही चर्चा समाप्त होगी।'

'अच्छा तो सुनो। यह बात आज तक मैने किसी से नही कही। मै तुम्हारी ऑखो मे सहानुभूति देखता हूँ। इसीलिए तुमको यह बताने के लिए तैयार हो गया हूँ।

'मै अभी उन्नीस वर्ष का युवक था। अपने पिता के साथ पहली और अन्तिम बार समुद्र पार देशों मे व्यापार के लिए गया था। यहॉ से हम काहिरा गए। वहॉ से अफ्रीका के किनारे-किनारे हम पश्चिम को चल पडे। काहिरा से दो सप्ताह की यात्रा के पश्चात् भी हम कोई नगर देख नही सके थे। एक ओर अपार सागर था, दूसरी ओर लगभग एक मील दूर किनारा था। किनारे पर पहाड थे, जगल थे और बियाबान

रेगिस्तान थे। यदि कुछ नहीं था तो वह मनुष्य की सूरत थी।

'जहाज में हम बीस के लगभग यात्री थे और सौ के लगभग मल्लाह। सब यात्रियों में मैं ही सबसे छोटी आयु का था। इस कारण सब मुझको प्यार करते थे।

'पूर्णमासी की रात थी और चाँद के चारों ओर बादलों का घेरा पड़ गया। ये आँधी के लक्षण थे। मल्लाहों ने पतवार नीचे कर दिए और जहाज को किनारे की ओर घुमा दिया। आँधी इतनी तेजी के साथ आई कि हम किनारे से अभी पौन मील के अन्तर पर ही थे कि तरंगों से जहाज बल्लियों उछलने लगा।

'चाँद बादलों में छुप गया और मल्लाह दिशाशून्य हो जहाज को किनारे की ओर ले जाने के स्थान, समुद्र की ओर ले जाने लगे। जहाज तरंगों के शिखर और घाटे में लुढ़कने लगा।

'हम सब परमात्मा से प्रार्थना करने लगे कि हमको बचाए। परन्तु हमारे कुकर्म हमारी प्रार्थनाओं से प्रबल सिद्ध हुए। एक बार जहाज पहाड़ समान एक ऊँची तरंग के शिखर पर चढ़कर नीचे उतरने लगा तो औंधा हो गया और पानी में समा गया।

'इस झटके में मैं हममें से बहुत से जहाज से दूर तरंगों में जा गिरे। मैं गोते खाने लगा था। एकाएक मेरे पाँव किसी वस्तु से छू गए और मुझको ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मुझको ऊपर को उभार रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब जहाज डूबा तो तरंगों के घात-प्रतिघातों ने इसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और एक बड़ा सा लकड़ी का मस्तूल जहाज से पृथक् हो वहाँ गिरा था। वह अब पानी से ऊपर उठता हुआ मेरे पाँव के तले आ गया। इस प्रकार ऊपर उठते मस्तूल के आश्रय मैं भी पानी के ऊपर आ गया।

'आँधी अभी भी जोरों पर थी। इस कारण भयभीत मैं उस मस्तूल से चिपट गया। इस प्रकार एक घंटे से ऊपर तरंगों की दया पर मैं मस्तूल से चिपटा हुआ अथाह सागर पर डोलता रहा।

'अब आँधी कुछ हल्की पड़ने लगी। जैसे वह एकाएक आई थी, वैसे ही एकाएक समाप्त हो गई। चाँद निकल आया और शान्त हुआ सागर दूर-दूर तक दिखाई देने लगा। जहाज का कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता था। मैं ही अकेला मस्तूल का आश्रय लिये दिखाई दे रहा था। एक बात और हुई। समुद्र की लहरों से मैं दक्षिण के किनारे के समीप आ गया था। उस समय मैं किनारे से लगभग सौ गज के अन्तर पर था। इससे मुझको बहुत प्रसन्नता हुई और मुझको बच जाने की आशा पक्की हो गई। मैं अच्छा-खासा तैराक हूँ। अतएव मैंने मस्तूल छोड़ दिया और तैर कर किनारे आ गया। रेतीला किनारा था और दक्षिण की ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, रेता-ही-रेता दिखाई देती थी।

'किनारे पहुँचते ही सबसे पहली इच्छा, जो मेरे मन मे हुई वह रेता पर लेटकर सो जाने की थी। मैं थक कर चूर हो रहा था। इस कारण पानी से कुछ दूर होकर, एक साफ रेतीला स्थान ढूँढ मैं लेट गया और लेटते ही सो गया।

'मेरी नींद खुली, जब सूर्य सिर पर चढ़ चुका था। रेता तप रही थी। मैं उठ कर बैठ गया। मेरे अंग अंग अकड़ गए प्रतीत होते थे।

'मैं उठ कर उनके अकड़ाव को दूर करने लगा। इस समय मुझको प्यास अनुभव हुई और वह मुझको व्याकुल करने लगी। मेरी इच्छा हुई कि मैं समुद्र-तट पर जाकर, पेट भर कर जल पीऊँ। परन्तु खारी जल पीने के दुष्परिणामों को सुन चुका था। इस कारण विचार करने लगा कि कहाँ मीठा जल मिल सकेगा। इसके लिए मैंने चारों ओर देखा परन्तु कुछ दिखाई नहीं दिया। दूर पूर्व की ओर मुझको मक्खियों की सी भनभनाहट सुनाई दी। मेरे मन ने कहा कि यह मनुष्यों के हसने-कूदने का शब्द है। इस विचार पर मैं उसी ओर को चल पड़ा। कुछ अन्तर पर रेत के बड़े-बड़े टीले थे। मुझको वह शब्द उन टीलों के पार से

आता समझ आया। मै उधर ही चल पड़ा। जब मैं टीलों पर चढ़ रहा था, तो मुझको वह शब्द स्त्रियों की किलकारी मे बदलता प्रतीत हुआ। मनुष्य के कण्ठस्वर को सुन मेरे मन मे प्रसन्नता की तरग दौड़ गई। मुझको आशा बन गई।

'जब मै टीले की चोटी पर पहुँचा तो मुझको एक बहुत ही सुन्दर दृश्य दृष्टिगोचर हुआ। समुद्र बहुत दूर तक किनारे के अन्दर घुस आया था। इस प्रकार एक छोटी सी खाडी बन गई थी। उस खाडी मे दस-बारह के लगभग स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। वे सर्वथा नग्न थीं और स्नान करते-करते परस्पर अनेक प्रकार से कल्लोल करती हुई, हँस-खेल रही थी। कुछ समुद्र मे तैर रही थी। कुछ किनारे पर एक दूसरे के पीछे-पीछे भाग पकड रही थीं।

'मै कितनी ही देर तक टीले की चोटी पर खडा इस आनन्दोत्पादक दृश्य को देखता रहा। उनकी खेल-कूद हँसी-ठट्टा को देख, मै अपनी प्यास तक भूल गया था।

'मै टीले की चोटी से खाडी की ओर उतरने लगा। इस समय एक स्त्री ने मुझको देख लिया। कदाचित् वे निःशंक हो नग्न इस कारण नहा रही थी कि उनको किसी पुरुष के वहाँ न होने का विश्वास रहा होगा। अब एक पुरुष को आकाश से उतरते देख, एक क्षण तो वे विस्मय मे देखती रह गई। फिर सब भागकर समुद्र मे घुस गईं और कन्धे तक जल मे बैठ भयभीत मेरी ओर देखने लगीं।

''मैने चारो ओर उनके कपड़े देखने का यत्न किया। मेरे मन मे आया कि उनके कपड़े उनके पास फेंक दूँ, जिससे वे पहन ले और फिर मै अपनी बात करूँ। परन्तु उनके कपड़े कहीं दिखाई नहीं दिए।

'मै किनारे पर खडा उनके कुछ कहने की प्रतीक्षा करने लगा। वे सब एक युवती को चारो ओर से घेर कर बैठी थी। ऐसा प्रतीत होता था कि वह उन सब की मालकिन है।

'जब मै किनारे पर खडा रहा तो एक ने मेरी ओर घूम कर पूछा,

"तुम कौन हो?"

'उसको अपनी भाषा में बोलते देख, मुझको विस्मय और प्रसन्नता हुई। मैंने अपनी अवस्था ऊँचे और स्पष्ट शब्दों में वर्णन कर दी। मैंने यह भी कहा, "मैं मीठे पानी की खोज में हूँ। प्यास से व्याकुल हो रहा हूँ।" इस पर वे परस्पर राय करने लगीं। पश्चात् उसी स्त्री ने मुझसे कहा, "तुम मुख भूमि में कर आँखें मूँद लो और लेट जाओ। हमारी ओर मत देखना। हम कपड़े पहनने जा रही हैं।"

'मुझको अब पुन. प्यास कष्ट देने लगी थी। इस कारण बिना आपत्ति किए मुख नीचा कर लेट गया। अब वे उसी प्रकार घेरे में निकलीं और अपने भीतर किसी को छिपाए हुए भागती हुई एक टीले पर चढ, उसके पीछे चली गईं। यद्यपि मैंने वचन दिया था कि मैं उनकी ओर देखूँगा नहीं, इस पर भी मैं उनके सौन्दर्य को देखने के प्रलोभन से अपने को रोक नहीं सका।

'वे सब गौर-वर्णीय युवतियाँ थीं और गठित शरीर तथा सुन्दर रूपरेखा रखती थीं। टीले के पीछे जब सब ओझल हो गईं तो मैं उठा और उसी ओर देखता हुआ खड़ा हो गया, जिस ओर वे गई थीं। कुछ काल के पश्चात् एक युवती चमड़े के कपड़े पहने हुए टीले के पीछे से निकली। उसके हाथ में सुराही के आकार का एक मिट्टी का बर्तन था। वह उसको लेकर आई और उसमें से एक तरल पदार्थ मुझको पिलाने लगी। हाथों को प्याला बना, मैंने पिया। यह जल नहीं था। एक प्रकार की शीतल हल्की मद्य थी। मैंने कहा, "यह तो मद्य प्रतीत होता है।"

'उसने कहा, "हाँ। इससे प्यास मिटेगी और जल यहाँ है भी नहीं।"

'मैंने उस स्त्री से पूछा, "अब मैं किधर जाऊँ?"

"जहाँ मन करे।"

"मन तो कहता है कि आप लोगों के साथ-साथ चलूँ।"

"हमारे साथ ?" उसने विस्मय से पूछा।

"और कहाँ जाऊँ ? मैं तो परदेशी हूँ। अकेला हूँ। नहीं जानता कि किधर जाऊँ।"

"तो ठहरो। मैं राजकुमारी से पूछ कर बताती हूँ।"

'वह उस टीले के पीछे चली गई। बहुत देर पश्चात् वह लौटी और बोली, "राजकुमारी कहती हैं कि तुम हमारे बन्दी बन जाओ। तब ही हम तुमको अपने साथ ले जा सकती हैं।"

"मैं तैयार हूँ।" मैंने कहा। मुझको अन्य कोई उपाय नहीं सूझा। इसके पश्चात् वह स्त्री एक रस्सा ले आई और मेरे गले में बाँध दिया, जैसे किसी गाय बैल के गले में डाल दिया जाता है। इस समय वे सब युवतियाँ कपड़े पहन टीले के पीछे से निकल आई थीं। उनके पीछे चार गाड़ियाँ, जो सन्दूक की भाँति चारों ओर से बन्द थीं और ऊँटों से हाँकी जा रही थीं, बाहर आ गईं।

'मेरे गले का रस्सा, वही युवती, जो मेरे लिए मद्य लाई थी, पकड़े हुए एक अति सुन्दर युवती के सम्मुख ले गई। मैंने उसको देखा और देखते ही उस पर मोहित हो गया। यह मद्य के नशे के कारण था अथवा विवशता के कारण मैं नहीं जानता, परन्तु मैं मुस्कराया और झुककर राजकुमारी को नमस्कार करने लगा। इस पर उसने कहा, "इसको हमारी गाड़ी में बैठा कर, बाँध कर ले चलो।"

'मुझको घसीट कर गाड़ी की ओर ले जाया गया। वह एक डिब्बा-सा था, जिसके नीचे पहिये थे। मुझको एक डिब्बे में ले जाकर एक कोने में बिठा दिया गया। जब सब युवतियाँ गाड़ियों में बैठ गईं, तो गाड़ियाँ चल पड़ीं। दो-दो औरतें ऊँटों की पीठ पर और शेष गाड़ियों के अन्दर बैठी थीं।

'जिस डिब्बे में मुझको बैठाया गया था, उसमें भी दो युवतियाँ आ बैठीं। उन दो में एक राजकुमारी थी। उनके बैठते ही डिब्बा बन्द कर दिया गया और गाड़ियाँ चल पड़ीं।

'राजकुमारी ने सुराखों में से आ रहे धीमे प्रकाश से मेरी ओर देखा ओर कहा,

"पूँगी सत्य कहती थी।"

"कौन पूँगी ?"

"जो तुमको मद्य पिलाने गई थी।"

"क्या कहती थी ?"

"कहती थी कि तुम बहुत सुन्दर हो।"

'इस कथन से मुझे रोमाञ्च हो आया। मैं चुपचाप मन्त्रमुग्ध की भाँति उसका मुख देखता रह गया। इस पर उसने कहा, "तुमको भूख नहीं लगी ?"

"बहुत।"

"तो खाओ।" इतना कह उसने एक चमड़े के थैले में से फल निकाले और मुझको खाने को दिए। वैसे फल मैंने पहले कभी नहीं खाये थे। इस पर उसने एक फल खाकर दिखाया और मैं भी वैसे ही खाने लगा। भूख लग रही थी। मैंने और माँगे और उसने दिए।

'गाडी चलती गई। राजकुमारी मेरे समीप बैठी थी। गाड़ी के हिचकोलों से हम एक-दूसरे से टकरा रहे थे। उसने इस पर भी मुझको दूर हटकर बैठने को नहीं कहा, प्रत्युत् वह मेरे समीप हो मेरे साथ सटकर बैठ गई। मुझको उसका स्पर्श भला लग रहा था और मुझको यह भी समझ आया कि वह मेरे साथ छूने को न-पसन्द नहीं कर रही।

'मुझको इस बात का विश्वास तब हुआ, जब उसने एक पात्र में स्वय मद्य पी और पीछे मुझको भी उसी पात्र में पीने के लिए दी। इस समय मैंने उससे पूछा, "आप लोग हमारे देश की भाषा कैसे जानती हैं ?"

"हम फिलिस्तीन के रहने वाले हैं। जब भगवान् की हम पर कुदृष्टि हुई तो हम सैकड़ों की सख्या मे वहाँ से भाग कर इस मरुभूमि में एक हरियाले स्थान पर आकर रहने लगे। एक सहस्र वर्षों से हम

वहाँ रह रहे हैं। हमारे आपस में ही विवाह होते हैं और अब हम कई सहस्र हैं। हम ईजराईली हैं और यहाँ आनन्द में रहते हैं। यही भाषा हमारे पूर्वज बोलते थे।"

"मैं भी वहाँ का रहने वाला हूँ।"

"पर अब तो तुम हमारे बन्दी हो। मेरे पिता तुमसे न्याय करेंगे।"

"मैं तो आपसे न्याय की अभिलाषा करता हूँ।"

"मैं तुमसे प्रेम करने लगी हूँ।"

"तब तो मैं अपने-आपको भाग्यशाली मानता हूँ। जहाज में मेरे पिता का देहान्त हो गया और हमारी सारी सम्पत्ति डूब गई। परन्तु आपके प्रेम में मैं यह सब कुछ भूल गया हूँ।"

'इस पर उसने मेरी कमर में हाथ डाल कर मुझको अपने साथ सटा लिया। उसने मेरे सिर को अपनी छाती से लगा लगाया। वह मुझसे ऊँचे स्थान पर बैठी हुई थी। हम को इस प्रकार प्यार करते देख सामने बैठी स्त्री बोली, "राजकुमारी।"

'इस पर राजकुमारी ने कह दिया, "अपना मुख मोड लो और इधर मत देखो।"

इस पर वह स्त्री हँस पड़ी और हमारी ओर पीठ कर बैठ गई। मुझको उसकी हँसी में कुछ कुटिलता दिखाई दी। इससे मैं कुछ भयभीत हुआ, परन्तु जब राजकुमारी ने मेरे मुख को ऊपर उठाकर चूमा तो मेरे मन में भय निःशेष हो गया। इसके उपरान्त हमने जी भर कर प्यार किया।

'समुद्र-तट से उनका गाँव कई मील की दूरी पर था। हमें वहाँ पहुँचने में कई घंटे लगे। जब लक्ष्य-स्थल पर पहुँचे तो सूर्य ढलने लग गया था। गाड़ी खड़ी हुई तो पहले राजकुमारी डिब्बे से बाहर निकली और पीछे दूसरी युवती, मेरे गले में बँधे रस्से को पकड़े हुए। वह मुझको लेकर एक ओर चली गई।

'वह एक छोटा-सा नगर था। वहाँ एक स्वच्छ जल का झरना

था और इस झरने के जल से ही वे खेती-बाड़ी करते थे। इसी जल से बाग-बगीचों को भी पानी दिया जाता था। स्नानादि के लिए भी वहाँ का ही जल प्रयोग में लाया जाता था। वर्ष में एक-आध बार समुद्र की ओर से हवाएँ भी आती थीं और वर्षा हो जाती थी।

'झरने के चारों ओर भट्टों से पकी हुई ईंटों के मकान थे और उनमें ये लोग रहते थे।

'मुझको वह स्त्री पकड़े हुए एक ऊँचे विशाल मकान मे ले गई। सब लोग मेरी ओर देखते थे और विस्मय में एक-दूसरे से पूछने लगते थे। वह युवती गभीर भाव बनाये हुए चलती गई। उसने किसी को मेरा रहस्य नहीं बताया।

'मकान के प्राँगन को लाँघकर, कई कमरों में से होते हुए वह मुझको एक बहुत बड़े कमरे मे ले गई। वहाँ एक प्रौढावस्था का पुरुष एक स्त्री से बातें कर रहा था। मुझको उस पुरुष के सम्मुख उपस्थित किया गया। मैं समझ गया कि ये राजकुमारी के माता-पिता हैं। यह समझ मैंने झुक कर प्रणाम किया। उसने प्रश्नभरी दृष्टि से उस युवती की ओर देखा। युवती ने बताया, "जब हम स्नान कर लौटने लगीं, तो यह आदमी किनारे पर प्यास से व्याकुल घूमता दिखाई दिया। इसका कहना है कि उसका जहाज डूब गया है और यह अकेला ही बचा है। राजकुमारी की आज्ञा से इसको हम बन्दी बना कर यहाँ लाए हैं।"

'इस पर उस पुरुष ने समीप बैठी स्त्री से पूछा, "तुम इस पर विश्वास करती हो क्या ?"

"इसमें अविश्वास की कोई बात नहीं। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इसका करें क्या ?"

'इस पर उस पुरुष ने कुछ कर विचार कहा, "इसको अभी बन्दी-गृह में डाल दो। हम मन्त्रियों से राय कर बताएँगे।"

'मुझको वह युवती कमरे से बाहर ले गई और एक अन्य मकान मे, जिसकी ऊँची ऊँची दीवारें थीं, ले गई। दीवारों में खिडकियाँ रोशन-

दान आदि नहीं थे। यह वहाँ का बन्दीगृह था। वहाँ उस युवती ने बन्दीगृह के दरोगा को महाराज की आज्ञा सुना दी और मुझको उसके पास छोड़ चली गई।

मैं अब एक कोठरी में अकेला बन्द कर दिया गया। तीन दिन और तीन रात तक सिवाय खाना देने और टट्टी के लिए बाहर निकालने के मेरे साथ कोई बात नहीं की गई।

'जो मुझको भोजन देने आता था, मैं उससे पूछता, "मुझको कब तक बन्दी रखा जाएगा।" इसका उसके पास कोई उत्तर न होता था।

'अन्त में तीसरी रात में हताश-सा कोठरी में सो रहा था कि कोठरी का द्वार खुला। मैं चौंक कर उठ खड़ा हुआ और पूछने वाला था कि कौन है कि आने वाले ने धीरे से "शी ··शी···।" कह कर मुझे चुप करा दिया।

'मुझको अन्धेरे में यह मालूम नहीं हुआ कि भीतर आने वाला कोई पुरुष था या स्त्री। इस पर आने वाले ने मेरे कान के समीप मुख कर कहा, "राजकुमारी बुलाती है।"

'मैं चौंक कर उठा। इस पर उसने मेरी बाँह पकड़ कर दबाई, जिससे मैं बिना सोच-विचार किए उसके पीछे चल पड़ा।

'मुझको लेने के लिए आने वाली पूँगी थी। यह वही युवती थी, जिसने राजकुमारी से कहा था कि मैं सुन्दर हूँ। हम कोठरी से निकले तो उसका द्वार बन्द कर उसने ताला लगा दिया। हम उस मकान से बाहर निकले तो मैंने देखा कि द्वारपाल अपने स्थान पर बैठा ऊँघ रहा है। पूँगी ने तालियों का गुच्छा खूँटी से लटका दिया और मुझको लेकर मकान से बाहर निकल आई। हम राजमहल के पीछे की ओर जा पहुँचे। वहाँ द्वार पर स्त्रियाँ खड़ी पहरा दे रही थीं। हमको किसी ने रोका नहीं। द्वार के भीतर एक आँगन में से निकल कर दीवार में एक छोटे से द्वार के बाहर हम जा खड़े हुए। वहाँ कोई पहरेदार नहीं था। पूँगी ने वहाँ द्वार पर संकेत किया तो वह खुल गया।

'हम दोनों भीतर जा पहुँचे। अब एक सँकड़े मार्ग में से, जिसके दोनों ओर ऊँची-ऊँची-दीवारें थीं और ऊपर छत थी, चलते हुए एक अन्य द्वार के सामने जा पहुँचे। यहाँ पूँगी ने फिर संकेत किया और द्वार खुलने पर हम एक कमरे में, जिसमें प्रकाश हो रहा था, पहुँच गए। पूँगी मुझको वहीं खड़ा कर एक अन्य द्वार से निकल गई।

'दो-तीन क्षण पीछे उस द्वार से, जिससे पूँगी गई थी, राजकुमारी आई और आते ही मुझसे लिपट गई। मैंने उसको अपनी भुजाओं में समेट लिया। इस प्रकार आलिंगन कर उसने कहा, "मेरे पिता मेरा विवाह मेरे चचेरे भाई से कर रहे हैं। मै उससे घृणा करती हूँ। तुमसे मिलने से पहले मैंने विवाह में आपत्ति नहीं की थी, परन्तु अब मुझको आपत्ति है। मैं उससे विवाह नहीं करूँगी।

"आज मैं तुमसे विवाह करूँगी और फिर हम यहाँ से भाग जाएँगे।"

"मुझसे विवाह ?"

"हाँ ! और अभी। इधर आओ।" वह मुझको एक कमरे में ले गई। वहाँ एक स्वच्छ जल का कुण्ड था। राजकुमारी ने मुझसे कहा, "इस कुण्ड में स्नान करो। ये कपड़े तुम्हारे लिए हैं। पहन कर बाहर आ जाना। जल्दी करो। आधी रात जा चुकी है।"

'इतनी आनन्दोत्पादक बात के लिए मैं देरी क्यों करता। मैंने स्नान किया, कपड़े पहने। इस समय पूँगी आई और मेरे माथे और कानों पर एक प्रकार का सुगन्धित द्रव्य लगाकर, मुझको राजकुमारी के शयनागार में ले गई। वहाँ वह खड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही थी।

'रात भर हम परस्पर प्यार करते रहे। सूर्योदय से पहले हम उठे और राजकुमारी मुझको एक बगल वाले कमरे में ले गई। वहाँ बैठकर मुझसे कहने लगी, "मैं अपनी माँ से विवाह की बात कह दूँगी। यदि मेरे पिता मान गए तो ठीक है, नही तो हम कल यहाँ से किसी समय भाग जाएगे। कहते हैं कि यहाँ से दो सौ मील पूर्व की ओर एक

नदी नील है। उसके किनारे बड़े-बड़े नगर हैं। वहाँ जाकर हम सुख पूर्वक रहेंगे।"

'मैं दिन-भर कोठरी में बन्द रहा। कमरे की छत में से प्रकाश के लिए एक झरोखा था। उसमें पता चल गया कि रात हो गई है और मैं उत्सुकता से राजकुमारी की प्रतीक्षा करने लगा। आधी से अधिक रात गये मेरे कमरे का द्वार खुला और पूँगी मुझको कोठरी से बाहर कर, अपने साथ ले जाकर राजकुमारी के शयनागार में छोड़ आई। वहाँ हमने भोजन किया। मद्यपान की और फिर रात-भर पहले से भी अधिक प्यार किया।

'प्रातः राजकुमारी ने बताया कि उसके पिता मेरे से उसके विवाह के लिए तैयार नहीं हुए। परसों उसका विवाह उसके चाचा के लड़के से होना निश्चित् है। एक बार माँ और यत्न करने वाली हैं और यदि पिता कल तक न माने तो हम भाग जाएँगे। एक ऊँट पर पानी और खाने का सामान तैयार रहेगा।

"मैं फिर उसी कोठरी में, जिसमें मैं पिछले दिन रहा था, ले जाकर बन्द कर दिया गया। ज्यूँ-ज्यूँ दिन व्यतीत होता गया, मेरी आशाओं पर पानी फिरता गया। राजकुमारी अथवा पूँगी कोई नहीं आई।

'उस दिन मध्य रात्रि के समय अचानक द्वार खुला और मैं चौंका। मैंने देखा कि राजकुमारी थी। उसने मुझको कोठरी से निकाला और खिलाया-पिलाया। पश्चात् हम दोनों, उस मार्ग से, जिससे मुझे वहाँ लाया गया था, महल के बाहर निकल गए।

'हम सोये हुए नगर के पूर्वी द्वार पर जा पहुँचे। वहाँ एक ऊँट बैठा जुगाली कर रहा था। राजकुमारी ने मुझको उस पर चढ़ाया और स्वयं चढ़ पीछे बैठ गई। पश्चात् ध्रुवतारा देख हम पूर्व की ओर चल पड़े।

'या तो राजकुमारी का अनुमान कि नील नदी दो सौ मील पर है, गलत था, या हम पथ-भ्रष्ट हो गए थे। हमको पाँच दिन में नदी तट

पर पहुँच जाना चाहिए था, परन्तु आठ दिन व्यतीत हो गए थे और न कोई जल-स्रोत मिला और न कोई नदी।

'हमारे पास पीने का जल समाप्त हो गया। भोजन सामग्री चूक गई और सबसे बडी बात यह हुई कि आठवें दिन हमारा ऊँट प्यास से व्याकुल मर गया। हमने चारों ओर दृष्टि दौडाई और जिधर से सूर्योदय होता है, उसी ओर चल दिए। हमारे पास न तो जल था और न ही किसी प्रकार का खाने का सामान। हम हाथ-मे-हाथ पकडे चलते गए। मध्याह्न के समय राजकुमारी ने कहा, "मुझको बहुत खेद है कि अपने साथ मैंने तुम्हारी भी जान ली। मुझको अब बच निकलने की कोई आशा नहीं प्रतीत होती। अधिक-मे-अधिक हम सायकाल तक चल सकेंगे और फिर ··और फिर ।" उसकी आँखें तरल हो गईं। मैंने उसको छाती से लगाकर उसका मुख चूम लिया। इस पर उसने कहा, "यदि हम मजिल पर न पहुँच सके, तो मुझको अपनी छाती से लगे-लगे मरने देना।"

"मैंने समय व्यर्थ गँवाना उचित न समझा। हम पूर्व की ओर चलते गए। मध्याह्न हुआ, साय हुई। अभी तक जल का कहीं नामोनिशान नहीं दिखाई दिया। राजकुमारी बिल्कुल थक गई थी और दुर्बलता मे उसकी टाँगें लडखडा रही थीं। इस पर भी हम धीरे-धीरे बढते गए। एकाएक राजकुमारी, जो मेरे कधे का सहारा ले रही थी, लुडक कर भूमि पर गिर पडी। मेरे होठ सूख कर पपडी हो गए थे। इस पर भी मैंने उसके होठों से अपने होट लगाकर, उसकी जिह्वा को, जो प्यास से सूख कर लकडी हो रही थी, गीला करने का यत्न किया। इसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। उसको सास खिच-खिचकर आने लगा और वह अचेत थी। मैं और कुछ नहीं कर सकता था। उसको अपनी छाती के साथ लगा कर जमीन पर बैठ गया और धीरे-धीरे उसका सास कम होता गया और मेरी भुजाओं में ही उसका प्राणान्त हो गया।

'पिछले दस दिन हम इकट्ठे रहे थे और वह मेरे जीवन का अति आनन्द-प्रद काल था। उसने जी भरके मुझसे प्यार किया था। मेरे से

प्रेम के कारण ही वह राज्य और माता-पिता को छोड़कर जीवन दान कर बैठी थी।

'जब मैंने देखा कि उसकी जीवनलीला समाप्त हो गई है, तो मैं निराश हो वहाँ लेट गया। मैंने निश्चय कर लिया था कि मैं भी वहीं लेटा-लेटा प्राण दे दूँगा। मुझको लेटे अभी आधी घटी भी नहीं हुई थी कि किसी ने मुझको बाँह से पकड़कर उठाया। मैं उठकर देखने लगा। राजकुमारी मेरे सामने खड़ी थी और उसके अन्दर से एक प्रकार का प्रकाश निकल रहा था। मैंने अपने समीप पड़े शव को टटोल कर देखा। शव भी वहीं था। मैं फिर सामने खड़ी राजकुमारी को देखने लगा। वह मुस्करा रही थी। उसने मुझे संकेत से अपने पीछे आने के लिए कहा। मैंने फिर शव की ओर देखा। परन्तु वह अपनी ओर संकेत कर बुला रही थी। मुझको समझ आया कि यह उसकी आत्मा है। मैं उठकर उसके पीछे-पीछे लड़खड़ाते कदमों से चलने लगा। वह मुझको पूर्व की ओर ले चलने के स्थान दक्षिण की ओर ले चलने लगी।

'वास्तव में हम नदी के उस भाग के साथ-साथ जा रहे थे, जहाँ वह पर्वतों से निकल कर पश्चिम से पूर्व की ओर जाती थी। वह लगभग दो मील तक पथ-प्रदर्शन करती रही। कुछ ही देर में मैं नदी के किनारे पर था। मुझे वहाँ छोड़ वह नदी के ऊपर आकाश में विलीन हो गई।'

"जब फरीद यह कथा सुना रहा था, तो उसकी आँखों से अविरल आँसू बह रहे थे। उस लड़की ने पूछा, 'तो फिर क्या हुआ? क्या वह कभी फिर भी दिखाई दी है?'

'मैं नित्य रात को उसको देखता हूँ। परन्तु वह सब कुछ स्वप्न समान ही होता है।' "

जब सदानन्द ने कहानी समाप्त की, तब भी सब चुपचाप बैठे रहे। मानो प्रत्येक अपने-अपने विचारों में लीन कहीं अन्यत्र विचर रहा हो। सदानन्द ने कहा, "ओह! बहुत रात हो गई। लो भाई! अब मैं चला!"

इतना कह वह उठा। चमेली, जो उसके साथ सटकर उसके सहारे बैठी थी, उठ खड़ी हुई। गली में अँधेरा हो चुका था। दूर गली के अन्दर एक मिट्टी के तेल के लैम्प का धीमा प्रकाश हो रहा था। लालटेन का प्रकाश केवल लालटेन के अस्तित्व को ही प्रकट कर रहा था। गली के अन्धकार पर उसका कोई प्रभाव नहीं था।

कुछ कहानी सुनने वाले वहाँ ही बैटे रहे। कुछ अपने-अपने घरों को चले गए। जाने वालों में सदानन्द और चमेली भी थे। दोनों के घर साथ-साथ थे। इस कारण इकट्ठे ही चल पड़े। जब सदानन्द चमेली के घर के सामने से गुजरा तो अँधेरे में किसी ने उसकी बाँह पकड कर दबाई। सदानन्द घूम कर देखने लगा। यह चमेली थी। उसने कहा, "इधर आओ।"

"किधर ?"

"हमारे घर।"

"क्यों ?"

इसके उत्तर में उसने सदानन्द की बाँह पकड कर, उसको अपने मकान में घसीट लिया। घर में इस समय चमेली का छोटा भाई और माँ थीं, परन्तु दोनों ऊपर की मंजिल पर थे। नीचे घटाटोप अँधेरा था। ड्योढी में से वह उसे बगल के कमरे में ले गई। वहाँ भी अँधेरा था।

सदानन्द ने पूछा, "क्या है चमेली ?"

चमेली ने उसका आलिगन कर उसका मुख चूम लिया।

सदानन्द कमरे से बाहर निकल आया। उसका मस्तिष्क भन्ना उठा था। एक विशेष प्रकार का स्पन्दन उसके शरीर में हुआ था। चमेली तो सीढियों पर चढ गई, परन्तु सदानन्द उसके घर से निकल कर ड्योढी में ही बैठ गया। चमेली के आलिंगन ने उसके पूर्ण शरीर मे एक अज्ञात अनुभव उत्पन्न किया, जिसका अर्थ वह नहीं समझ सका था। यह तो वह समझता था कि यह है, जिसको पति-पत्नी में प्यार करना कहते हैं। परन्तु क्या चमेली से उसका प्यार करना उचित है ? इससे उसके

मस्तिष्क में खलबली मच उठी थी। अभी तक उसके मन में मुहल्ले की लड़कियों के प्रति बहन की भावना थी। वह जानता था कि कमला ने उससे कभी भी आलिंगन नहीं किया था। इस कारण चमेली का व्यवहार कमला जैसा अर्थात् जैसा एक बहन का होना चाहिए, नहीं था। इसमें उसका व्यवहार स्वादु होता हुआ भी मन को भला प्रतीत नहीं हुआ था।

उसको अपने विचारों में वहाँ बैठे-बैठे न जाने कितना समय व्यतीत हो जाता, यदि चमेली अपने घर का दरवाजा बन्द करने नीचे न आ जाती। माँ के कहने पर वह द्वार बन्द करने आई तो सदानन्द को वहाँ बैठा देख, पूछने लगी, "कौन सदा भैया?"

"तुम्हारा सिर। यह तुमने क्या किया है?"

"देखो माँ ऊपर प्रतीक्षा कर रही है। अब जाओ। मैंने दरवाजा बन्द करना है। कल मिलेंगे तो बात करेंगे।"

सदानन्द उसकी माँ की बात सुन उठ अपने घर चला गया। वहाँ उसकी माँ प्रतीक्षा कर रही थी। सदानन्द को आया देख माँ ने पूछा, "सदा! बहन से मिल आए हो?"

"नहीं माँ! आज शनिवार है। लड़के कहानियाँ करने लगे थे। इस कारण जा नहीं सका। कल अवश्य जाऊँगा।"

रात बहुत देर तक वह सुख-स्मृति और कुछ अनिष्ट की सम्भावना में हिलोरें लेता रहा। उसको चमेली का आलिंगन बहुत ही आनन्दोत्पादक प्रतीत हुआ था, परन्तु नैसर्गिक रूप में वह इसको अच्छा नहीं समझता था। परन्तु क्यों अच्छा नहीं, वह यह विचार कर रहा था। उसने अपने स्कूल में मास्टर के मुख से और पुस्तकों में एक शब्द ब्रह्मचर्य पढ़ा था। उसकी बालबुद्धि में इस शब्द का अर्थ लड़कियों से अलग रहना मात्र ही था। वह समझता था कि चमेली ने उसका ब्रह्मचर्य भंग कर दिया है।

बहुत रात गए वह सो सका। इस कारण दिन बहुत निकल आया था, जब वह उठा। माँ ने उसको स्मरण कराया कि उसने कमला ने

मिलने जाना है। इससे वह स्नानादि से निवृत्त हो मैक्लोड रोड वकील साहब की कोठी पर चला गया।

वह मध्याह्न पश्चात् तक वहाँ रहा और फिर वहाँ से परेड ग्राउन्ड खेलने चला गया। वहाँ लडको से कबड्डी खेलता रहा। उसका खेल अपने से बडों से भी अच्छा होता था।

दो घन्टा खेल कर और दिन-भर खुली हवा में रह कर, वह चमेली के व्यवहार को भूल गया था। सायकाल भूख लगने पर वह घर आया तो चमेली को वहाँ बैठा देख उसे अच्छा नहीं लगा। रात की बात उसको स्मरण हो आई।

चमेली उसके घर में बैठी प्रभा और रमा से गीटे खेल रही थी। लक्ष्मी एक पडोसिन के घर गई हुई थी। सदानन्द को आया देख प्रभा ने कहा, "माँ कह गई है कि दो रोटी और आम का आचार निकाल कर खा लेना।"

सदानन्द चमेली की अवहेलना करता हुआ, हाथ धो रोटी निकाल, उस पर अचार रख, हाथ में ही ले खाने लगा। रोटी खा और पानी पी, हाथ धो, जाने के लिए तैयार हो गया।

चमेली ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो सदा भैया?"

"यूँ ही घूमने। अभी सोने का समय नहीं हुआ।"

"आज भी कहानी सुनाओगे क्या?"

"नहीं, आज तो गली में सुनने वाला कोई भी नहीं है।"

"मैं जो हूँ। चलूँ?"

"नहीं।"

इस पर भी चमेली उठी और सदानन्द के साथ नीचे उतर गई। गली मे अन्धेरा हो गया था। जब दोनों नीचे गली में पहुँचे तो चमेली ने कहा, "चलो न हमारे घर।"

"क्या है वहाँ?"

"   ी है।"

"मुझको तुम्हारा कल का व्यवहार पसन्द नहीं।"

"क्यों ? उसमें क्या दोष है।"

"जब तक विवाह न हो लड़के-लड़कियों को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।"

"वह क्या होता है ?"

सदानन्द विचार करने लगा कि उसको कैसे समझाए। वह स्वयं इस विषय में कुछ नहीं जानता था। उसने कहा, "लड़के और लड़कियों को मिलना-जुलना नहीं चाहिए।"

"तुम बुद्धू हो सदा! आओ मैं तुमको समझाती हूँ। मोहनी को जानते हो न ? वह मेरी सहेली है। उसका विवाह पिछले आषाढ़ में हुआ था। मैं जब उससे मिलने जाती हूँ अथवा जब वह हमारे घर आती है तो मुझको बताया करती है कि उसका पति उससे क्या करता है।"

"पर न तुम्हारा विवाह हुआ है और न मेरा। विवाह के पहले तो वह कुछ करना ठीक नहीं न ? फिर न जाने तुम्हारा किससे विवाह होगा ?"

"मेरा तुमसे विवाह होगा ?"

"क्यों ?"

"तुम बहुत अच्छे हो।"

"पर तुम तो मेरी बहन हो।"

"कैसे ? मैं तुम्हारी माँ की बेटी तो हूँ नहीं।"

"मुहल्ले की सब लड़कियाँ मेरी बहन हैं।"

"पर मुहल्ले में तुम्हारा विवाह भी तो हो सकता है ?"

"वह होगा तो लड़की के माता-पिता की इच्छा से होगा।"

"मेरे पिता तो हैं नहीं। मेरी मां बेचारी कुछ जानती नहीं।"

"कुछ भी हो। मैं यह पसन्द नहीं करता। मेरा-तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता। मैं अभी पढ़ता हूँ। हम बहुत गरीब हैं।"

बहुत कठिनाई से सदानन्द चमेली से छुटकारा पा सका। इस पर भी कोई दिन ऐसा नहीं होता था, जब चमेली और सदानन्द की परस्पर भेंट न हो जाती थी। प्रायः सदानन्द के स्कूल से आने के समय चमेली उसके घर होती थी। कभी वह सायंकाल गली में मिल जाती, कभी घर का जीना चढते समय, कभी उतरते समय अथवा कभी कहानी सुनाते समय।

कभी-कभी एकान्त में बातचीत का अवसर भी मिल जाता था। चमेली सदानन्द को ऐसे अवसरों पर याद कराती रहती थी कि वह उससे प्रेम करने लग गई है और उससे ही विवाह करेगी। सदानन्द पहले तो कहता रहा कि ऐसा नहीं हो सकता। पश्चात् वह चुप रहने लगा और अन्त में वह उसके प्रेम को स्वीकार करने लगा।

एक-आध बार पुनः ऐसा अवसर भी आया कि एकान्त में चमेली ने उससे आलिंगन किया और सदानन्द इसके स्वाद को पाने के प्रलोभन को दमन न कर सका।

इस समय परमानन्द को मैट्रिक किए दो वर्ष हो चुके थे। उसकी टाईप और शार्टहैंड की गति काफी अधिक हो चुकी थी। वह अब प्रातःकाल वकील साहब से उस दिन के होने वाले मुकद्दमों के नोट शार्टहैंड में ले लेता और वकील साहब के कचहरी जाने से पूर्व उनको टाईप कर देता। इससे कॅवर सेन को बहुत सहायता मिलने लग गई थी और उसकी मुकद्दमों में सफलता बढ रही थी।

अतएव वकील साहब ने परमानन्द को डेढ सौ रुपया मासिक अपने पास से कमिशन के अतिरिक्त देना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप परमानन्द के घर की अवस्था और भी अधिक सुधरने लगी।

परमानन्द का विचार था कि सदानन्द मैट्रिक पास कर ले तो उसको

भी किसी काम पर लगा दिया जाए। इससे घर की आय में वृद्धि हो तो वे एक बड़ा सा घर किराए पर ले सकें, जिसमें कई कमरे हों। परन्तु उसकी यह आशा फलीभूत नहीं हुई।

मैट्रिक की परीक्षा का परिणाम निकला और परमानन्द ने देखा कि सदानन्द का नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियों में नहीं था। इससे उसको भारी दुःख हुआ। वह यह तो जानता था कि सदानन्द उसकी भाँति भारी अंक नहीं पा सकेगा, क्योंकि सदानन्द का पढ़ाई में उसके जितना मन नहीं लगता था। इस पर भी वह उसके फेल हो जाने की कदापि आशा नहीं रखता था। सदानन्द बहुत ही समझदार, बातचीत करने में सतर्क और सचेत तथा स्वस्थ शरीर वाला था।

सायंकाल जब वह घर आया तो उसने माँ से पूछा, "माँ! सदा कहाँ है?"

"सुबह का गया अभी तक नहीं आया।"

"वह फेल हो गया है।"

"फेल?" माँ ने आश्चर्य में पड़ पूछा, "अब क्या होगा?"

"होगा क्या? मैं चक्की पीसता रहूँगा और वह कहीं आवारागर्दी करता रहेगा।"

"पसी! देखो कहीं बाजार में कहानी कहता अथवा सुनता होगा।"

परमानन्द उल्टे पाँव मकान से उतर गया। उसने गली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक देख डाला। न सदा मिला और न ही उसका कोई साथी। गली से निकल वह बाजार में पहुँचा। रामलाल की दुकान के सामने एक मजमा लगा था। उसमें खड़ा कोई बैंत (पंजाबी कविता) सुना रहा था। परमानन्द ने समझा शायद वह भी वहाँ खड़ा सुन रहा हो। उस मजमे में वह जा खड़ा हुआ और झाँक-झाँक कर देखने लगा कि कौन गा रहा है। पर देख उसके पाँव तले से मिट्टी निकल गई कि बैंत गाने वाला सदानन्द ही था। वह बाजार में एक किनारे, एक थड़े पर

खडा बैत गा कर बोल रहा था। लगभग दो सौ आदमी दत्त-चित्त हो सुन रहे थे।

वह गा रहा था—

जे करिए प्यार ते मन विचों छड्ड दइये मान गुमान अपने।
जे दिल दित्ता फिर लैन दी की इच्छा रखिए विच ध्यान अपने॥
ओ जिंदे ऐस जहान अन्दर सब फज़ूल है बिन प्यार अपने।
धन धन ओ जिन्हाँ प्यार लई वार दित्ते सन घर बार अपने॥
सीता बन गई सी प्यार लई राधा मुरलीपई बजौं दी सी।
प्यार धर्म दे वास्ते जान वारी जद पद्मनी चिता सजौंदी सी॥
हकीकत राय ते गुरू दे लालाँ दी पई आत्मा तड़फड़ौंदी सी।
प्यार-प्यार कैंदी सती सावित्री यम द्वार पई खट खटौंदी सी॥

परमानन्द नहीं जानता था कि सदानन्द अब बैत गाता है। इतने लोगों को चुपचाप दत्तचित्त हो उसकी कविता का रस लेते देख वह चकित रह गया। इतनी तो उसको भी समझ आई कि उसके गाने में कुछ रस है, उसके वाक्यों के कुछ अर्थ हैं और उसकी भाव-भंगी में कुछ प्रभाव है।

वह विचार करने लगा था कि इससे उनके घर की अवस्था सुधरने में सहायता मिल सकेगी क्या? क्या यह उसकी कमाई का सदुपयोग हो रहा है? इसी समय सदानन्द ने गाना बन्द कर दिया। इस पर सुनने वालों ने शोर मचाया, "एक और, एक और।"

सदानन्द एक और सुनाने के लिए तैयार दिखाई देता था, परन्तु परमानन्द ने भीड के आगे होकर, सदानन्द का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर, उसको चलने का सकेत कर दिया।

सदानन्द ने जब परमानन्द को देखा तो उसको स्मरण हो आया कि आज मैट्रिक का रिजल्ट निकला है और उसका नाम सफल हुए विद्यार्थियों में नहीं है। अब वह लज्जा से सिर झुकाए भीड में से बाहर निकल आया।

"घर चलो ।" परमानन्द ने कहा । दोनो घर जा पहुँचे ।

मा ने पूछा, "कहाँ थे सदानन्द ?"

"कुछ लोगो ने बाजार मे कहा कि कविता सुना दो तो सुनाने लगा था । माँ ! जब मै सुनाता हूँ तो सैकड़ो की भीड़ एकत्रित हो जाती है ।"

"मै भीड़ को क्या करूँ ? देखो तुम्हारा भाई दिन-भर मेहनत-मज़दूरी करता है और घर के ग्यारह प्राणियो का पेट भरता है । दूसरे तुम हो जो खा-पीकर डकार जाते हो और गली-बाज़ार मे आवारा-गर्दी करते फिरते हो । तुम फेल हो गए हो, पता है तुम्हे ?"

"हाँ, मालूम है माँ ! मुझको एलजैबरा ज्योमेट्री बिल्कुल नही आती और उनके बिना मैट्रिक पास नही की जा सकती ।"

"तो फिर क्या करना है ? क्या भाई के गाढ़े पसीने की कमाई डकारते रहोगे ?"

"नही माँ ! कल से कुछ काम करूँगा । जो कुछ कमाऊँगा तुमको दे दिया करूँगा ।"

माँ प्रसन्न हो गई । परमानन्द को यह बात पसन्द नहीं आई । उसके मन मे सदानन्द की उन्नति के स्वप्न आया करते थे । वे सब ताश के पत्तो के महल के समान ढह गए । मैट्रिक फेल काम ढूँढेगा तो मिलेगा क्या ? ज्यादा-से ज्यादा पैंतीस-चालीस रुपये । इसमे क्या माँ को देगा और क्या अपने लिए रखेगा !

उसने माथे पर त्योरी चढ़ा कर कहा, "तो पढ़ाई बन्द ? मैट्रिक फेल को क्या वेतन मिलेगा ?"

इस पर सदानन्द आँखे नीची किए बैठा रहा । माँ ने कहा, "हाँ बताओ न । क्या काम कर सकते हो तुम ?"

सदानन्द ने अभी भी आँखे नीचे किये हुए कहा, "माँ ! मुझसे एलजैबरा ज्योमेट्री याद नहीं होती । यहाँ हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी पढ़ने की बात हो तो पढ़ सकता हूँ ।"

"अब तुम्हारे लिए नए स्कूल खुलेंगे, जहाँ गणित न पढ़ाकर

संस्कृत अरबी वगैरह पढाई जाएगी।"

"स्कूल में न सही। मैं ऐसे ही पढ लूँगा।"

"पर खाना-पीना कैसे चलेगा?"

"इसका प्रबन्ध करने कल जाऊँगा।"

"तो ठीक है। एक महीने में यदि तुम खाने-पहनने के लिए माँ को देने न लगोगे तो रोटी-पानी बन्द हो जावेगी।"

सदानन्द वास्तव में परीक्षा में बैठा ही नहीं था। कहानी सुनने-सुनाने का उसे ऐसा शौक था कि वह दिन-भर कहानियों की पुस्तकें पढा करता था। वह अब पंजाब पब्लिक लायब्रेरी में जाने लगा था। जब भी उसको समय मिलता, वह वहाँ चला जाता और जो भी कहानी की पुस्तक वहाँ मिलती, उसको निकलवाकर वह पढने लगता।

इन दिनों उसको कविता पढने और बनाने में भी रुचि उत्पन्न हो गई और वह पंजाबी में कविता करने लगा। जब दूसरे लडके परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, वह किसी बाग में बैठ बैत बनाता था और सायंकाल किसी परिचित की दूकान पर बैठकर सुनाता था।

जब तक परीक्षा होकर उसका रिज़ल्ट निकला, वह बैत कहने वाला मशहूर हो चुका था। उसको तो विदित ही था कि उसका नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियों में नहीं हो सकता। अतएव परीक्षाफल घोषित होने के दिन न उसको शोक था और न चिन्ता। इस पर भी वह माँ और भाई को बताना नहीं चाहता था कि उसने परीक्षा नहीं दी।

कहानियाँ पढने से उसके मन मे भांति-भांति की योजनाएँ बनती रहती थीं, परन्तु आवश्यकता न पडने के कारण वह किसी को भी कार्य में न ला सका था। अब उसको चुनौती मिल गई थी। उसने एक मास में रोटी कमाने की योग्यता उत्पन्न करनी थी। इससे रात-भर वह विचार करता रहा। वह अपने लिए उपयुक्त काम विचार रहा था।

अगले दिन प्रात काल उठा। अभी भी उसके मस्तिष्क मे कोई योजना नहीं आई थी। वह स्नानादि से छुट्टी पा और भोजन कर घर

से चलने को तैयार हुआ तो माँ ने समीप बैठा पूछा, "सदा ! कहाँ जा रहे हो ?"

"माँ ! मैं कहानियाँ कहता हूँ और गीता गाता हूँ। यही काम मैं सीखना चाहता हूँ। इसके सीखने में बहुत समय लगेगा। इतनी देर के लिए कोई ऐसी नौकरी ढूँढने का यत्न करूँगा, जहाँ पेट भरने के लिए कुछ मिल जाय और मुझको यह काम सीखने के लिए समय भी मिलता रहे।"

"पर इस काम को सीखकर रोटी कमाने के योग्य हो जाओगे क्या ? और फिर हमको भी कुछ देना चाहिए तुम्हें। साथ ही तुम्हारा विवाह होगा। वह आएगी। क्या उसको तुम वैसे ही भूखा रखना चाहते हो, जैसे तुम्हारे पिता ने हमको रख छोड़ा था ?"

"नहीं माँ ! जब मैं यह विद्या सीख जाऊँगा तो बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखूँगा और बहुत रुपये कमाकर लाऊँगा।"

माँ चुप रह गई। उसको इन बातों का ज्ञान नहीं था। सदानन्द घर से उतर गली में जा खड़ा हुआ। माँ के मुख से विवाह की बात सुन, उसके मन में चमेली को देखने की लालसा जाग पड़ी। इन दिनों वह मन में उससे विवाह करने के विषय में विचार कर रहा था। यह विचार कर कि कहीं गली में चलती-फिरती मिल जाय, तो उसको देख ले वह गली में कितनी ही देर तक खड़ा रहा। परन्तु वह दिखलाई नहीं दी।

विवश वह गली से निकला। शाहालमी दरवाजे से निकल लाहौरी दरवाजे, वहाँ से अनारकली बाजार में से होकर गोल बाग में जा पहुँचा। वहाँ एक लॉन में बैठकर वह अपने विचारों को संगठित करने लगा। जब उसका मस्तिष्क किसी करने योग्य काम का विचार करने में असमर्थ रहा तो वह उठ पड़ा और वहाँ से भाटी दरवाजे की ओर चल पड़ा। वहाँ से वह बाजार में से चलता हुआ दोनों ओर देखता जाता था कि लोग क्या-क्या काम करते हैं और उनमें से वह क्या कर

सकेगा। इस प्रकार भाटी दरवाजे के भीतर से टिब्बी बाजार, हीरा-मडी, लगे मडी और सुर्जनसिंह के चौक में जा पहुँचा। वह लोगों को देखता जाता था कि वे क्या-क्या काम कर रहे हैं।

सुर्जनसिंह के चौक से वह मस्ती दरवाजे की तरफ घूम गया। यहाँ उसकी दृष्टि एक बैठक में और उसके बाहर छोटी-बडी उमर के कई आदमियों को बैठे, पीले-पीले कागजों पर कुछ लिखते हुओं पर पड़ गई। इन लिखने वालों में एक-दो लडके भी थे। वह वहाँ खड़ा हो देखने लगा कि वे क्या कर रहे हैं। एक आदमी बैठक के बाहर थड़े पर बैठा लिख रहा था। वह उसके समीप हो उसका लिखा पढने लगा। उसने पढा—

'गुरबत में हैं अगर हम पर याद है कहानी।
औलाद शूरो की हैं ऋषियों की हैं निशानी॥

इस शेर को पढ़ सदानन्द लट्टू हो गया। वह लिखने वाले की पीठ की ओर होकर पढने लगा। लिखने वाला लिख रहा था—

'ख़िदमत वतन की हमको, इक शौक सी लगन हो।
अब ज़िन्दगी का मखसद, तरक्की अंजुमन हो॥

दुनिया की नेमतों से अफ़ज़ल हमे वतन हो।
मर कर भी चाहते हैं खाके वतन कफ़न हो॥

हुब्बे वतन समाए आँखों में नूर होकर।
सर में खुमार होकर, दिल में सरूर होकर॥

सदानन्द के मुख मे अनायास ही निकल गया, 'खूब! खूब!!'
लिखने वाले ने सिर उठाकर देखा और मुस्करा दिया। इस पर सदा-नन्द ने पूछा, "यह किस लिए लिख रहे हो भाई?"

लिखने वाला कदाचित् लिखता-लिखता थक गया था। इस कारण थोडा आराम करने के लिए बातें करने लगा। उसने कहा, "यह किताब

छपेगी। जो कुछ यहाँ लिखा जाता है, वैसा ही पत्थर पर जम जाता है और फिर कागज पर छपता है।"

"आपको इस लिखने का कुछ मिलता है क्या ?"

"हाँ। सीखोगे यह काम ?"

"क्या मैं सीख सकूँगा ?"

"अगर खुशखत लिखना जानते हो तो।"

"मेरा खत बहुत अच्छा है।"

"वह उस्ताद बैठे हैं। उनसे बात करो।"

सदानन्द ने विचार किया, यह मजा रहेगा। किताबें पढ़ूँगा और लिखूँगा। साथ ही मजदूरी भी मिलेगी। इस कारण वह बिना हिच-किचाहट के उस आदमी के पास चला गया, जिसको लिखने वाले ने उस्ताद बताया था। सदानन्द ने उससे कहा, "उस्ताद! यह काम मुझको भी सिखा दो।"

"पहले लिखकर दिखाओ कि तुम्हारा खत कैसा है।"

"एक कागज कलम दवात दीजिए। मेरी लिखाई खराब नहीं है।"

उस्ताद ने एक कागज और कलम दी और कहा, "यह किताब लो और इसमें से दो शेर लिख कर दिखलाओ।"

सदानन्द वहाँ बैठ गया और उसने किताब में से तीन-चार शेर लिखकर दिखाए। उस्ताद ने देखकर कहा, "अभी मश्क की जरूरत है। आहिस्ता-आहिस्ता लिखोगे तो ठीक हो जाएगा। इस लिखाई का राज यह है कि दायरे और शोशे सब बराबर-बराबर होने चाहिए। कहीं छोटे और कहीं बड़े होने से लिखाई भद्दी दीखने लगती है।

"पन्द्रह दिन तक यहाँ अभ्यास करो। तब तक जितने कागज खराब करोगे, उनका दाम तुमको अपने पास से देना होगा। इस अर्से के पीछे ही बता सकूँगा कि तुम काम करने के लायक हो भी या नहीं।"

सदानन्द सब शर्तें मान गया और उसी दिन से उसने लिखना आरम्भ कर दिया। उस्ताद ने उसको एक चिट्ठा, जो गजलें गानों का

था, किताबत करने के लिए दे दिया। सदानन्द ने लिखना आरम्भ कर दिया। कई दिन के अभ्यास के पश्चात् उस्ताद ने उसको अच्छे काम देने आरम्भ कर दिए और उसी दिन से उसको उजरत मिलने लगी। पहले दिन वह सवा रुपया कमा कर लाया और वह उसने माँ को दे दिया। माँ ने उसको आशीर्वाद दिया और पूछा, "इतने से क्या बनेगा ?"

यों तो सदानन्द भी समझता था कि इतने से उसका अपना खर्चा भी नहीं निकल सकता। परन्तु वह अपने लिखने की योग्यता बढ़ा रहा था और समझता था कि किसी दिन वह लेखक होगा और उससे लिखी किताबों की किताबत दूसरे लोग करेंगे। यह स्वप्न था और वह इसको सत्य करने पर तुला हुआ था।

।

सदानन्द भी प्रातःकाल का गया रात को घर आता था। वह प्रात.काल से दोपहर तक तो किताबत करता रहता था। दो से अढाई रुपये नित्य कमा सकता था। मध्याह्नोत्तर एक बजे काम बन्द कर वह घर आ भोजन करता। एक घण्टा विश्राम करता और ठीक चार बजे वह पंजाब पब्लिक लायब्रेरी में पढ़ने जा बैठता।

साय सात बजे वह वहाँ से चल कर परिचितों की दुकानों पर, अथवा गर्मी की ऋतु में नगर के बाहर बाग में, जा बैठता और वहाँ कभी शेर पढ़ने वाले आते तो फिर रात के दस-ग्यारह बजे तक ये मजमे चलते।

इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गए। किताबत करने में सदानन्द का हाथ बहुत सुधर गया था। उसकी लिखाई की दर प्रतिपृष्ठ बढ़ गई थी और उसकी आय तीन-साढ़े तीन रुपया रोज की हो गई थी। वह नित्य माँ को दो रुपये अपने खर्चे के लिए दे देता था। सप्ताह में इसके

अतिरिक्त जो कुछ बचा पाता था, वह डाकखाने के सेविंग्स फण्ड में जमा करता जाता था।

एक रात वह शायरों की मजलिस में बहुत प्रशंसा पाकर आ रहा था। जब वह गली में घुसा तो उसका रास्ता चमेली ने रोक लिया। उस समय वहाँ घटाटोप अँधेरा था। आज गली की अन्धी लालटेन भी बुझी हुई थी। सदानन्द ने सामने किसी को खड़े रास्ता रोकते देखा तो पूछा, "कौन है?"

"चमेली।"

"चमेली? यहाँ क्या कर रही हो?"

"तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।"

"घर जाओ। माँ ढूँढती होगी।"

"नहीं। आज माँ एक विवाह पर गई है। मोहन और मैं घर पर हैं। मोहन इस समय सो रहा है।"

"क्या काम है?"

"हमारे घर आओ। कुछ काम है।"

"यहीं बता दो न।"

"नहीं। यहाँ बताने का नहीं है।" इतना कह वह उसको घसीट कर अपने घर के नीचे के कमरे में ले गई। वहाँ पहुँच उसने कमरे का द्वार बन्द कर लिया और सरसों के तेल का दिया जला लिया। दोनों वहाँ बिछी चारपाई पर बैठ गए। सदानन्द ने पूछा, "अब जल्दी बताओ क्या काम है?"

"तुम दिन-भर कहाँ रहते हो? दस दिन से तुमसे मिलने की कोशिश कर रही हूँ।"

"क्या काम था?"

"मेरा विवाह हो रहा है।"

"सत्य? कहाँ?"

"दो-तीन दिन में सगाई होने वाली है। पश्चात् एक-दो महीने

था, किताबत करने के लिए दे दिया। सदानन्द ने लिखना आरम्भ कर दिया। कई दिन के अभ्यास के पश्चात् उस्ताद ने उसको अच्छे काम देने आरम्भ कर दिए और उसी दिन से उसको उजरत मिलने लगी। पहले दिन वह सवा रुपया कमा कर लाया और वह उसने माँ को दे दिया। माँ ने उसको आशीर्वाद दिया और पूछा, "इतने से क्या बनेगा ?"

यों तो सदानन्द भी समझता था कि इतने से उसका अपना खर्चा भी नहीं निकल सकता। परन्तु वह अपने लिखने की योग्यता बढ़ा रहा था और समझता था कि किसी दिन वह लेखक होगा और उससे लिखी किताबों की किताबत दूसरे लोग करेंगे। यह स्वप्न था और वह इसको सत्य करने पर तुला हुआ था।

सदानन्द भी प्रातःकाल का गया रात को घर आता था। वह प्रातःकाल से दोपहर तक तो किताबत करता रहता था। दो से अढाई रुपये नित्य कमा सकता था। मध्याह्नोत्तर एक बजे काम बन्द कर वह घर आ भोजन करता। एक घण्टा विश्राम करता और ठीक चार बजे वह पजाब पब्लिक लायब्रेरी में पढने जा बैठता।

साय सात बजे वह वहाँ से चल कर परिचितों की दुकानों पर, अथवा गर्मी की ऋतु में नगर के बाहर बाग में, जा बैठता और वहाँ कभी शेर पढने वाले आते तो फिर रात के दस-ग्यारह बजे तक ये मजमे चलते।

इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत हो गए। किताबत करने में सदानन्द का हाथ बहुत सुधर गया था। उसकी लिखाई की दर प्रतिपृष्ठ बढ गई थी और उसकी आय तीन-साढे तीन रुपया रोज की हो गई थी। वह नित्य माँ को दो रुपये अपने खर्चे के लिए दे देता था। सप्ताह में इसके

अतिरिक्त जो कुछ बचा पाता था, वह डाकखाने के सेविंग्स फण्ड में जमा करता जाता था।

एक रात वह शायरों की मजलिस में बहुत प्रशंसा पाकर आ रहा था। जब वह गली में घुसा तो उसका रास्ता चमेली ने रोक लिया। उस समय वहाँ घटाटोप अँधेरा था। आज गली की अन्धी लालटेन भी बुझी हुई थी। सदानन्द ने सामने किसी को खड़े रास्ता रोकते देखा तो पूछा, "कौन है?"

"चमेली।"

"चमेली? यहाँ क्या कर रही हो?"

"तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी।"

"घर जाओ। माँ ढूँढती होगी।"

"नहीं। आज माँ एक विवाह पर गई है। मोहन और मैं घर पर हैं। मोहन इस समय सो रहा है।"

"क्या काम है?"

"हमारे घर आओ। कुछ काम है।"

"यहीं बता दो न।"

"नहीं। यहाँ बताने का नहीं है।" इतना कह वह उसको घसीट कर अपने घर के नीचे के कमरे में ले गई। वहाँ पहुँच उसने कमरे का द्वार बन्द कर लिया और सरसों के तेल का दिया जला लिया। दोनों वहाँ बिछी चारपाई पर बैठ गए। सदानन्द ने पूछा, "अब जल्दी बताओ क्या काम है?"

"तुम दिन-भर कहाँ रहते हो? दस दिन से तुमसे मिलने की कोशिश कर रही हूँ।"

"क्या काम था?"

"मेरा विवाह हो रहा है।"

"सत्य? कहाँ?"

"दो-तीन दिन में सगाई होने वाली है। पश्चात् एक-दो महीने

में विवाह हो जाएगा।"

"तब तो मुझको इस प्रकार तुमसे नहीं मिलना चाहिए।"

"पर मैं विवाह नहीं कर रही।"

"क्यों?"

"मैं तुमसे ही विवाह करूँगी। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ।"

"पर यदि तुम्हारी माँ, जहाँ तुम कह रही हो, विवाह करेगी तो कैसे मना करोगी तुम?"

"मैं मकान की छत से कूद कर मर जाऊँगी।"

"कैसे मर जाओगी?"

"देखो। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ और मै सत्य कहती हूँ कि यदि वह काना बरात लेकर यहाँ आया तो मैं छत से कूद कर प्राण दे दूँगी। तुम सत्य मानो कि मैं ऐसा कर दूँगी। यदि विश्वास नहीं आता तो जाकर देख लो उस आदमी को, जो मुझसे विवाह करने आ रहा है। उसको देख कर तुमको विश्वास हो जाएगा।"

"कौन है वह?"

"शिवराम उसका नाम है। डिब्बी बाजार में सुनहरी मस्जिद के नीचे उसकी छोटी सी बिसाती की दुकान है। उसको देख कर कै आती है। मैं एक दिन मोहन को साथ लेकर गई थी। उसकी दुकान से बटन खरीद लाई थी।"

"तुमको कैसे पता चला कि वही है?"

"सोहनी ने मेरी माँ से पता किया और मुझको बता दिया। वह स्वय भी देखने गई थी।"

"अच्छा तो मैं उसको देखूँगा।"

"तो फिर कब मिलोगे?"

"एक-दो दिन में मिल कर तरकीब सोचूँगा कि क्या करूँ।"

"मैं तो तुमसे ही विवाह करूँगी।"

"पर मैं तो अभी अढाई-तीन रुपया ही रोज कमा पाता हूँ।"

"मेरा भाग्य मेरे साथ है। तुम मेरी चिन्ता क्यों करते हो?"

"देखो चमेली! विवाह बच्चों का खेल नहीं। मैं अभी अपने को विवाह के योग्य नहीं समझता। मैं कल या परसों तुमसे मिलूँगा।"

सदानन्द उसको वहीं गम्भीर विचार में निमग्न छोड़ अपने घर चला गया। वह अपने विवाह के विषय में स्पष्ट रूप से समझता था कि यह असम्भव है। उसकी माँ परमानन्द और कमला से पहले उसका विवाह नहीं करेगी। वह स्वयं अभी बहुत कम कमाता था। कमला इक्कीस वर्ष की हो रही थी। उसका विवाह पहले अवश्य होना है। पीछे परमानन्द का, जो अब उन्नीस वर्ष से ऊपर हो गया था और उसके पीछे उसका।

इसके साथ ही वह समझता था कि विवाह से उसकी सब महत्व-कांक्षाओं पर पानी फिर जाएगा। वह एक प्रसिद्ध लेखक तथा कवि बनना चाहता था। जब वह अपनी इस आकांक्षा पर विचार करने लगा तो विवाह का विचार सर्वथा अरुचिकर हो गया।

उसकी ख्याति नगर के जनसाधारण में बढ़ रही थी, परन्तु वह अपनी प्रशंसा विद्वानों के मुख से सुनना चाहता था। इसी कारण वह अनेकानेक विषयों पर लायब्रेरी में पुस्तकें पढ़ता रहता था और निरन्तर अपनी कविता लिखने में अभ्यास करता रहता था।

इस पर भी चमेली से उसके होने वाले पति को देखने का उसने वचन दिया था। इस कारण वह अगले दिन मध्याह्न को भोजन कर लायब्रेरी जाने के स्थान दरीबा बाजार जा पहुँचा। वह शिवराम की दुकान ढूँढ, उसके सामने जा खड़ा हुआ। दुकान पर एक पैंतीस-चालीस वर्ष की अधेड़ आयु का एक पुरुष बैठा हुआ था। वह एक आँख से काना था और किसी समय लकवा हो जाने के कारण उसका मुख अब भी टेढ़ा था। उसकी गालें बीच में धँसी हुईं और नाक बाहर को निकला हुआ था। दाढ़ी, जिसकी हजामत दो-तीन दिन पूर्व कभी बनाई गई प्रतीत होती थी, कहीं-कहीं सफेद प्रतीत हो रही थी। मूँछों में भी सफेद बाल

दिखाई देने लगे थे।

एक बात थी। दुकान पर ग्राहक खड़े थे और दुकान माल से भरी हुई थी। सदानन्द एक ओर खड़ा हो अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ लड़कियाँ कुछ खरीद रही थीं। जब वे चली गई तो सदानन्द ने कहा, "मुझको एक जोड़ा स्टड्ज चाहिएँ।"

दुकान मे एक नौकर भी था। शिवराम ने उसको स्टड्ज लाने के लिए कह दिया। जब वह निकाल रहा था, सदानन्द ने पूछा, "आपका नाम शिवराम है क्या?"

"हाँ, क्यो?"

"यूँ ही। आपका विवाह होने वाला है न?"

शिवराम चुप हो गया और सदानन्द का मुख देखने लगा। सदानन्द ने कहा, "बटन बढ़िया दिखाइयेगा।"

"तुम कौन हो?" शिवराम ने पूछा।

"मै चमेली का भाई हूँ।"

"उसकी माँ ने तो कहा था कि उसका एक छोटा भाई है। तुम्हारी तो मूँछे आ रही है।"

"मै उसकी बूआ का लड़का हूँ।"

"क्या करते हो?"

"मेहनत-मजदूरी करता हूँ और पेट भरता हूँ।"

"तो मै पसन्द आया हूँ या नही?"

"ठीक है। हम गरीबो के लिए आप भगवान् का अवतार है। आपकी दुकान माल से लदी हुई है।"

"क्या शरबत-पानी पियोगे?"

"नहीं। आपकी कृपा है जीजा जी!"

सदानन्द ने बटन लिये, दाम दिए और चला गया। शिवराम बहुत प्रसन्न था। उसको समझ आई कि धन बहुत बड़ी वस्तु है।

शिवराम को देख सदानन्द का दिल बैठने लगा। वह चमेली

को ऐसे पुरुष से विवाहे जाते देख, भारी दुःख अनुभव कर रहा था। उसको कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था, जिससे वह चमेली को बचा सके। इसी विचार में चलते-चलते भाटी और टकसाली दरवाजे के भीतर बाग में जा पहुँचा। वहाँ बैठा तो उसको, मन की व्यथा में, कविताएँ स्फुरित होने लगीं। बैठे-ही-बैठे उसने कई छन्द बना डाले। इन छन्दों को बना उसका मन कुछ हल्का हुआ, परन्तु अभी भी उसको कोई मार्ग सूझ नहीं सका था। वह स्वयं अभी विवाह करना नहीं चाहता था। इस कारण इस दिशा में तो उसका मस्तिष्क काम ही नहीं करता था।

आज न तो वह लायब्रेरी गया और न ही किसी मुशायरे में जाने की उसकी रुचि हुई। वह घर लौट आया। सायंकाल का समय हो रहा था। जब वह रामलाल की दुकान के सामने से निकला तो रामलाल की दृष्टि उस पर जा पड़ी। रामलाल ने उसको बुलाया, "सदानन्द! सदानन्द!"

सदानन्द उसके सामने जा खड़ा हुआ। रामलाल ने पूछा, "आज कहाँ घूम रहे हो?"

"आज लायब्रेरी नहीं गया। इस कारण खाली समय देख घर चला आया हूँ।"

"आजकल कविता नहीं होती क्या?"

"कविता तो भैया होती है और अब जीवन-भर होगी।"

"तो आज अखाड़ा लग जाए न।"

"सुनने वाले हों तो सुनाने में आनन्द आता है।"

"सुनने वाले बहुत हो जाएँगे।"

"उस दिन उस्ताद फर्मीरुद्दीन की बैठक के बाहर मुशायरा हुआ था, तो दो हजार की भीड़ एकत्रित हो गई थी।"

"यहाँ भी बहुत आ जावेंगे। अगर तुम तैयार हो, तो यहाँ दुकान के सामने दरी बिछवा देता हूँ और लोगों को कहलवा देता हूँ।"

"जैसे मन आवे करो।"

"तो बात पक्की रही। रात के नौ बजे से शुरू होगा।"

"ठीक है। मै घर जाकर खाना खा आऊँ।"

सदानन्द घर पहुँचा तो चमेली उसकी माँ के पास बैठी थी और सदानन्द को समझ आया कि वह उसकी प्रतीक्षा कर रही है। सदानन्द की माँ उसके लिए रोटी डालने चौके मे गई तो चमेली ने धीरे से पूछा, "गए थे?"

"हाँ। देख आया हूँ।"

"तो फिर?"

"मै इस कठिनाई से निकलने का मार्ग विचार कर रहा हूँ।"

"कैसे?"

"कल तक बता सकूँगा।"

"देखो सदा! मैंने निश्चय कर लिया है कि उस काने के घर जाने से पहले शमशानो मे पहुँच जाऊँगी। हम बहुत ही गरीब है। माँ के पास मेरे विवाह पर देने के लिए एक पैसा भी नही और हमसे कोई आदमी सम्बन्ध बनाना नही चाहता। तुम और तुम्हारी माँ बहुत अच्छे हो। तुम रुपया नही माँगोगे। मुझको तो तुम ही एक सहारा दिखाई देते हो।"

इतना कहते-कहते उसकी आँखे तरल हो उठी। सदानन्द की माँ को रोटी लाते देख, अपने आँसू छिपाने के लिए वह मकान से नीचे उतर गई।

माँ ने सदानन्द के सामने रोटी रखी और कहा, "तुम कभी बहन से मिलने नही गए, सदा!"

"नहीं माँ! कई इतवार से मुशायरे लगातार हो रहे है और मै उनकी तैयारी मे लगा रहा हूँ। कल जरूर जाऊँगा।"

"पमी कहता था कि घर का खर्चा दिन-प्रति-दिन बढ रहा है और तुम्हारे दो रुपये से कुछ बनता नहीं।"

"माँ! ठीक है। पर इससे अधिक मजदूरी तो नही हो सकती।"

"तुम सायकाल भी काम क्यो नही करते?"

"मैं इससे और अधिक काम नहीं कर सकता। माँ! इस काम में दिमाग तो ज्यादा खर्च नहीं होता, परन्तु आँखें और हाथ थक जाते हैं। इतना काम करने के पश्चात् लिखाई बिगड़ने लगती है।"

माँ चुप कर रही। सदानन्द ने रोटी समाप्त की और आज बाग में बनाई कविता अपनी कापी में लिख डाली। अब उसके मन में विचार आया कि इस बनाई कविता को ही बाजार में क्यों न सुना डाले। इस विचार के आने पर वह उस कविता को दुबारा पढ़ कर देखने लगा।

इस समय पौने नौ हो गये थे। सदानन्द ने माँ से कहा, "माँ! आज बाजार में मुशायरा है। मैं उसमें जा रहा हूँ।"

"आज क्या है बाजार में?"

"कुछ खास बात नहीं। रामलाल ने कहा कि कविता सुने बहुत दिन हो गए हैं। मैंने कहा आज ही सुन लो। बस उसने मजमा लगाने के लिए दरियाँ बिछा दी हैं।"

सदानन्द मकान से उतरा तो उसने देखा कि चमेली उनकी सीढ़ियों में बैठी थी। सदानन्द ने पूछा, "यहाँ क्या कर रही हो?"

"तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। और क्या होगा यहाँ?"

"क्या बात है?"

"मेरा दिल बैठा जाता है। नहीं जानती क्या करूँ? सदा भैया! अब क्या करोगे?"

"मैंने अभी कोई उपाय सोचा नहीं। कल तक बताऊँगा।"

"एक बात मैं बताऊँ?"

"हाँ बताओ।"

"हम कल यहाँ से भाग जाएँ। कुछ दिन पीछे आकर कह दें कि हमने विवाह कर लिया है।"

"यह तरीका ठीक नहीं। अच्छा अब मैं जा रहा हूँ। कल मिलूँगा और पूरी बात करूँगा।"

"ठीक है। मैं घर जाकर खाना खा आऊँ।"

सदानन्द घर पहुँचा तो चमेली उसकी माँ के पास बैठी थी और सदानन्द को समझ आया कि वह उसकी प्रतीक्षा कर रही है। सदानन्द की माँ उसके लिए रोटी डालने चौके में गई तो चमेली ने धीरे से पूछा, "गए थे?"

"हाँ। देख आया हूँ।"

"तो फिर?"

"मैं इस कठिनाई से निकलने का मार्ग विचार कर रहा हूँ।"

"कैसे?"

"कल तक बता सकूँगा।"

"देखो सदा! मैंने निश्चय कर लिया है कि उस काने के घर जाने से पहले शमशानों में पहुँच जाऊँगी। हम बहुत ही गरीब हैं। माँ के पास मेरे विवाह पर देने के लिए एक पैसा भी नहीं और हमसे कोई आदमी सम्बन्ध बनाना नहीं चाहता। तुम और तुम्हारी माँ बहुत अच्छे हो। तुम रुपया नहीं माँगोगे। मुझको तो तुम ही एक सहारा दिखाई देते हो।"

इतना कहते-कहते उसकी आँखें तरल हो उठीं। सदानन्द की माँ को रोटी लाते देख, अपने आँसू छिपाने के लिए वह मकान से नीचे उतर गई।

माँ ने सदानन्द के सामने रोटी रखी और कहा, "तुम कभी बहन से मिलने नहीं गए, सदा!"

"नहीं माँ! कई इतवार से मुशायरे लगातार हो रहे हैं और मैं उनकी तैयारी मे लगा रहा हूँ। कल जरूर जाऊँगा।"

"पमी कहता था कि घर का खर्चा दिन-प्रति-दिन बढ रहा है और तुम्हारे दो रुपये से कुछ बनता नहीं।"

"माँ! ठीक है। पर इससे अधिक मजदूरी तो नहीं हो सकती।"

"तुम सायंकाल भी काम क्यों नहीं करते?"

"मैं इससे और अधिक काम नहीं कर सकता। माँ! इस काम में दिमाग तो ज्यादा खर्च नहीं होता, परन्तु आँखें और हाथ थक जाते हैं। इतना काम करने के पश्चात् लिखाई बिगड़ने लगती है।"

माँ चुप कर रही। सदानन्द ने रोटी समाप्त की और आज बाग में बनाई कविता अपनी कापी में लिख डाली। अब उसके मन में विचार आया कि इस बनाई कविता को ही बाजार में क्या न सुना डाले। इस विचार के आने पर वह उस कविता को दुबारा पढ़ कर देखने लगा।

इस समय पौने नौ हो गये थे। सदानन्द ने माँ से कहा, "माँ! आज बाजार में मुशायरा है। मैं उसमें जा रहा हूँ।"

"आज क्या है बाजार में?"

"कुछ खास बात नहीं। रामलाल ने कहा कि कविता सुने बहुत दिन हो गए हैं। मैंने कहा आज ही सुन लो। बस उसने मजमा लगाने के लिए दरियाँ बिछा दी हैं।"

सदानन्द मकान से उतरा तो उसने देखा कि चमेली उनकी सीढ़ियों में बैठी थी। सदानन्द ने पूछा, "यहाँ क्या कर रही हो?"

"तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। और क्या होगा यहाँ?"

"क्या बात है?"

"मेरा दिल बैठा जाता है। नहीं जानती क्या करूँ? सदा भैया! अब क्या करोगे?"

"मैंने अभी कोई उपाय सोचा नहीं। कल तक बताऊँगा।"

"एक बात मैं बताऊँ?"

"हाँ बताओ।"

"हम कल यहाँ से भाग जाएँ। कुछ दिन पीछे आकर कह दें कि हमने विवाह कर लिया है।"

"यह तरीका ठीक नहीं। अच्छा अब मैं जा रहा हूँ। कल मिलूँगा और पूरी बात करूँगा।"

सदानन्द बाजार में पहुँचा तो लोग एकत्रित होने लग गये थे। सदानन्द आया तो उसके मित्र उसको घेर कर खड़े हो गए। एक ने कहा, "सदानन्द ! कहाँ रहते हो आजकल ?"

"भाई ! अब मैं काम करने लगा हूँ। सवेरे तो काम पर चला जाता हूँ। रात बहुत देर से आता हूँ।"

"क्या काम करने लगे हो ?" एक और ने पूछा।

"कोई खास काम नहीं। बहुत मुश्किल से रोटी मिलती है।"

"मैंने तुम्हें बैत कहते छः महीने से नहीं सुना। आज सारी कसर निकाल लेंगे।"

रामलाल ने मुहल्ले में और आसपास की गलियों के रहने वालों को कहला भेजा था। बाजार के दुकानदारों से उनकी दुकान की बैंचें मँगवा ली थीं। कहीं से कुर्सी और कहीं से स्टूल। इस प्रकार लोगों के बैठने के लिए अच्छा-खासा स्थान बन गया था। साथ ही जगह-जगह यह घोषणा हो गई थी कि सदानन्द की कविता होगी। एक सहस्र से ऊपर लोग एकत्रित हो चुके थे। जब सदानन्द मञ्च पर आया तो कवि-दरबार आरम्भ हो गया।

अब सदानन्द को इस प्रकार कविता कहते हुए तीन वर्ष से ऊपर हो चुके थे। वह बच्चों की-सी शर्म और सकोच उसमें अब नहीं रहा था। साथ ही उसे इस बात का भरोसा था कि लोग उसकी कविता को और उसके कहने के ढग को पसन्द करते हैं। आत्मविश्वास और जीवन में उन्नति करने के उत्साह से भरा हुआ, वह मञ्च पर आया तो विश्वास के साथ अपने स्वभावानुकूल सरस्वती की आराधना में उसने एक कविता कही। पश्चात् उसने अपनी कविता आरम्भ कर दी। उसने गाया—

'धर्म देश दे प्रेम दे लई जिसने
छुड दित्ता सी रच दी राह नूं वी
ओस वीर दे मैं की गुण गावा
जो ललकारे दिल्ली दे शाह नू वी।

मुगल तुर्क पठान दे ज़ुल्म नूं देख
तड़पी रूह सी वीर वैरागी दी।
भगवा बाना छड विच मैदान आया
ध्वजा पकड़ लई शाही बागी दी।
पकड़-पकड़ निहत्थे बंदेयां नूँ
ज़ालिम मस्जिद विच लैंजांदे सन
आखन लाओ ईमान इस्लाम उत्ते
नहीं ता जांन कुर्बान करांदे सन।
ज़ोर ज़ुल्म दा सी अबला औरता ते
जबरन धर्म तो पतित करांदे सन
रामदेई तां रज़िया बना के ते
तरक्की इस्लाम दी ओ मनान्दे सन।
ओवों खून उतरिया धर्म दे प्यारिया नूं
देख ज़ुल्म जात हिन्दुवानी ते
वारी जान वैरागी वीर अपनी
हम देयां हिन्दुओं दी नादानी ते।

सुनने वालों के माथों पर त्योरियाँ चढ़ गईं। क्रोध में नासिकाएँ फूलने लगीं। जोश में भुजदण्ड फड़कने लगे और ज्यूँ-ज्यूँ कविता का रंग जमता गया, सुनने वालों के सिर में खुमारी चढ़ने लगी।

एक-घण्टा भर कविता कहने के पश्चात् रामलाल ने सदानन्द को दूध पिलाया। उसने कुछ विश्राम किया और पश्चात् फिर कविता सुनाने लगा।

उसने एक हिन्दी में गीत गाया—

मैं पीकर नहीं आया
बिना पिये मस्ताना हूँ देख देख तेरी माया। मैं·····।
मोर मुकुट अरु पीत वसन युगल नयन की छवि देख
सदा मस्ती में मस्त हुआ, यहाँ झूमता हूँ आया। मैं पीकर··।

जग के रेणु-रेणु में चमत्कार तेरा देखा
पल में राजा पल में रक सब में तेरी है छाया। मैं पीकर ।
कहीं महल अटारी देखी देखी झोंपड़ी नंगी
च्यूटि देखी हाथी देखा देख-देख मैं घबराया। मैं पीकर ।

इसके पश्चात् फिर पंजाबी में कविता होने लगी। सबसे अन्त में सदानन्द ने अपनी उस दिन की चमेली के विषय में बनाई कविता सुना दी—

देखो यारो इक अजीब किस्सा हो रिहा ऐस बाजार अन्दर
इक भोली गऊ दी बछड़ी नू लगे देन छुरी दी धार अन्दर
बे ज़बान ओ कुछ कैन्दी नईं शरम सार रही परिवार अन्दर
जे प्यार दे नाल पालिया सी, क्यों देंदे न हुन कटार अन्दर

इक राम ते शिव दा नाम धारी अखों काना ते उल्लू दी जात वाला
चिट्टी दाढ़ी ते आटा खराब है सी ओ करदाए कम बसात वाला।
चलदिया रखे जी हथ कमर उत्ते कहे मैं हा धन औकात वाला
ओ आरिहा ए गुलिस्तान अन्दर हथ लाठी ते झूलदी गात वाला॥

साडे सोने गुलिस्तान दे विच कलिया विच कलि चमेली सी
फुली पट जेई गोरी दुध जेई चलदिया लगदी अलबेली सी
जिदी महक दे नाल जहान महके ऐसी सोनी ओ नवल नवेली सी
कली उखाड़न ओ जल्लाद आया हुन ता रब ही ओसदा बेली सी॥

ज़ार ज़ार रोन्दी कील किस्मत नूं किथे माँ ने ओसनू ढोया ए
होन्दा बावल जे जहान अन्दर रोना पैन्दा न जो रोया ए
वड्डा वीर वी ओम दा जे होंदा देख दुख न रैणन्दा सोया ए
किस्मत खोटी मिलिया ओस नू जी न मुराद मुर्दार ते मोया ए॥

न भैन भाई सगा है कोई किस्मत ओस दी ऐसी मिज गई ए
मारे शर्म कुछ कह सकदी नहीं विचों विच ओ तां रिज गई ए
कलि देव जल्लाद दिया छुरिया नूं नाल डर दे कंबदी गिज गई ए
रो रो असां बेहाल होईया आंसुआं नाल अगिया भिज गई ए ॥

क्यो शर्म दे नाल डुब न मरिए बाग माडे विच ए चोर आया
सोनी कलियाँ नूं उखाड़ के ले देन मसल ओह शह ज़ोर आया
कोई रब दा भय जे खान वाला माली बाग दा जे होड आया
समझो बच गई कली चमेली ए जे साजन ओस दा जोड आया ॥

यह अन्तिम कविता थी, जो उसने उस दिन सुनाई। पश्चात् वह बैठ गया। लोग इस कविता को सुन एक-दूसरे का मुख देखने लगे। किसी ने पूछा, "कौन है यह ?"

"इस गली में एक विधवा रहती है। उसकी लड़की है।"

"और यह विराम कौन है ?"

"वही। सुनहरी मस्जिद के नीचे दूकान करता है।"

"बहुत बुरा हो रहा है।"

"कौन मना करे, उसकी माँ को ?"

"कोई और वर भी तो मिले। वह बेचारी क्या करे ?"

कार्यक्रम समाप्त हुआ और चमेली की चर्चा घर-घर में होने लगी। अगले दिन चमेली की माँ से मुहल्ले की औरतें पूछगीछ करने लगीं। इन सब में रामलाल की माँ भी थी। उसने चमेली की माँ से पूछ लिया, "क्या लिया है तुमने लड़की को उस काने को देने के लिए ?"

"क्या समझती हो तुम मुझको ? रामलाल की माँ ! क्या हुआ जो मैं विधवा हूँ। अभी इतनी पतित नहीं हुई कि लड़की के घर का खाने लगूँ ?"

"और इतने बड़े नगर में कोई लड़का नहीं मिला तुमको ?"

"तो तुम ही बता दो न। एक बार रामलाल के लिए तो तुमने

कहा था। याद है क्या उत्तर दिया था तुमने ? तुम दो हजार नकद माँगती थी। मेरे पास इतना कुछ है कहाँ ?"

"देखो बहन !" रामलाल की माँ ने कहा, "रामलाल को उसके स्वसुर ने पाँच हजार दिया है। मैने तो तुमसे दो हजार ही माँगा था। मै तो कहती हूँ कि किसी गरीब घर का लडका, जो लँगडा-लुला न हो, ठीक नही क्या ? गरीब गरीबो के साथ सम्बन्ध क्यो नही करते ?"

"कोई गरीब ही दिखाई दे, तब न ?"

"है तो। यह पडोस मे परमानन्द जो है। क्या खराबी है उसमे ?"

चमेली की माँ को पडोस का ध्यान तक नही आया था। इस पर भी अब वह सोचती थी कि वे इतने बहन-भाई हैं, किस-किस की सेवा करेगी लडकी ? फिर परमानन्द अब काफी कमाने लग गया था और उसकी माँ भी कुछ-न-कुछ माँगेगी ही। उसने रामलाल की माँ से पूछा, "लक्ष्मी मानेगी क्या ?"

'मानेगी क्यो नही ? कोशिश तो करो। घर मे दस बच्चो मे से आठ लडके है। कमा कर लाने लगेगे तो लक्ष्मी बरस पडेगी। दो तो कमाने ही लगे है। अगले वर्ष देवानन्द भी तैयार हो जाएगा। सौ-पचास तो लाएगा ही।"

चमेली की माँ समझती थी कि घर मे लडके होने से क्या लाभ है। वह अपने ही घर की बात सोचती थी। यदि चमेली का बडा भाई कोई होता तो अब वह कमाने लगता और चमेली के विवाह मे कठि-नाई न होती।

परन्तु वह शिवराम को वचन दे चुकी थी। किस प्रकार यह बात समाप्त की जाए। वह गम्भीर विचार मे पड गई। उसे चुप विचार-मग्न देख रामलाल की माँ उसकी कठिनाई समझ गई। उसने सुझाव उपस्थित कर दिया, "चमेली की माँ ! कल रात सदानन्द ने चमेली के दु:ख की कविता बाजार मे गाई थी और अब घर-घर मे तुम्हारी निन्दा हो रही है। मेरा कहा मानो यह रिश्ता तोड दो और मै परमानन्द की माँ से

बात तय करती हूँ। बताओ! करूँ बात?"

"मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है।"

"देने-लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। लक्ष्मी बड़ी अच्छी है।"

"तो करो।"

परमानन्द भी सदानन्द की कविता सुनने गया था। उसने भी चमेली के विषय में कविता सुनी थी। उसको सदानन्द की यह कविता पसन्द नहीं आई थी। रात को तो वह कुछ कह नहीं सका था। दोनों भाई थके हुए थे, इस कारण घर पहुँचते ही सो गए। प्रातः दोनों स्नानादि से छुट्टी पा जब चौके में खाने बैठे तो परमानन्द ने बात चला दी, "सदा! तुम दूसरों की आग में हाथ डाल रहे हो। इससे कुछ लाभ नहीं हो सकता।"

"क्या किया है मैंने भैया?"

"तुमने चमेली की कविता सुनाई थी। वह बहुत ही गन्दी थी। लोग तो झगड़े की बात पसन्द करते हैं, परन्तु वे नहीं जानते कि तुम पर क्या आफत आ सकती है।"

"क्या आफत आ सकती है?"

"शिवराम तुम पर हतक-इज्जत का दावा कर सकता है।"

"क्या ले लेगा मुझसे? मेरे पास हर्जाना देने को रखा ही क्या है?"

"पर मैं पूछता हूँ कि इससे लाभ ही क्या होगा?"

"चमेली का विवाह रुक सकता है?"

"कौन रोकेगा और फिर कौन करेगा उससे विवाह?"

"भैया! तुम कानून की बात करते हो। मैं भगवान की बात करता हूँ। जनता जनार्दन का रूप है। मैंने उस तक फरियाद पहुँचा दी है। अब यह भगवान् का काम है कि जनता में किसी को प्रेरणा दे। वे

किसको यह काम सौंपेंगे, मैं कैसे कह सकता हूँ ?''

''कैसी बेकार की बातें करते हो ? अब तुम्हारे कहने पर भगवान् चमेली का विवाह करने आएगा ?''

''भैया ! हमारा कुछ बिगडेगा नहीं। भगवान् नहीं करेगा तो जो अवस्था अब है, उससे खराब नहीं होगी।'

''तुम बदनाम हो जाओगे। लोग लडकियों की बात करने वाले को अच्छा नहीं समझते। मुझको भय है कि चमेली का भला तो होगा नहीं। तुमको लोग गुण्डा-शोदा समझने लगेंगे। फिर उसकी माँ ने सुन लिया कि तुमने उसकी लडकी को कहा है, 'कूली पट जई, गोरी दुध जई', तो वह माँ से आकर लड़ेगी।''

सदानन्द हँस पडा। उसने कहा, ''भैया ! मैंने झूठ तो कुछ कहा नहीं।''

''कैसी गधों जैसी बातें करते हो तुम ? मैं झूठ सत्य की बात नहीं कर रहा। किसी लड़की को गोरी सुन्दर कहना हिन्दुओं में ठीक नहीं माना जाता।''

अल्पाहार समाप्त हो गया और अब दोनों को अपने-अपने काम पर जाने की जल्दी थी। इससे बातें आगे नहीं चल सकीं।

सदानन्द दिन के डेढ बजे किताबत के काम से छुट्टी पाकर घर आया। उस समय रामलाल की माँ लक्ष्मी के पास बैठी बातें कर रही थी। उसने समझा कि वह भी उसकी निन्दा करने आई है। परन्तु लक्ष्मी प्रसन्नवदन थी। इस कारण सदानन्द को अपनी धारणा पर सन्देह हो गया।

रामलाल की माँ ने सदानन्द को देखते हुए कहा, ''लो सदा ! तुम्हारी रात की कविता ने तुमको भाभी ले दी है।''

''क्या है ताई !'' सदानन्द उसके कहने का अर्थ न समझते हुए पूछने लगा। माँ ने सदानन्द को समीप बुलाकर बैठा लिया और कहा, ''सुनो ! रामलाल की माँ क्या कहने आई है।''

"क्या कहने आई है ?"

"कहती है, चमेली की माँ शिवराम से रिश्ता तोड़कर परमानन्द से उसका विवाह करने को तैयार है।"

"और तुमने क्या कहा है ?"

"घर में आ रही लक्ष्मी को कौन दुत्कार सकता है ? मैंने मान लिया है।"

"और भैया से पूछा है तुमने ?"

"भला ऐसा भी कोई करता है। लड़के-लड़की से पूछा नहीं जाता।"

"मैं समझता हूँ कि भैया नहीं मानेंगे।"

"क्यों ?"

"चमेली चुड़ैल से भला कौन विवाह करेगा ?"

"चुप।" लक्ष्मी ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "देखो सदा ! मैंने यह विवाह स्वीकार कर लिया है। चमेली तुम्हारी बड़ी भाभी बनने वाली है। अब बचपन की बात छोड़, उसका आदर करना सीखो।"

रामलाल की माँ सदानन्द के मुख से चुड़ैल शब्द सुन हँस पड़ी। उसने कहा, "सदा ! जानते हो बच्चे घर-घर में क्या गा रहे हैं ?"

"क्या गा रहे हैं ताई ?"

"गा रहे हैं—

फूली पट जेई गोरी दुध जेई
चलदियाँ लगदी अलबेली ए
जिदी महक दे नाल जहान महके
ऐसी सोनी श्रो नवल नवेली ए।"

रामलाल की माँ के मुख से चमेली के विषय की यह कविता सुन, लक्ष्मी का मुँह लज्जा से लाल हो गया। वह अभी से उसको पतोहू समझने लगी थी और उसके विषय में बच्चों को गीत गाते सुन चुप कर गई। सदानन्द आँखें नीची किए बैठा रहा। इस पर रामलाल

की माँ ने पूछा, "ऐसी नवल नवेली को परमानन्द पसन्द नहीं करेगा क्या ?"

सदानन्द ने बात बदलने के लिए कह दिया, "माँ ! रोटी दो मुझको। मैंने काम पर जाना है।"

इस पर रामलाल की माँ ने कह दिया, "ठहरो सदा ! हमने यह निश्चय किया है कि कल सायकाल हमारे घर के नीचे के दालान में तुम्हारे भाई और चमेली का विवाह होगा।

"चमेली की माँ कुछ नहीं देगी। रामलाल विवाह का खर्चा करेगा और मैं चमेली के लिए हाथ की चूड़ी और नाक की कील दूँगी।"

सदानन्द का इस ओर ध्यान नहीं था। वह मन-ही-मन अपने प्रयत्न की सफलता पर प्रसन्न हो रहा था। यद्यपि चमेली उससे विवाह करना चाहती थी, परन्तु परमानन्द उसका भाई ही है। वह समझता था कि काम बन गया है। चमेली को कुछ समझाने की आवश्यकता पड़ेगी और वह समझ जावेगी।

रामलाल की माँ ने लक्ष्मी से सब तय कर लिया था। इस कारण उसने उठते हुए कहा, "तो अब मैं चलती हूँ। सब ठीक है न ?"

"हाँ ठीक है बहन !"

जब वह चली गई तो लक्ष्मी ने चौके में से रोटी लाकर सदानन्द के सामने रखते हुए कहा, "देखो सदा ! चमेली बहुत ही सुशील लड़की है। अच्छी प्रकार देखी-भाली है। ऐसा सम्बन्ध फिर मिलेगा नहीं। हमको भी कुछ खर्च करना नहीं पड़ेगा। जैसे हम गरीब हैं, वैसे ही चमेली की माँ है। मेरा मन तो खुशी से नाच रहा है और मैं जानती हूँ कि परमानन्द भी न नहीं करेगा।"

"माँ ! मैं तो हँसी कर रहा था। चमेली भाभी पसन्द है। पर उसको लाकर रखोगी कहाँ ?"

"नीचे का कमरा आज ही खाली कर साफ करवा देती हूँ। जब

तक कोई बड़ा मकान नहीं ले लेते, तब तक परमानन्द को उसी में निर्वाह करना पड़ेगा।"

"ठीक है। अब हमको क्या करना चाहिए।"

"तुम जाओ। परमानन्द को सब बात बताकर ले आओ। हमको कुछ भूषण लेने जाना है और बहू के लिए एक सूट भी सिलवाना है।"

भोजन कर सदानन्द आज फिर लायब्रेरी नहीं गया। वह पाँच बजे कॅबरमेन की कोठी पर जा पहुँचा। परमानन्द टाईप कर रहा था। वकील साहब ने एक फैसले की तीन नकलें करने को दी थीं। फैसला पचास फुलस्केप के कागजों पर था। परमानन्द का विचार था कि रात के नौ बजे तक वह यह कार्य समाप्त कर सकेगा। इस कारण जब सदानन्द आया और उसने कहा, "भैया! माँ बुलाती है।" तो उसने पूछा, "क्या काम है माँ को?"

"बहुत जरूरी काम है।"

"क्या हो गया है तुमको? माँ से जाकर कह दो कि मैं एक आवश्यक काम में लगा हूँ। रात के दस बजे से पहले नहीं आ सकता।"

"भैया! बात यह है कि माँ ने तुम्हारा विवाह रचा दिया है।"

"शट अप।" परमानन्द ने सदानन्द को डाँटते हुए कहा, "यह हँसी की बात नहीं।"

"हँसी नहीं कर रहा भैया! रामलाल की माँ ने फैसला किया है कि तुम्हारा चमेली से विवाह होगा। माँ कहती है कि भाभी के लिए दो भूषण और कपड़े खरीदने हैं।"

परमानन्द के माथे पर से त्योरी उतर गई। वह गम्भीर विचार में पड़ गया। कुछ देर विचार करने के पश्चात् उसने पूछा, "सदानन्द! बताओ क्या हुआ है? कैसे हुआ है?"

"मुझको पता नहीं। मैं एक बजे घर खाना खाने गया तो रामलाल की माँ बता रही थी। उसने ही मुझको यह समाचार दिया है। मैं तो समझता हूँ कि भगवान् ने अपने कार्यसिद्धि के लिए तुम्हें

चुनकर साधन बनाया है।"

"अच्छा माँ से जाकर कह दो कि मेरे रुपयों में से, जितने आवश्यक हों निकाल ले और जो कुछ भी लाना है ले आये।"

"धन्य हो भैया!" सदानन्द ने मुस्कराते हुए कहा, "भगवान् ने फरियाद सुन ली है।"

"हटो। अब हँसी करने लगे हो। जाओ काम करने दो।"

सदानन्द घर पहुँचा तो माँ घर पर नहीं थी। उसने रमा से पूछा, "माँ कहाँ है?"

"चमेली की माँ से मिलने गई हैं।"

"जाओ माँ को बुला लाओ। कहो सदानन्द नीचे प्रतीक्षा कर रहा है।"

रमा भागती हुई गई और उसके पीछे-पीछे सदानन्द भी चला गया और चमेली के मकान के नीचे प्रतीक्षा करने लगा। इस समय ऊपर की खिड़की की चिक हटी और चमेली ने नीचे देखा। चमेली का मुख प्रसन्नता से खिल रहा था। जब सदानन्द ने उसको देखा तो चमेली ने हाथों में मेंहदी लगी दिखाई। सदानन्द को यह समझ आया कि वह अपने मन की प्रसन्नता प्रकट कर रही है।

उसने देखा था कि परमानन्द इस विवाह से प्रसन्न है। उसने यह भी देखा कि चमेली भी प्रसन्न है। इससे वह भी इस प्रबन्ध के होने मे अपने भाग को स्मरण कर अति प्रसन्न हुआ। उसके मन से एक बोझा उतर गया।

लक्ष्मी ने नीचे आकर यह बताया कि वह चमेली के कपड़ों का नाप लेने गई थी। सदानन्द ने माँ को बताया कि परमानन्द बहुत प्रसन्न है और उसने कहा है कि उसके रुपयों में से निकाल कर व्यय किया जा सकता है। इस पर लक्ष्मी ने कहा, "मैं कहती थी न कि परमानन्द चमेली को पसन्द करेगा।"

परमानन्द विवाह की खुशी में काम नहीं कर सका। उसने काम

अधूरा ही छोड़ दिया और घर आ भाई-बहनों को साथ ले, उनके लिए नये जूते, टोपियाँ और कपड़े सिलवाने के लिए बाजार चला गया। कपड़े दर्जी को बनाने के लिए दे दिए और सब के लिए जूते और टोपियाँ ले वह घर पहुँच गया।

माँ चमेली के लिए कपड़े और भूषण ले आई थी। बस विवाह का आरम्भ कर दिया गया।

उसी रात परमानन्द, सदानन्द और अन्य बच्चों ने मिलकर नीचे का कमरा साफ कर दिया। अगले दिन उसमें सफेदी कराकर, उसमें आग जला दी गई, जिससे वह कमरा रहने योग्य हो सके।

उस दिन सदानन्द और परमानन्द काम पर नहीं गए। दिन-भर प्रबन्ध में लगे रहे। मित्रों को निमन्त्रण देने, हलवाई से मिठाई आदि बनवाने और दर्जी से कपड़े लाने में ही समय व्यतीत हो गया।

रामलाल का मकान काफी बड़ा था। उसके मकान के नीचे एक आँगन था। उसमें विवाह का प्रबन्ध किया गया था। मुहल्ले के सब लोग एकत्रित हो गए। सदानन्द की कविता ने सब के मन में इस विवाह के लिए रुचि उत्पन्न कर दी थी और सब सदानन्द को बधाई दे रहे थे। सबका विचार था कि छोटे भाई ने बड़े को बहू ला दी है।

जब विवाह समाप्त हुआ तो लड़की की विदाई उसी समय हो गई। चमेली, लक्ष्मी, परमानन्द, सदानन्द और लक्ष्मी के सब लड़के-लड़कियाँ मकान के नीचे के कमरे में एकत्रित हो गए। कमला, कंवरसेन और सरोजिनी भी विवाह पर आये हुए थे। वे भी उस कमरे में आ गए। सरोजिनी ने परमानन्द की स्त्री को भूषणों का सेट और रेशमी सूट दिया। जब सब बैठ गए तो सदानन्द ने कहा, "माँ! एक बात तुरन्त कर दो।"

"क्या?"

"भाभी का नाम बदल दो।"

"क्यों?"

"सब लडकियों का नाम ससुराल मे बदल दिया जाता है।"

इस पर सरोजिनी ने पूछा, "क्या नाम है इसका ?"

एक बच्चे ने कह दिया, "चमेली भाभी।"

इस पर चमेली ने अपनी सास के कान में कहा, "मेरा नाम न बदला जाय।"

"क्यों ?" लक्ष्मी ने पूछा।

उसने पुन. कान में कहा, "मैं अपना बचपन भूलना नहीं चाहती !"

परमानन्द ने सुन लिया और कहा, "ओह ! तो क्या अब भी मुझको पमी भैया कहोगी ?"

सब हँसने लगे। इस पर सरोजिनी ने चमेली के सिर पर हाथ फेर प्यार देते हुए कहा, "चमेली नाम तो सुन्दर है, पर यह बाजारू-सा है। तुम तो घर की लक्ष्मी बनोगी न ?"

इस बात ने निर्णय कर दिया और चमेली का नाम बदलकर पुष्पावती रख दिया गया।

विवाह के पश्चात् बातों-बातों में रात बहुत चली गई थी। जब सरोजिनी और कँवरसेन चले गए तो लक्ष्मी ने बच्चों को ऊपर के बड़े कमरे में जाकर सो जाने के लिए कह दिया। जब सब सोने चले गए तो उसने बहू के लिए वहाँ एक बिस्तर लगा दिया और उसको एक ओर ले जाकर कहा, "देखो बेटी ! बहुत प्यार से रहना। पहली रात ही झगडा किया तो पूर्ण जीवन-भर पश्चात्ताप करती रहोगी।"

पश्चात् लक्ष्मी ने प्यार दिया और पुत्र तथा पुत्रवधू को वहाँ छोड चली गई। सास के चले जाने के पश्चात् चमेली वहाँ ही खड़ी रह गई, जहाँ लक्ष्मी उसको प्यार दे रही थी। परमानन्द ने अपने विवाह

के कपडे उतार धोती-कुर्ता पहन लिया। उसकी पत्नी अभी भी वहीं खड़ी थी। परमानन्द सोने के लिए तैयार हो पलंग पर, जो वह उसी दिन चालीस रुपये का खरीदकर लाया था, लेट गया। उसकी स्त्री अभी भी खड़ी थी। इस पर परमानन्द ने कहा, "सोना नहीं है रानी ?"

"कपड़े कैसे उतारूँ ?"

'क्यों ?'

"लैम्प बुझा दें या आप कमरे से बाहर हो जायें।"

"ओह... "।

"हाँ मुझको लज्जा लगती है।"

"तो मैं मुख मोड़ लेता हूँ।"

"पर बीच में इधर देख लिया तो ?"

"तो तुम पलंग के नीचे घुस जाना।

"अच्छा। तो मुख दीवार की ओर कर लीजिए।"

परमानन्द ने मुख उस ओर किया तो वह वस्त्र उतारने लगी। परमानन्द के कान उस ओर ही लगे थे और जब उसको यह अनुमान हुआ कि वह वस्त्र उतार चुकी है तो उसने मुख उसकी ओर कर कहा, "बहुत देरी कर रही हो ?"

उसकी स्त्री ने उसको इस प्रकार एकाएक घूमते देखा, तो चीख मारकर वहीं ही बैठ गई और फिर रेंगकर पलंग के नीचे घुस गई। वहाँ पहुँच कहने लगी, "इतने बड़े वकील के मुन्शी होकर भी झूठ बोलते हो जी ! लैम्प बुझाओ तो बाहर निकलूँगी।"

"कपड़े तो उतर चुके। लज्जा समाप्त हो गई। अब तो आ जाओ।"

"कैसे ?" उसने पलंग के नीचे से कहा, "अब तो आपका विश्वास नहीं रहा। लैम्प बुझा दीजिए। तब ही बाहर निकलूँगी।"

"विश्वास नहीं रहा न ? तो लो।" इतना कह परमानन्द ने उठ

कर उसके उतरे हुए कपड़े उठाकर पलग के ऊपर अपने पास रख लिये। वहाँ बैठकर बोला, "अब तो ठीक है न। बताओ अब तुम पलग पर आती हो या मैं पलग के नीचे आऊँ।"

"आप तो कृष्ण जी से भी अधिक क्रूर हैं। उन्होंने सखियों की निर्लज्जता पर उनको दण्ड दिया था और आप मुझको मेरे लज्जा करने पर दण्ड दे रहे हैं।"

"इस कारण कि तुम ग्वालिन् नहीं हो। एक ब्राह्मण की लड़की होने से तुम्हारे लिए विधान भिन्न होना चाहिए।"

"तो ग्वालिन् न होकर ब्राह्मण की लडकी होना अपराध हो गया क्या ?"

"नहीं, यह बात नहीं। ग्वालिनों को तो भगवान् ने प्यार नहीं किया था। ऐसे ही उनको छोड दिया था। परन्तु यहाँ तो साक्षात् परमानन्द तुमसे प्यार करने के लिए व्याकुल बैठा है।"

"मैं यह कुछ नहीं जानती। आप मुख दीवार की ओर करलें तब ही मैं आ सकती हूँ।"

"अच्छा बाबा लो। आखिर में बीवी की बात माननी ही पड़ती है। सब पुरुषों का ही यह हाल है, तो मेरा भी सही। लो मैंने मुख दीवार की ओर कर लिया।"

चमेली ने थोडा मुख पलग से बाहर निकाल कर, ऊपर को झाँका और परमानन्द को वास्तव में मुख दीवार की ओर किए बैठा देख बोली, "अब लेट जाइये।"

परमानन्द लेट गया।

'ऊपर रजाई ओढ लीजिये।"

परमानन्द ने वैसा ही किया। इस पर फिर उसने कहा, "यदि फिर मुख इधर किया तो मैं पलग के नीचे सर्दी में ठिठुर-ठिठुर कर मर जाऊँगी।"

"नहीं बाबा! मरे तेरी बला। अब पुन वैसा अपराध नहीं

करूँगा।"

एक क्षण में चमेली रजाई में घुस गई।

सदानन्द इस विवाह से बहुत प्रसन्न था। चमेली का शिवराम से छुटकारा हुआ और पमी भैया का विवाह हो गया। अब वह शान्त चित्त से अपने कार्य में लग जाना चाहता था। इसके लिए उसको अपनी आय बढ़ाने की भी चिन्ता थी। वह जानता था कि परमानन्द ने अपने विवाह पर भूषणों और कपड़ों के लिए एक सहस्र रुपये से ऊपर व्यय किया था। उसका सेविंग बैंक में अभी तक दो-सौ रुपया ही जमा हो सका था। वह विचार करता था कि उसको भी परमानन्द की भाँति रुपया एकत्रित करना चाहिए। कैसे वह अपनी आय बढ़ा सकेगा, वह यह सोचता हुआ बहुत रात गई तक जागता रहा।

अगले दिन जहाँ परमानन्द और चमेली देरी तक सोते रहे थे, वहाँ सदानन्द भी दिन निकले तक सो रहा था। माँ ने जब देखा कि परमानन्द अभी नहीं आया तो उसने बच्चों को नीचे जाकर कमरे का दरवाजा खटखटाने के लिए कहा। स्वयं वह सदानन्द को जगाने लगी। उसने सदानन्द के ऊपर से रजाई उतार कर कहा, "आज काम पर नहीं जाना है क्या?"

'ओह! दिन चढ़ गया है माँ?" वह उठकर शौचादि से निवृत्त हो, कपड़े पहन अल्पाहार के लिए तैयार हो गया। रात माँ ने पूरी शाक भाजी और हलुवा बाजार से मँगवाया था। उनमें से बहुत कुछ बचा हुआ था। वही गरम कर इस समय भी खाया गया। सदानन्द पूरी चबाते-चबाते रात के विचारस्तत्र पुन. खोल बैठा।

इसी प्रकार के विचारों में निमग्न वह घर से नीचे उतरा। जब वह नीचे की मंजिल पर पहुँचा तो परमानन्द शौचादि के लिए गया

हुआ था। चमेली कपड़े पहन, गम्भीर विचार मे पलग पर बैठी थी। सदानन्द ड्योढ़ी में पहुँचा तो चमेली ने उसको देखा और बुला लिया, "सदा भैया!"

सदानन्द ने उसको अकेले बैठे देख, कमरे मे जाकर पूछा, "हाँ क्या कहती हो भाभी?"

"कहती हूँ तुम्हारा सिर। यह तुमने क्या कर दिया है?"

सदानन्द को इसका अर्थ समझ नहीं आया। इस कारण उसने पूछा, "क्या कर दिया है?"

"अपने पलग पर बिठाने के स्थान किसी दूसरे के पलग पर बिठा दिया है।"

"तो बुराई क्या हुई है? क्या जिसके पलग पर बैठी हो, वह मुझसे अच्छा नहीं है?"

चमेली ने उत्तर नहीं दिया। सदानन्द ने उसको चुप देख उसके मुख की ओर देखा। उसकी मोटी-मोटी आँखों में आँसू भरे देख उसे आश्चर्य हुआ। उसने पीछे घूमकर देखा कि उनकी बातें कोई सुन तो नहीं रहा। इस पर उसने कहा, "क्या हुआ है भाभी? क्या भैया ने प्यार नहीं किया?"

"पर मैं तो तुमसे विवाह करना चाहती थी। जब तुम्हारी माँ परसों आई तो मैं समझी कि तुम्हारे विषय में बातचीत करने आई हैं। मैं इसी भ्रम मे रही। कल रात जब तुम्हारे भैया आकर वेदी पर बैठे, तो मैं अवाक् रह गई। एक बार तो विचार आया कि हवन की आग में अपनी आहुति दे दूँ। परन्तु मुझको विश्वास था कि मैं हत्या न कर सकती। मेरी आग बुझा दी जाती और मैं मूर्ख बन रह जाती।"

"भैया प्रत्येक बात में मुझसे श्रेष्ठ हैं। तुम उनमें दोष नहीं निकाल सकतीं।"

"ठीक है। पर मैं तो चटनी खाने की इच्छा रखती थी और तुमने परस दिया है हलुवा।"

"तो हलुवा स्वाद नहीं लगा क्या ?"

"स्वाद ? अपने-अपने मन की बात है। मुझको तो चटनी अधिक पसन्द है।"

"शुक्र करो भाभी ! कहीं कड़ुवा करेला नहीं मिल गया। करेले की अपेक्षा तो हलुवा कई गुना अच्छा होता है।"

"उस शिवराम की बात कह रहे हो क्या ? मैं तो मन में निश्चय कर चुकी थी कि उसके पलंग पर चढ़ने से पूर्व ही मकान की छत से कूद कर प्राण दे डालूँगी।"

"तो वह अच्छा होता क्या ? इस हलुवे में यह बात अच्छी थी क्या ?"

"तो इसमें तुम्हारी चतुराई क्या हुई ? मैं तो तुमसे प्रेम करती हूँ।"

"छी ! छी !" सदानन्द ने अपने होंठों पर उँगली रखकर कहा, "चमेली ! नहीं-नहीं पुष्पा भाभी ! मैं तुम्हारा छोटा भाई हूँ। जो भाग्य में बधा था हो गया है। अब ऐसी बात फिर मत करना। बचपन की बातें भूल जाओ।"

"मैं समझती हूँ कि भूल सकूँगी क्या ?"

"क्यों नहीं ? मैं इसमें तुम्हारी सहायता करूँगा।"

"क्या सहायता करोगे ?"

"यह तुमको पता चल जाएगा।"

इस सब बात पर भी चमेली के आँसू बन्द नहीं हुए। सदानन्द ने कहा, "देखो भाभी ! अब तुम हो पुष्पावती। चमेली को भूल जाओ।"

इतना कह सदानन्द घर से बाहर निकल गया। वह सीधा फकीर-दीन की बैठक पर जा पहुँचा। चमेली के यह कहने पर कि वह अपने विवाह से पूर्व के विचारों को नहीं भूल सकेगी, सदानन्द ने मन में निर्णय कर लिया था कि वह अब घर पर नहीं सोया करेगा। वह समझता

था कि इस प्रकार वह उसके मस्तिष्क से पुराने विचार निकाल सकेगा।

सदानन्द जूता उतार चटाई पर काम करने के लिए बैठा तो मुन्शी ने पूछा, "कल नहीं आए सदानन्द ?"

"भाई की शादी थी। दिन-भर भाग-दौड रही थी।"

"भाई! ताज कम्पनी वालों ने एक किताब भेजी है। उनका इसरार है कि इस किताब की सारी किताबत तुम ही करो। मैंने कहा था कि तुमको फुरसत नहीं है। मगर वे बहुत जोर दे रहे हैं। वह चार आना सफा के एवज में पाँच आना देने को कह गए हैं।"

"उस्ताद! काम तो मैं कर दूँगा। पर वह काम वक्त पर देते नहीं और फिर जल्दी मचाते हैं।"

"उनकी किताबें बिकती हैं। वे मजबूर हैं।"

"कितने सफे की किताब है ?"

"तीस फार्म की है और वे चाहते हैं कि पन्द्रह दिन में ही खत्म हो जाए।"

"यह कैसे हो सकता है ? दिन में दो फार्म तो हो सकते ही नही। मैं शाम को काम करता ही नहीं।"

"देखो सदानन्द! रुपया बडी चीज है और यह मेहनत करने से ही पैदा होता है। मेरी राय है कि शाम को आवारागर्दी करने के बजाए यहाँ आ जाया करो और पाँच बजे शाम से रात नौ बजे तक काम किया करो। मुझको यकीन है कि तुम इस काम को मुकर्रर वक्त के अन्दर ही खत्म कर सकोगे।"

सदानन्द ने मजदूरी की गिनती की। पूरी किताब का डेढ सौ रुपया मिलने वाला था। उसके मन में लालच आ गया और वह उसी दिन से काम करने लगा। दो फार्म नित्य लिखने में खून-पसीना एक करना पडता था। परन्तु निष्ठावान व्यक्ति के लिए कुछ भी कठिन नहीं रहता। सदानन्द के मन में पैसा जमा करने की लालसा जाग पडी थी। इस लालसा के पीछे भी उसके लेखक बनने की धुन सवार थी। उसके

मन में आ रहा था कि वह कविता गाता है। लोग मंत्र-मुग्ध उसको सुनते हैं। अतएव वह समझता था कि यदि वह लिखे तो कोई वजह नहीं कि लोग उसको पढ़ेंगे नहीं। वह अपनी पहली किताब स्वयं लिखकर छपाना चाहता था और इसके लिए धन की आवश्यकता थी।

अब वह प्रातः आठ बजे से दिन के एक बजे तक बैठ लिखता। पश्चात् घर पहुँच खाना खाता, विश्राम करता और पुनः पाँच बजे आकर काम पर बैठ जाता। रात के दस बजे तक वह काम करता। रात देरी हो जाने के कारण उसने बैठक में ही सोने का प्रबन्ध कर लिया।

उसके रात घर न जाने का कारण माँ और परमानन्द ने उससे पूछा तो उसने कह दिया, "एक किताब पन्द्रह दिन में देनी है। इस कारण रात बहुत देर तक काम करना पड़ता है।"

वह नित्य माँ के हाथ में दो रुपये दे देता था और वास्तव में यह उसकी सच्चाई का प्रमाण होता था।

किताब दस दिन में ही समाप्त हो गई। माँ को देकर और कुछ अपने पर व्यय कर शेष रुपये उसने सेविंग बैंक में जमा कर दिए। इस प्रकार उसके बैंक के रुपयों में सौ रुपये के लगभग की वृद्धि हुई।

इस काम ने उसकी एक समस्या सुलझा दी। उसने एकदिन उस्ताद से कहा, "उस्ताद ! यह बैठक के ऊपर का कमरा रात को प्रायः खाली रहता है। रात को सोने के लिए किराए पर दे दो।"

इस किताब को लिखने के दिनों में वह यहीं सोया करता था। मुन्शी फरीदुद्दीन ने सदानन्द के मुख पर देखा। वह जानता था कि उसकी माँ है, भाई-बहन हैं। उसने सदानन्द को चुप देख पूछा, "क्यों माँ से लड़ पड़े हो क्या ?"

"नहीं उस्ताद ! घर में एक कमरा है और उसमें आठ लोग सोते हैं। मैं कुछ लिखने का काम शुरू करना चाहता हूँ। वहाँ बच्चों के शोर में हो नहीं सकता।"

"क्या लिखोगे ?"

"एक किताब लिखूँगा।"

मुन्शी हँस पड़ा और पूछने लगा, "कितना पढ़े हो ?"

इस प्रश्न से सदानन्द के मुख का रंग उड़ गया। कुछ विचार कर बोला, " मैं बहुत पढ़े-लिखों के लिए नहीं, बल्कि अपने जैसे कम पढ़े-लिखों के लिए लिखना चाहता हूँ।"

'देखो सदानन्द !" उस्ताद ने गम्भीर हो कर कहा, "बैत, जो तुम बनाते हो, सुनने में मजा आता है। मगर पढ़ने में वे फीके मालूम होते हैं। उनको कोई खरीद कर नहीं पढ़ेगा।"

"उस्ताद ! मेरी हिम्मत न गिराओ। मुझको यह कमरा रात के लिए दे दो। बताओ क्या किराया लोगे ?"

"सिर्फ रात के लिए पाँच रुपया महीना।"

"ठीक है। आज से रात को मैं यहीं सोया करूँगा। रात सात बजे से सुबह सात बजे तक यह मेरे कब्जे में रहेगा।"

उस दिन से सदानन्द ने अपनी दिनचर्या बदल दी। वह उस कमरे में सोता था। अपना बिस्तर और कपड़ों का ट्रंक उसने वहाँ लाकर रख दिया। प्रायः सूर्य निकलने से पूर्व ही उठ बैठता। शौचादि से छुट्टी पा बाजार में लगे नल पर स्नान करता। पश्चात् कपड़े पहन सात बजे से पहले ही बिस्तर लपेट देता और परछत्ती पर, जहाँ उसका ट्रंक रखा रहता था, रख देता।

सुर्जनसिंह के चौक में से हलवाई की दुकान से दो आने की पूरी और दो आने की लस्सी पी कर वह काम पर आ बैठता। सात बजे से एक बजे तक काम करता। इस समय में वह तीन से चार रुपये का काम कर लेता था। वहाँ से डेढ़ बजे वह घर जा पहुँचता और भोजन करता। दो रुपये माँ को दे वह विश्राम करता। साढ़े तीन बजे वह लायब्रेरी जा पहुँचता। चार बजे से सात बजे तक वहाँ बैठ, कहीं मुशायरा आदि होता तो वहाँ जा पहुँचता, नहीं तो भोजन कर बैठक में

आकर अपने लिखने के काम में लग जाता। उसने अपनी पहली किताब का नाम "परिस्तान की सैर" रखा था।

इस प्रकार काम चलने लगा। दो मास व्यतीत हो गए। इन दिनों लक्ष्मी उसके घर से बाहर सोने के कारण चिन्ता करती रहती थी। एक दिन दोपहर के समय, जब वह रोटी खाने आया तो माँ ने समीप आकर कहा, "बेटा! तुम्हारा घर से बाहर रहना अच्छा नहीं लगता। क्या किताब समाप्त नहीं हुई?"

"नहीं माँ! और यहाँ काम हो नहीं सकता।"

"रात को रोटी कहाँ खाते हो?"

"लोहे के तालाब पर एक तन्दूर में खाता हूँ। तीन आने में पेट भर जाता है।"

"क्या घर से अधिक स्वाद होती है?"

"यह तो पता नहीं। पर माँ! क्या करूँ? रात को खाना खाने आऊँ और फिर वहाँ लिखने जाऊँ, इसमें समय बहुत व्यर्थ जाएगा।"

"किताब लिखकर क्या करोगे?"

"छपवाऊँगा। फिर जब बिकेगी तो लोग मेरा मान करेंगे और मेरा नाम होगा।"

"बस?"

"और क्या चाहती हो माँ?"

"मैं चाहती हूँ कि तुम इतना कमाओ कि एक बड़ा-सा मकान किराए पर ले लें और उसमें तुम अपनी बहू के साथ रहो।"

"माँ! बस करो। क्या एक बहू तुम्हारे लिए काफी नहीं?"

"क्या बहू मुझे अपने लिए लानी है, बेटा? बहू तो तुम्हारे लिए चाहिए।"

"नहीं मुझको नहीं चाहिए।"

"क्यों?"

"अब नहीं चाहिए। माँ! अब कमला, प्रभा, रमा का विवाह

करो न।"

माँ गंभीर विचार मे पड गई और फिर धीरे से बोली, "अच्छा पमी से बात करूँगी पर तुम तो अब उससे कभी मिलते तक नही।"

"माँ! किताब समाप्त हो जाए तब मिलूँगा।"

वह लेटा तो उसको झपकी आ गई। उसकी नींद खुली तो उसे महसूस हुआ कि कोई उसके पाँव मे खुजली कर रहा है। उसने आँखे खोली तो देखा कि चमेली है और एक तिनके से उसके पाँव मे खुजली कर रही है।

उसको बैठक मे रहते हुए दो मास से अधिक हो गए थे और इस काल मे चमेली को सदानन्द से एकान्त मे बात करने का अवसर नही मिला था। सदानन्द की माँ चमेली की माँ के घर गई थी। बच्चे सब स्कूल गए हुए थे। चमेली ने सदानन्द को अकेले पा जगा दिया था। वह जागा तो पूछने लगा, "क्या है भाभी?"

चमेली ने इसका उत्तर उसके साथ लेटकर दिया। अभी सदानन्द इसका अर्थ समझ ही रहा था कि चमेली ने उससे आलिंगन कर उसका मुख चूम लिया। जब सदानन्द को उसके कार्य का ज्ञान हुआ तो उसने उसको बलपूर्वक अपने से पृथक् कर दिया और उठ कर बैठ गया। चमेली के माथे पर त्योरी चढ गई परन्तु शीघ्र ही उसने अपने मन को सँभाल कर, हाथ फैलाकर उसको आलिंगन करने का निमन्त्रण दिया। सदानन्द ने सिर हिलाकर कहा, "क्या कर रही हो भाभी? छी! छी! बड़ी भाभी तो माँ के बराबर होती है न?"

"पर मै तो तुमसे . . . .।"

सदानन्द ने उसके मुख पर हाथ रखकर कहा, "यह क्या बात कह रही हो?"

"क्या मन की बात करना पाप है?"

"मन की बात बिना विचार किए करना पशुपन है।"

"पर मै तो विचार कर ही कह रही हूँ कि मेरा मन तुमसे प्यार

करने को कहता है।"

"एक औरत को अपने पति से ही प्यार करना चाहिए।"

"अगर अपने देवर से भी प्यार करने को जी चाहे तो ?"

"देखो भाभी ! जिस काम को करने के लिए लुकाव-छिपाव की आवश्यकता पड़े, वह काम बुरा है।"

"ऐसे तो तुम्हारे भाई से भी लुक-छिप कर प्यार करती हूं।"

"इस पर भी सब जानते हैं कि तुम कमरे के भीतर क्या करती हो और कोई उसको बुरा नहीं कहता। भाभी ! मैं पूछता हूं कि तुम्हारा मन भैया में क्यों नहीं भरता ?"

"पता नहीं, क्या है। वे बहुत अच्छे हैं। मुझको प्यार करते हैं। माँ से छिप-छिप कर खाने-पहनने को भी देते हैं। रविवार के दिन सैर कराने को भी ले जाते हैं। इस पर भी मैं स्वप्न तुम्हारे ही लेती हूँ और दिन-भर चित्त बेचैन रहता है।"

इतना कह उसने पुनः अपना हाथ सदानन्द के हाथ पर रखा। परन्तु सदानन्द ने हाथ खींच लिया और कहा, "भाभी ! होश करो। तुम मनुष्य हो, गाय-भैंस नहीं। अपने को पहचानो।"

वह उठ खड़ा हुआ और बिना उसकी ओर देखे जूता पहन मकान के नीचे उतर गया, आज उसके मन में भारी हलचल मच उठी थी, इस कारण वह लायब्रेरी नहीं जा सका। घर से निकल शाहालमी दरवाजे के बाहर से होता हुआ मोरी दरवाजे और टकसाली दरवाजे के भीतर वाले बाग में एकान्त देख, घास पर लेट अपने विषय में विचार करने लगा। उसने निश्चय कर लिया था कि अब वह दोपहर को भोजन के पश्चात् घर पर विश्राम नहीं किया करेगा। एकान्त में चमेली से नहीं मिलेगा।

वह तो वह अनुभव करता था कि उसके अंग-स्पर्श ने उसके रोम-रोम में वासना भर दी है और वह स्त्री-संसर्ग की इच्छा करने लगा है। यदि वह उस इच्छापूर्ति से बच सका है तो वह उसके संस्कारों से

कारण था, जो उसकी इच्छा से प्रबल सिद्ध हुए थे। उसके मन में यह बात बैठ गई थी कि बड़ी भाभी माँ के सदृश होती है। लक्ष्मण ने सीता के केवल पाँव ही देखे थे।

वास्तव में सदानन्द ने इतना कुछ पढ़ा था कि वह उस समय से, जब चमेली ने पहली बार उसको अपने घर के कमरे में ले जाकर, उससे प्यार किया था, बहुत आगे निकल गया था। उसके मन में उच्च भावनाएँ, चित्त में स्थिरता और विचारों में दृढ़ता आ गई थी। वह यह बात भलीभाँति समझ चुका था कि मन और इन्द्रियों पर अधिकार ही मनुष्य को उन्नति की ओर ले जाने में सफल हो सकता है।

अब एकान्त में लेटे-लेटे उसको माँ का कहना स्मरण होने लगा था, उसकी माँ ने कहा था, 'तुम इतना कमाओ कि एक बड़ा-सा मकान किराए पर ले लो और उसमें तुम अपनी बहू के साथ रहो।' आज वह अनुभव करने लगा था कि वास्तव में उसको पत्नी की आवश्यकता है। इस विचार के आते ही वह यह अनुभव करने लगा था कि उसको धन की आवश्यता है और उसके लिए केवल कातिब बनने से काम नहीं चल सकता। उसको लेखक बनना है।

लगभग दो घण्टे वह अपने मन के हीन और उच्च उद्‌गारों में संघर्ष करता हुआ घास पर करवटें लेता रहा। अब वह उठा और अपने मन से चमेली के तथा पत्नी बनाने के विचार निकाल परमानन्द से मिलने के लिए चल पड़ा।

परमानन्द कचहरी से लौट आया था और अगले दिन की फ़ाईलों को ठीक कर रहा था। उसने सदानन्द को कोठी में प्रवेश करते देखा तो चिन्ता में उसकी प्रतीक्षा करने लगा। अढ़ाई मास पहले वह उसके विवाह का समाचार लेकर आया था। आज क्या समाचार लाया होगा, वह विचार करने लगा था।

सदानन्द कार्यालय में आया तो हाथ जोड़ कर नमस्कार कर बैठ गया। परमानन्द कुछ काल तक तो उसके मुख की ओर देखता रहा।

पश्चात् उसे कुछ न कहते देख, अपनी फाइलें ठीक करने लगा। इसमें पन्द्रह-बीस मिनट लग गए। अब उसे कुछ टाईप का काम करना था। उसने टाईपराइटर पर कागज चढ़ाया और घूम कर सदानन्द की ओर देख पूछने लगा, "किसी खास काम से आए हो ?

"नहीं भैया ! माँ ने कहा था कि मुझको तुमसे मिलना चाहिए। सो लायब्रेरी नहीं गया, इधर ही चला आया हूँ।"

"तो माँ के कहने पर तुम्हारा जी मुझसे मिलने को कर आया है ?"

"जी तो रोज ही करता था, परन्तु भैया ! एक काम में लगा हुआ हूँ। इस कारण आने का अवकाश ही नहीं मिलता।"

"क्या काम है ?"

"मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ।"

"बिना मैट्रिक पास किए ?"

"मैं बहुत सी बातें मैट्रिक पास करने वालों से अधिक जानता हूँ। मैंने स्वाध्याय नहीं छोड़ा।"

परमानन्द को यह व्यंग अपने ऊपर कसा गया लगा। इस पर भी उसने व्यर्थ की बात छोड़, मतलब की बात पूछी "क्या पढ़ा करते हो ?"

"इतिहास, धर्मशास्त्र और साहित्य की पुस्तकें ढेरों ही पढ़ चुका हूँ। साथ ही हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा का भी अभ्यास कर रहा हूँ।"

"क्या किताब लिख रहे हो ?"

"किताब का नाम रखा है, 'परिस्तान की सैर'। किताब उर्दू में है। इसमें कहानी है और बीच-बीच में शेर लिखे हैं। अपनी ओर से इसको बहुत ही रोचक बनाने का यत्न किया है। साथ ही किताब किसी उद्देश्य से लिखी है। मैंने यह दिखाने की कोशिश की है कि इन्द्रियों का सुख स्थाई नहीं है। जो प्रभाव उनका मन पर रह जाता

लगता था।

इस प्रकार वह बिना एक भी अक्षर लिखे तीन घण्टे-भर बैठ, क्रोध में कलम फेंक, लैम्प बुझा वहीं चटाई पर लेट गया। इस पर भी उसे नींद नहीं आई। धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा, परन्तु उसको एक झपकी तक नहीं आई। वह सुन रहा था दूर कहीं घड़ी मे एक बजा, फिर दो बजे, पश्चात् तीन और चार बज गए। वह यह समझ कि दिन चढ़ने वाला है, उठ बैठा। सुराही में से पानी ले गिलास भर पी गया। पश्चात् शौच को चला गया। अभी भी उसके मस्तिष्क में खुमार चढ़ा हुआ था। उसने विचार किया कि स्नान कर ले तो ठीक रहेगा। वह अँगोछा लपेट, नीचे बाजार के नल पर चला गया। वहाँ उसकी धार के नीचे सिर देकर स्नान करने लगा। इसने उसे बहुत लाभ पहुँचाया। उसका मस्तिष्क शीतल हो गया। बदन पोंछ, कपड़े पहन वह ऊपर आ चटाई पर लेटा तो सो गया।

एक ही झपकी में दिन चढ़ आया और उसको उठना पड़ा। किताबत करने वाले लोग आने लग गए थे।

एक बजे किताबत का काम समाप्त कर वह घर गया, तो माँ ने रोटी परसते हुए कहा, "कल पमी से मिलने गए थे क्या ?"

"हाँ माँ ! जब तुमने कहा कि मिलना चाहिए तो मैंने उसी समय जाना उचित समझा।"

सदानन्द ने देखा कि चमेली ऊपर के कमरे मे ही बैठी हुई है और एकटक उसके मुख पर देख रही है। यह उसे भला प्रतीत नहीं हुआ। इससे उसने माँ से कहा "माँ ! भाभी के विवाह को तीन मास होने जा रहे हैं और तुम अभी भी उससे कोई काम नहीं लेतीं ?"

"सारी उमर उसने ही तो काम करना है बेटा ! जब तक शरीर चलता है, तब तक इससे काम लूँगी और मर जाने के पश्चात् जैसे इनकी इच्छा हो करें।"

"नहीं माँ। भाभी हराम की खानी सीख गई, तो भैया को बहुत

तंग करेगी। उठो न भाभी! थोड़ा गुड़ लाओ। माँ! बताना इसे कहाँ रखा है।"

चमेली सास के कहे बिना ही उठी और चौके में जाकर एक मटकी में से एक रोड़ी गुड़ निकाल लाई। जब वह सदानन्द की थाली में रखने लगी तो टप से थाली में एक आँसू गिर गया।

सदानन्द ने उसकी ओर देखा परन्तु वह उठकर पुनः चौके में चली गई। अब वह आई तो आँखें पोंछ आई थी। सदानन्द को चमेली पर दया आ गई, परन्तु वह उसके मनकी इच्छा पूरी नहीं कर सकता था।

सदानन्द गुड़ से अन्तिम रोटी खा रहा था। लक्ष्मी ने कहा, "कल पमी ने तुमको कमला के विषय में कुछ कहा था क्या?"

"नहीं माँ!"

"उसने बताया है कि जीवनलाल का लड़का हाईकोर्ट में पेशकार का काम करता है। जीवनलाल उसके लिए कमला को माँग रहा है, परन्तु कमला ने बिलकुल इन्कार कर दिया है।"

"क्या कहती है?"

"कहती है कि उसकी माँ ने ग्यारह बच्चे पैदा किए हैं और वह इससे डरती है। वह समझती है कि उसके भी बच्चे-पर-बच्चे होते गए तो वह मर जावेगी।"

"ठीक तो कहती है। मैं भी उससे यही कहूँगा कि जब तक वह बिना विवाह के रह सके अवश्य रहे, पीछे देखा जावेगा।"

"यह कैसे हो सकता है बेटा? मनुष्य की बुद्धि अधूरी रह जाती है, यदि उसका विवाह न हुआ तो उसको बहुत-सी बातों में अक्ल ही नहीं आएगी।"

"पर माँ! विवाह तो मैं भी नहीं करना चाहता। तो मैं भी मूर्ख हूँ और मूर्ख रहूँगा। क्यों?"

"लड़के और लड़की में अन्तर है।"

सदानन्द इस अन्तर को समझ नही सका। इस पर भी उसने पूछने का यत्न नही किया।

सदानन्द को नींद आ रही थी, परन्तु वह घर पर आराम करना नही चाहता था। इस कारण माँ को यह कहकर कि उसको कुछ काम है, बैठक को चला गया। इस समय वहाँ कुछ काम करने वाले, जिनके घर दूर होते थे, विश्राम करते थे। सदानन्द भी वहाँ एक चटाई पर लेट गया। उसके साथ की चटाई पर एक शाहदरा से आकर काम करने वाला लडका फिरोज लेटा हुआ था। फिरोज इक्कीस वर्ष की आयु का अविवाहित युवक था। घर से प्रात. आते समय भोजन ले आता था। भोजन कर एक घण्टा आराम कर चुका था। सदानन्द को आज दोपहर के समय आराम करने वहाँ आया देख, उसने विस्मय मे पूछा, "सदानन्द ! क्या बात है जो आज यहाँ चले आए हो ?"

"रात नींद नही आई। इस कारण इस समय थका हुआ-सा लग रहा हूँ।"

"नींद क्यों नही आई ?"

"कुछ खास बात तो नही। कह नही सकता कि क्यो नही आई।"

"मैं बताऊँ कि क्या बात है ? मेरे साथ भी कभी ऐसा हो जाता है।"

"क्या हो जाता है ?"

"कभी रात को नींद नही आती। पहले मै भी बहुत परेशान रहता था। अब मैं इसकी वजह जान गया हूँ।"

"क्या वजह जान गए हो ?"

"जब जवानी का जोश आता है तो खून सिर को चढ जाता है और नींद हराम हो जाती है। इसका इलाज इस जोश को ठण्डा करना है।"

"मैं आज सवेरे पन्द्रह मिनट तक नल की धार के नीचे सिर देकर बैठा रहा। बाद मे नींद आ गई थी परन्तु फिर दिन निकल आया था।"

"मैं तो इसका इलाज किसी औरत के पास जाकर करता हूँ।"

"यह तो बहुत मँहगा इलाज है।"

"शादी करने से सस्ता है।"

"शादी में तो और भी कई बातें शामिल होती हैं। उनका मूल्य भी तो शादी में गिनना चाहिए।"

"छोड़ो दूसरी बातों को। बच्चों से हमने क्या लेना है? रोटी का इन्तजाम होटल में हो जाता है। सोने के लिए तुम यहाँ सो ही रहते हो। शेष नामुराद जोश ही तो रह जाता है। चलो मैं इसका इन्तजाम करवा देता हूँ।"

"तुम कहाँ जाते हो?"

"गाँव के बाहर एक चमारिन रहती है। जिस दिन तबियत खराब होती है, वहाँ चला जाता हूँ। आठ आने में काम बन जाता है।"

"बस?"

"चलो आज मेरे साथ। देखना दिमाग किस तरह ठंडा हो जाता है।"

"छोड़ो भाई! इस बात को। मुझे तो ऐसे ही नींद आ रही है।"

फिरोजदीन सो चुका था। वह उठकर बाजार टहलने चला गया। परन्तु यह बात सदानन्द के मस्तिष्क में पुनः हलचल पैदा कर गई। फिरोज जब काम पर लौटा तो सदानन्द अभी भी जाग रहा था। वह फिरोज को आता देख, उठकर बैठक से बाहर जाने का विचार करने लगा। फिरोज ने उसकी नींद न आने के कारण लाल हुई आँखों को देखा तो अपना लिखने का बस्ता खोलने के स्थान, उठकर सदानन्द के साथ ही बैठक से बाहर निकल गया।

सदानन्द टकसाली दरवाजे के बाहर जा बाग में एकान्त में सोने का विचार रखता था। वह फिरोज को साथ आता देख उसका आशय समझ गया और बोला, "फिरोज! तुम अपना काम करो। मैं कहीं दूसरी जगह सोने जा रहा हूँ।"

"सदानन्द ! बेकार में तकलीफ उठा रहे हो। अगर तुम मेरे साथ शाहदरा गाँव नहीं जाना चाहते तो मैं तुम्हारे लिए यहीं इन्तजाम करा सकता हूँ।"

"नहीं भाई ! मुझको इस किस्म के इन्तजाम की जरूरत नहीं। मैं अपनी नींद का खुद इन्तजाम कर लूँगा।"

"देखो ! रात को तुम बैठक में अकेले ही होते हो। बहुत ही माकूल इन्तजाम बहुत सस्ते दामों में हो जाएगा।"

"अरे भाई नहीं। तुम जाओ काम करो। तुम्हारे दिन-भर का काम अभी खत्म नहीं हुआ।"

फिरोज को याद आ गया कि उसने अभी एक घण्टा काम और करना है। इस कारण "अच्छा मैं रात को तुम्हारे लिए इन्तजाम कर दूँगा।" कह कर चला गया।

सदानन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया और टकसाली दरवाजे की ओर चलता गया। फिरोज लौट आया। सदानन्द के मस्तिष्क में बवडर उठने लगा था। वह विचार करता था कि फिरोज महा गन्दा लड़का है। वह तो उसको बहुत ही शरीफ समझता था।

आज उसके मस्तिष्क में पीडा हो रही थी। वह बाग में गया तो सो गया। उसके मन की अवस्था पिछले दिन से आज भिन्न थी। वह मन में विचार करता था कि जब कमला विवाह के बिना रह रही है तो उसको ही क्यों कष्ट हो रहा है। इसमें वह चमेली और फिरोज को ही कारण समझता था। उनके मूर्खतापूर्ण व्यवहार ही उसके मस्तिष्क को खराब करने मे कारण हो रहे थे।

वह सोया तो बहुत अन्धेरा हो जाने पर उठा। उसका शरीर और दिमाग इस समय हल्का हो रहा था। वह प्रसन्न हो बैठक की ओर लौट गया। मार्ग में उसने तन्दूर पर रोटी खाई और अपनी पुस्तक का काम करने के लिए बैठक में चला गया।

बैठक की एक ताली उसके पास रहती थी और उस्ताद शाम को काम समाप्त कराकर उसको ताला लगा जाता था। सदानन्द ने ताला खोला और ऊपर चढ़ गया। पिछली रात वह कुछ भी काम नहीं कर सका था। इस कारण ऊपर जाते ही बिस्तर लगा, अपना बस्ता खोल किताब को देखने लगा।

वह साढ़े आठ बजे काम पर बैठा था और दस बजे तक काम करता रहा। वह अपनी लिखी कहानी पढ़ता था और ऐसा अनुभव करता था कि पुस्तक में लिखे चित्र उसकी आँखों के सामने सजीव हो रहे हैं। कहीं लिखने में भूल, कहीं किसी शब्द का अनौचित्य, कहीं वाक्य का भद्दा-पन, जहाँ, जो त्रुटि उसे पता लगती, वह उसे दूर कर देता। उसको ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पढ़ते समय उसकी आँखों के सामने आ रहे चित्रों में कहीं कोई धब्बा रह गया है, अथवा किसी पात्र के चित्र में कोई त्रुटि रह गई है और अब उसने ब्रुश से वह धब्बा अथवा रेखा की विकृति दूर कर दी है। इससे सन्तोष अनुभव कर वह आगे चलता था।

इस प्रकार वह अपने विचार-लोक में विचरता हुआ चला जा रहा था कि उसके कान में कुछ सर-सर का शब्द हुआ। वह शब्द इतना प्रबल नहीं था कि उसका ध्यान भंग होता। वह एक शेर ऊँचे-ऊँचे पढ़ रहा था—

'किस नाजनी के साँसों ने किया मुअत्तर गुलिस्तान को।'

उसको इसमें कुछ मजा समझ आ रहा था। इससे वह ऊँचे-ऊँचे गाकर पढ़ने लगा, 'किस नाजनी के· ··।'

उसके पास बैठे फीरोजदीन ने कह दिया, "इस नाजनी के साँसों ने मुअत्तर हुआ गुलिस्तान यह।"

सदानन्द का स्वप्न भंग हुआ और वह विस्मय से उसकी ओर देखने लगा। उसके सामने चटाई पर फिरोजदीन और एक लड़की बैठी थी। लड़की सफेद कपड़े, सलवार, कुर्ता और चुनरी में थी।

सदानन्द ने पूछा, "कैसे ऊपर आ गए हो?"

"नीचे का दरवाजा जो खुला छोड आए थे।"

सदानन्द को स्मरण हो आया कि किताब लिखने की धुन मे वह दरवाजा बन्द करना भूल गया था। अब वह उस लडकी को देखने लगा। उसकी बहन की तरह दुबली-पतली और लम्बे कद की थी। रूपरेखा भी तीखी थी। रग गदमी और आँखें मोटी-मोटी थी। वह उसकी ओर देख नही रही थी। अपने हाथों मे आँचल मरोड रही थी और आँखें उस ओर ही लगी थीं। सदानन्द को फिरोज की मध्याह्नोत्तर की बातें स्मरण हो आईं। इससे वह काँप उठा। वह अपने मन को इस बात के लिए तैयार नही कर सका था।

फिरोजदीन ने जब देखा कि सदानन्द उसकी ओर देख रहा है, तो वह उठ खडा हुआ और खड़े-खडे कहने लगा, "सदानन्द! यह है नाजनीं, जिसको अभी याद कर रहे थे। देखो खबरदारी से और मैं जा रहा हूँ। मुझको शाहदरा पहुँचना है।"

"इतनी रात गए?"

"मुझको याद आगया है कि भाई के लिए दवाई ले जानी है। लो मैं चला। नीचे का दरवाजा बन्द कर लेना।"

सदानन्द कहने वाला था कि इस लडकी को भी लेता जाए। परन्तु उसके कहने से पहले ही फिरोज सीढियाँ उतर गया। सदानन्द दरवाजा बन्द करने नीचे नहीं गया। वह बैठा रहा और लडकी की ओर देखता रहा। वह अच्छी-खासी सुन्दर थी।

लडकी ने उसको गभीर विचार मे मग्न बैठा देख पूछा, "तो मै दरवाजा बन्द कर आऊँ?"

"क्यो?"

"जिससे कोई ऊपर न आ जाए।"

"कोई ऊपर नहीं आएगा। क्या नाम है तुम्हारा?"

"शबनम।"

"कहाँ रहती हो ?"
"गली दरियाई त्राफाँ मे ।"
"बाप क्या काम करता है ?"
"नहीं है ।"
"माँ है ?"
"हाँ । वह भी यही काम करती है ।"
"तो तुम वेश्या हो ?"
"नहीं । हमारे पास इस काम का लाइसेंस नहीं ।"
"तो बिना नम्बर की टमटम हो ?"
लडकी मुस्कुराई और चुप कर रही । सदानन्द को इतने परिचय से सन्तोष नहीं हुआ । उसने आगे पूछा, "कब से यह काम करती हो ?"
"एक साल के करीब हो गया है ।"
"क्या कुछ पाने की उम्मीद करती हो ?"
"वैसे तो दस रुपये मिलते है पर भाई जान कह गए थे कि आप गरीब आदमी है और उनके दोस्त है । जो भी देंगे ले लूँगी ।"
"तो तुम गरीबो पर रहम भी करती हो ?"
"हम भी बहुत गरीब है । गरीबो से हमे अजहद हमदर्दी है ।"
सदानन्द पुन. विचारमग्न हो गया । इस पर उस लडकी ने पूछा, "तो उतारूँ कपडे ?"
इससे सदानन्द को चेतनता हुई और उसके शरीर मे रोमान्च हो गया । उसने घबरा कर कहा, "नहीं । ठहरो । खाना खाया है ?"
"भाई जान ने करा दिया है ।"
"कौन भाई जान ?"
"फिरोज भाई ।"
"तो तुम फिरोज की बहन हो ?"
"माँ-जायी नहीं । अगर आप पूरी रकम देंगे, तो उसको कमिशन

ी पड़ेगी ।"

"बहुत अच्छी लड़की हो तुम । चलो तुम्हे घर छोड़ आऊँ ।"

सदानन्द ने जेब से पाँच रुपये निकाले और लड़की के सामने रख दिए और अपनी पुस्तकें समेटने लगा ।

लड़की ने पूछा, "क्या मतलब ?"

"तुम्हे देख कर मुझको अपनी बहन याद आ गई है । चलो उठो । तुम्हे अकेली कैसे भेज दूँ ।"

लड़की के मुख का रंग फीका पड़ गया । सदानन्द को ऐसा लगा कि उसके शरीर का सब रंग उड़ गया है । वह उठा और बोला, "चलो शबनम ।"

"कहाँ ?"

"तुम्हारे घर ।"

"उसको ताला लगा है ।"

"क्यों ?"

"माँ भी कहीं गई हुई हैं ।"

"घर मे और कोई नही क्या ?"

"एक बड़ी बहन थी । उसने अपना घर बना लिया है ।"

"तो तुम भी कोई घर क्यों नहीं बना लेती ?"

"कोई मुनासिब घर वाला ढूंढ रही हूँ ।"

"इस तरह ?"

"और कोई तरीका भी तो नहीं । बहन ने इसी तरह ढूँढा था । मैं भी उम्मीद करती हूँ कि कोई मिल जाएगा ।"

'तो तुम्हारी माँ घर पर कब लौटेगी ?"

'करीब पाँच बजे तक उसको पहुँच जाना चाहिए । मैं भी उस वक्त जा पहुँचूँगी ।'

इस पर सदानन्द गम्भीर विचार मे पड़ गया । उसने कुछ विचार कर कहा, "अच्छी बात है । जाओ नीचे का दरवाजा बन्द कर आओ ।"

शबनम उठी। नीचे का दरवाजा बन्द कर ऊपर आ सामने खड़ी हो गई। सदानन्द ने अपने कागज समेट सन्दूक में रख दिए। पश्चात् लड़की से बोला, "यह पाँच रुपये तुम अपने रख लो। तुम यहाँ सो जाओ। मैं छत पर जाकर सो जाता हूँ।"

"यहीं पर सो जाइए। मैं आपको कुछ नहीं कहती।"

"मैं तुमसे नहीं डर रहा। मैं अपने आप से डरता हूँ।" इतना कह वह अपना बिस्तर उसको दे, स्वयं एक चादर और एक तकिया ले ऊपर की छत पर चला गया।

आज सदानन्द को बहुत अच्छी नींद आई। वह समझता था कि उसने कठिनाई पर विजय पा ली है। जो बात उसको मध्याह्न के समय अति दुस्तर प्रतीत हुई थी, इस समय सरल प्रतीत होने लगी थी।

वह नियमानुसार चार बजे सवेरे उठा और यह विचार कर कि यदि लड़की सो रही है तो उसको जगाकर घर भेज दे, नीचे कमरे में आ गया। लैम्प जल रहा था। उसकी पुस्तक की पाँडुलिपि बिस्तर पर खुली रखी थी और लड़की वहाँ पर नहीं थी। वह नीचे दरवाजा देखने गया तो वह भिचा हुआ था, परन्तु कुण्डा बन्द नहीं था। वह समझ गया कि वह स्वयं ही चली गई है। उसने कुण्डा चढ़ाया और ऊपर आ बिस्तर समेटने लगा। इस समय उसे ध्यान आ गया कि रात उसने पाँडुलिपि लपेट कर सन्दूक में रखी थी। अब वह बिस्तर पर खुली पड़ी थी। इसका अर्थ यह था कि शबनम इसे निकाल कर पढ़ती रही है। इस समय उसकी दृष्टि समीप रखे कलम दवात पर पड़ी। 'तो वह लिखती भी रही है मेरी किताब पर?' उसने मन में विचार किया।

इससे उसे घबराहट उत्पन्न हो गई। उसको भय लग गया कि उसकी खुशखत लिखी पाँडुलिपि कहीं उसने खराब न कर दी हो।

सदानन्द बिस्तर उठाता-उठाता ठहर गया और पुस्तक देखने लगा। सामने एक पन्ना खुला था। वही पन्ना था, जो वह रात फिरोज के आने के समय पढ़ रहा था। शेर पर संशोधन किया हुआ था।

उसने उस दिन ही उसे एक हिन्दी का बाल बोध, कापियाँ तथा कलम दवात ला दी और उसको लिखने का सबक देकर जाने लगा तो माँ, जो कमला से मिलने गई थी आ गई। उसने चमेली के हाथ मे किताब तथा कापी देख पूछा, "यह क्या हो रहा है ?"

"माँ ! पशु के गले में ज्ञान का रस्सा डाल रहा हूँ।"

आज वह बैठक मे सोने नही गया। चमेली को पढाने में साढे तीन बज गए थे। इस कारण वह सीधा लायब्रेरी चला गया।

नियमानुकूल लायब्रेरी से लौट, तन्दूर पर रोटी खा बैठक में पहुँच गया। नित्य के विपरीत बैठक के नीचे ताला नहीं लगा था और ऊपर रोशनी हो रही थी। वह ऊपर गया तो शबनम को वहाँ बैठा देख चकित रह गया। शबनम उसके सन्दूक से उसकी पुस्तक निकाल पढ रही थी। सदानन्द ने विस्मय मे पूछा, "ताला कैसे खोल लिया है ?"

"ताला लगने से पहले ही आ गई थी। भाई जान ने उस्ताद से चाबी ले ली थी।"

"उस्ताद ने पूछा नही कि चाबी किस लिए चाहिए ?"

"पूछा होगा। भाई जान ने कुछ जवाब दिया होगा। मुझको पता नहीं। वे मुझको अभी-अभी यहाँ छोड कर गए हैं।"

"तुम फिरोज को भाई जान कहती हो। वह क्या लगता है तुम्हारा ?"

"मेरा मौसिया भाई है।"

"तो तुम्हारी माँ और उसकी माँ बहनें हैं ?"

"सगी नहीं। बुआ मामा की लडकियाँ है।"

"तो आज किस काम से आई हो ? मैं समझता था कि तुम जान गई हो कि मै तुम्हारा इस्तेमाल नहीं करूँगा।"

"जान ली गई हूँ और समझ भी गई हूँ। इस पर भी आपसे दो काम थे। एक तो यह वापिस करना था।" इतना कह उसने अपने ब्लाउज के नीचे से पाँच का नोट निकाल कर सदानन्द के सामने रख

दिया।

"यह क्यों वापिस कर रही हो?"

"इसको लेने का मैं क्या हक रखती हूँ?"

"मैंने तो तुमको अपनी बहन समझ कर दिया था। तुमने कहा था कि तुम बहुत गरीब हो। गरीब बहन को कुछ मदद देने में कोई गैर मुनासिब बात तो है नहीं। बहन को भाई से लेने में कोई बुरी बात भी नहीं।"

"पर मैं अपने-आपको आपकी बहन नहीं समझती। न मैं कल बहन बन कुछ माँगने आई थी और न ही आज आपको भाई समझ यहाँ आई हूँ।"

"पर जो कुछ कल बन कर आई थी, वह मैंने मंजूर नहीं किया और आज तुम क्या बन कर आई हो, कह नहीं सकता।"

"एक काम जिसके लिए मैं आई हूँ बता दिया है। ये रुपये आपके हैं। मैं फोकट में नहीं ले सकती। दूसरी बात यह है कि कल मैं आपकी किताब पूरी पढ़ नहीं सकी थी। इस कारण बकाया पढ़ने के लिए आज आई हूँ।"

"पर यह बात तो यहाँ आये बिना भी हो सकती थी?"

"एक काम और है। उसके लिए यहाँ आना लाज़मी था। जब उसके लिए आना ही था तो पहली दो बातें भी हो जाएँगी। यह काम है आपको कुछ अपने मुतल्लिक बताना।"

"वाह! यह खूब रही। आज अपने मुतल्लिक बताने चली आई हो बिना जाने कि मैं सुनना चाहता भी हूँ या नहीं।"

"कोई किसी की सुनना नहीं चाहता। सुनाने वाले को सुनाने की जरूरत हो तो जबरदस्ती सुनानी पड़ती है। सो मैं आई हूँ।"

सदानन्द हँस पड़ा। उसने कहा, "तो तुम मुझ पर जबर कर रही हो?"

"हाँ! बिना इसके काम बनता दिखाई नहीं देता।"

उसने उस दिन ही उसे एक हिन्दी का बाल बोध, कापियाँ तथा कलम दवात ला दी और उसको लिखने का सबक देकर जाने लगा तो माँ, जो कमला से मिलने गई थी आ गई। उसने चमेली के हाथ में किताब तथा कापी देख पूछा, "यह क्या हो रहा है ?"

"माँ ! पशु के गले में ज्ञान का रस्सा डाल रहा हूँ।"

आज वह बैठक में सोने नहीं गया। चमेली को पढाने में साढे तीन बज गए थे। इस कारण वह सीधा लायब्रेरी चला गया।

नियमानुकूल लायब्रेरी से लौट, तन्दूर पर रोटी खा बैठक में पहुँच गया। नित्य के विपरीत बैठक के नीचे ताला नहीं लगा था और ऊपर रोशनी हो रही थी। वह ऊपर गया तो शबनम को वहाँ बैठा देख चकित रह गया। शबनम उसके सन्दूक से उसकी पुस्तक निकाल पढ रही थी। सदानन्द ने विस्मय में पूछा, "ताला कैसे खोल लिया है ?"

"ताला लगने से पहले ही आ गई थी। भाई जान ने उस्ताद से चाबी ले ली थी।"

"उस्ताद ने पूछा नहीं कि चाबी किस लिए चाहिए ?"

"पूछा होगा। भाई जान ने कुछ जवाब दिया होगा। मुझको पता नहीं। वे मुझको अभी-अभी यहाँ छोड कर गए हैं।"

"तुम फिरोज को भाई जान कहती हो। वह क्या लगता है तुम्हारा ?"

"मेरा मौसिया भाई है।"

"तो तुम्हारी माँ और उसकी माँ बहनें हैं ?"

"सगी नहीं। बुआ मामा की लडकियाँ हैं।"

'तो आज किस काम से आई हो ? मैं समझता था कि तुम जान गई हो कि मैं तुम्हारा इस्तेमाल नहीं करूँगा।"

"जान तो गई हूँ और समझ भी गई हूँ। इस पर भी आपसे दो काम थे। एक तो यह वापिस करना था।" इतना कह उसने अपने ब्लाउज के नीचे से पाँच का नोट निकाल कर सदानन्द के सामने रख

दिया।

"यह क्यों वापिस कर रही हो?"

"इसको लेने का मैं क्या हक रखती हूँ?"

"मैंने तो तुमको अपनी बहन समझ कर दिया था। तुमने कहा था कि तुम बहुत गरीब हो। गरीब बहन को कुछ मदद देने में कोई गैर मुनासिब बात तो है नहीं। बहन को भाई से लेने में कोई बुरी बात भी नहीं।"

"पर मैं अपने-आपको आपकी बहन नहीं समझती। न मैं कल बहन बन कुछ माँगने आई थी और न ही आज आपको भाई समझ यहाँ आई हूँ।"

"पर जो कुछ कल बन कर आई थी, वह मैंने मंजूर नहीं किया और आज तुम क्या बन कर आई हो, कह नहीं सकता।"

"एक काम जिसके लिए मैं आई हूँ बता दिया है। ये रुपये आपके हैं। मैं फोकट में नहीं ले सकती। दूसरी बात यह है कि कल मैं आपकी किताब पूरी पढ़ नहीं सकी थी। इस कारण बकाया पढ़ने के लिए आज आई हूँ।"

"पर यह बात तो यहाँ आये बिना भी हो सकती थी?"

"एक काम और है। उसके लिए यहाँ आना लाजमी था। जब उसके लिए आना ही था तो पहली दो बातें भी हो जाएँगी। वह काम है आपको कुछ अपने मुतल्लिक बताना।"

"वाह! यह खूब रही। आज अपने मुतल्लिक बताने चली आई हो बिना जाने कि मैं सुनना चाहता भी हूँ या नहीं।"

"कोई किसी की सुनना नहीं चाहता। सुनाने वाले को सुनाने की जरूरत हो तो जबरदस्ती सुनानी पड़ती है। सो मैं आई हूँ।"

सदानन्द हँस पड़ा। उसने कहा, "तो तुम मुझ पर जबर कर रही हो?"

"हाँ! बिना इसके काम बनता दिखाई नहीं देता।"

"अच्छा बाबा! सुनाओ, क्या कहती हो।"

"मैंने कल आपकी किताब के आखिरी सफे पर कुछ लिखा था।"

"हाँ। मैंने देखा था। लिखा था,

"गम से परेशा हू कि दिल बैठ रहा है,
समझ में आता नहीं यह माजरा क्या है।"

"ठीक। और आज मैं कहने आई हूँ,

"यही समझ आया है कि यह दिल की बात है,
बेचारा बेजबा है कुछ कह नहीं सकता।"

"मरहबा! मरहबा!! कुछ और इरशाद फरमाइए।"

"कौन समझ सकता है इस दिल की बात को,
दिल की सुनवाई को दिल ही चाहिए।"

सदानन्द इस शायरी के बहाव को देख कर चकित रह गया। इस पर भी उसने कहा,

"दिल को जबा लगादो हो जाए मोजज़ा यह,
खलकत बनाने वाले क्या कर नहीं सकते।"

"तो सुनिये दिल को जबा लगाती हूँ। यह आपकी कहानी बहुत ही मजेदार है।"

"हाँ! जब से तुम इस कहानी में शामिल हुई हो। बताओ खाना खा आई हो?"

"हाँ, खा चुकी हूँ। देखिये यह आपने क्या लिख दिया है।"

"लिख दिया है तुम्हारा सिर। अब तुम अपने घर चली जाओ। मैंने कल भी कुछ काम नहीं किया और आज भी तुम यहाँ बैठ मेरा दिमाग खराब कर रही हो।"

"दिमाग में क्या खराबी हो रही है?"

"तुम नहीं समझती। मैं जवान हूँ। सब तरह से तन्दरुस्त हूँ। तुम जैसी आवारा लड़की को सामने बैठा देख क्या हो सकता है दिमाग को?"

"तो मैं आवारा हूँ ?"

"और क्या हो ? दस-दस रुपये पर बिकने वाली को और कहा ही क्या जा सकता है ?"

'कौन नहीं बिक रहा ? यह कहानी लिखी है, क्या यह बिकने के लिए नहीं है ?"

"यह भी दलील है क्या ? असमत बेचने और किताब बेचने मे तुम कोई फर्क नहीं समझतीं ?"

"कुछ बहुत फर्क तो मालूम नहीं पड़ता।"

"किताब बेचने में न तो मेरी सेहत पर असर होता है और न ही खरीदने वाले के दिमाग पर। न देखने वाले का इखलाक बिगड़ता है, न ही सोसायटी में बदनजमी पैदा होती है। असमत-बर्दा से यह सब-कुछ और इससे भी ज्यादा असमत बेचने वाले की रूह मर जाती है।"

"ये सब इसलिए नहीं क्या कि इन्सान ने वहम और लाइल्मी मे ऐसे मजलसी उसूल बना लिए हैं, जो बेबुनियाद हैं और इन्सान को गुलाम बनाने वाले हैं ?"

"देखो शबनम ! इन्सान ने जमायत मे रहने के लिए जो उसूल बनाए है, वह तजुरबे में आ रहे है और उनसे अमनो-अमान कायम हो रहा दिखाई देता है। औरत और मर्द का ताल्लुक शादी के बाद हो, यह एक मजलसी उसूल है। तुम इसको तोड रही हो और इससे सोसायटी मे बदअमनी फैल जाने का अंदेशा है। मै तुम्हारे इस रवैया मे शामिल नहीं हो सकता।

"सोसायटी को क्या करना है और उसमें कौन-कौन से कानून चलाने चाहिए, यह तुम और मैं फैसला नहीं कर सकते। इसमे तब-दीली, अगर जरूरी है तो, करने के लिए और लोग मुकर्रर हैं।"

"मगर हमारे हालात ऐसे हैं कि हमारे लिए इसके सिवाय और कोई चारा नहीं रहा। देखिये मैं अभी सात साल की बच्ची थी, जब वालिद शरीफ फौत हो गए। मेरी बड़ी बहन दस साल की थी।

हमारा कोई रिश्तेदार ऐसा नहीं था, जो हमारी मदद कर सकता। माँ पर्दा-नशीन औरत हैं। वे कहीं जाकर नौकरी नहीं कर सकती थीं। साथ ही वे पढी-लिखी भी नहीं थीं, जिससे किसी स्कूल में पढाने का काम मिल सक्ता।

"वालिद शरीफ के फौत होने पर कुछ दिन ही काम चल सका। पीछे फाके होने लगे। माँ से लडकियों का भूख से बिलख-बिलख रोना देखा नहीं जा सका। वे एक पडोसी से कुछ उधार लेने गई तो उसने कह दिया कि उधार दिया मिलने की उम्मीद नहीं। हाँ अगर माँ उसकी ख्वाहिश पूरी कर दे, तो वह दी हुई मदद वापिस नहीं माँगेगा।"

"माँ मान गई। लेकिन वह अकेला हम सब का खर्चा नहीं चला सका। उसने माँ की वाकफियत अपने जैसे कुछ और लोगों से करा दी। अब गाडी ढर्रे पर चल पडी और तब से चल रही है।

"माँ ने मेरी बडी बहन को भी इसमें डाल दिया। उसको एक शरीफजादा मिल गया है और वह अब मजे में है। उस शरीफ जादे से वाकफियत फिरोज भाई जान ने कराई थी। इसलिए वह मेरे लिए भी कोई शरीफजादा ढूँढ रहा है। आपसे मेरी वाकफियत इसी सिलसिले में एक तजुरबा है।

"मेरी बहन तबस्सुम के घर वाले अजीज मियाँ से आप बिल्कुल मुख्तलिफ निकले। फिरोज जब तबस्सुम को लेकर अजीज मियाँ के पास गया तो उसका बहन से ताल्लुक हो गया और फिर यह बढता ही गया। अब यह पक्का हो गया है और वे अलहदा घर बनाकर रहने लगे हैं।

"आप तो बिल्कुल ठण्डे मालूम होते हैं। कल सारी रात मैं यहाँ पडी रही हूँ और आपने नीचे झाँक कर भी नहीं देखा। आज भी आपका रवैया अजीब है। एक नौजवान को जैसा रवैया इख्तियार करना चाहिए, वह यहाँ दिखाई नहीं देता।"

सदानन्द हँस पड़ा। इस पर शबनम ने पूछा, "क्या मैं गलत कर रही हूँ?"

"बिल्कुल। एक इन्सान के बच्चे को जैसा रवैया रखना चाहिए, मैं वही रख रहा हूँ। हैवान नहीं हूँ जो बिला इम्तियाज इस काम में लग सकता।"

"इन्सान पैदा होने के वक्त हैवान ही होता है और वह हैवानियत उसके अन्दर से निकल नहीं सकती। यह सब इन्सानों में मौजूद रहती है। कहे जाने वाली तहजीब इसको कुछ अर्से के लिए दबा सकती है पर इन्सान से हैवानियत खारिज नहीं हो सकती।"

"हैवानियत तो मुझमें भी है। मगर मेरी तालीम और तरबीयत मुझको हैवानियत पर हाकिम बना कर रखती है। मैं किसी भी लड़की को, जिससे मेरी शादी नहीं हो जाती, प्यार नहीं कर सकता।"

"तो फिर शादी ही कर लीजिए। इसीलिए तो मैं आई हूँ।"

"पर शादी में सिर्फ वस्ल ही तो सब कुछ नहीं है। यह तो शादी-शुदा जिन्दगी का एक छोटा सा जुज है। इसके अलावा बहुत कुछ है और वह तुम दे सकोगी या नहीं अभी देखना बाकी है।"

"मसलन?"

"मसलन, तुम क्या मेरा मुसलमान होना पसन्द करोगी या हिन्दू रहना? तुम खुद किस किस्म की मुसलमानिन हो? क्या तुम मुतस्सब मुसलमानिन हो या फराख दिल। तुम्हारी औलाद हिन्दू होगी या मुसलमान?

"और भी कई बातें हैं। शादी के बाद कितने खर्च में काम चला सकोगी? मैं एक कातिब कितना कुछ पैदा कर सकता हूँ, यह तुम्हें मालूम है या नहीं?

"इसी किस्म की कई बातें हैं। शादी के पहले उन पर गौर करने की जरूरत है।"

"यह सब हो जाएगा। इस वक्त मैं आई हूँ वस्ल की ख्वाहिशगार

होकर। कल आई थी रुपया कमाने के लिए। आज आई हूँ प्यार की भीख माँगने।"

"रुपया मिल गया था बिना कमाई किए और उसको तुम फेंक रही हो। इसी तरह अगर प्यार भी मिल गया तो हजम नही कर सकोगी, कै कर दोगी।"

"तजुरबा कर देखिए। आइये।" उसने बाहें फैला दी। सदानन्द के दिमाग मे फिर खुमार चढने लगा। वह उठ खडा हुआ और बोला, "चलो घर चलो। तुम यहाँ रहने के लायक नही।"

"कहाँ जाऊँ? माँ घर पर नही है। करीम को देखने शाहदरा गई है।"

"तुम क्यों नही चली गई? तुम्हारा जी नहीं करता था उससे मिलने के लिए?"

"करता था पर उससे ज्यादा आपसे मिलने को तबियत मचल रही थी।"

"पर मै तो बिना शादी के किसी को छूऊँगा तक नही।"

"देखिए जी! तरसाइये नही। बहुत बहस हो चुकी। आप आइये। मै जिन्दगी-भर आपकी गुलाम बनी रहूँगी।"

"नहीं।" इतना कह सदानन्द बैठक के नीचे उतर गया। वह सीधा अपने घर चला गया। वहाँ माँ ने उसे देखा तो प्रसन्न हो कहा—

"सदा! आ गए तुम? बहुत अच्छा किया है। देखो कमला के विवाह की बात हो रही है। क्या कहते हो तुम?"

परमानन्द माँ के पास बैठा हुआ बता रहा था, "जीवनलाल का लड़का अढ़ाई सौ रुपया महीना कमाता है। लगभग पच्चीस वर्ष का है और अच्छा खूबसूरत जवान है। आज वकील साहब ने उसको चाय पर बुलाया था। कमला भी वहीं थी। जब वह चला गया तो मौसी ने कमला को बताया कि यह लड़का है, जो तुमसे विवाह करना चाहता है।

"कमला चुप रही इसका अर्थ मौसी ने लगाया है कि कमला ने

अस्वीकार नहीं किया। अब सदानन्द ! तुम जाकर किसी तरह से उसको पूछो तो वह बता सकेगी। मुझसे वह बात नहीं करती।"

"हाँ सदा ! अब तुम कल जाओ और बात पक्की कर आओ।"

"देने-लेने के विषय में क्या कहता है ?" सदानन्द ने पूछा

"जीवनलाल हमारे घर की हालत जानता है। उसने वकील साहब से कहा है कि वह कुछ नहीं माँगेगा। भूषण और कपड़े तक भी नहीं।

"इस पर भी मौसी कह रही हैं कि कमला उसकी लड़की है और वह ही उसका विवाह करेंगी।"

सदानन्द विचार करता था कि वह भला कमला से क्या कहेगा। माँ जाकर समझाती तो अधिक अच्छा होता। इस पर भी माँ के आग्रह को वह न नहीं कर सका। उसने कहा, "माँ ! तुम भी चलो। भाभी भी चलें और मैं भी चलूँगा। हम सबकी बात को वह न नहीं कहेगी।"

बात तय हो गई। अगले दिन भोजनोपरान्त जाने का निश्चय हो गया।

सदानन्द ने कहा, "प्रभा रमा से मिलने आया हूँ। बहुत दिन हो गए थे उनको देखे।"

तृतीय परिच्छेद

अगले दिन सदानन्द बैठक में पहुँचा तो फकीरुद्दीन ने पूछा, "सदानन्द रात कहाँ रहे हो ?"

"मै अपने घर रहा हूँ।"

"रात-भर बैठक खुली रही है।"

"तो आपने ताला नही लगाया था क्या ?"

"ताली फिरोज ले गया था।"

"तो उस्ताद ! वह आयेगा तो पूछना।"

फिरोज के आने पर उस्ताद ने उसको डॉटा, "ताली किसको दे गए थे ?"

"क्यों, क्या हुआ है ?"

"रात-भर बैठक खुली रही है और यहाँ कोई नहीं था।"

"तो सदानन्द को पता होगा।"

"मै तो रात यहाँ आया ही नहीं।" सदानन्द ने कहा।

फिरोज चुप रहा। उस्ताद कभी सदानन्द और कभी फिरोज को घूरता रहा।

दोपहर के समय फिरोज ने सदानन्द को एक ओर ले जाकर पूछा, "सदानन्द ! क्या हुआ है ?"

"तुम मुझसे पूछे बिना उसको यहाँ क्यो लाये थे ?"

"तो तुम आए थे यहाँ ?"

"हाँ। जब उसने वस्ल के लिए इसरार किया तो मै उसको छोड भाग गया। पीछे नहीं जानता कि क्या हुआ है।"

"तो मौसी के घर जाना पड़ेगा।"

सदानन्द फिरोज़ को वहीं छोड अपने घर चला गया। वहाँ भोजन कर चमेली को पढा, मैक्लोड रोड कोठी पर कमला से मिलने चला गया। पीछे-पीछे माँ और चमेली भी वहाँ पहुँच गई और अब वहाँ कमला से विचार-विनिमय होने लगा।

कमला ने कह दिया, "मै नहीं जानती कि आप सब लोग विवाह के लिए मुझे विवश क्यों कर रहे है ? मुझको अभी तक समझ नहीं आया। समझ आ जाए तो मै मान जाऊँगी।"

सदानन्द ने कहा, "कमला बहन ! कई बातें हैं, जो मनुष्य स्वयं अनुभव नहीं कर सकता। सब लोग यदि पृथक्-पृथक् अनुभव लेने लगें तो संसार मे उन्नति होती रुक जायगी। इस कारण हम अपने पूर्वजों के अनुभवो को प्रमाण मान आगे की बात विचारते है। जब राम ने विवाह किया, कृष्ण ने विवाह किया, शिव और ब्रह्मा ने विवाह किए तो वे मूर्ख नहीं थे। उन्होने कुछ तो अनुभव किया ही होगा कि विवाह के बिना क्या हानि हो सकती है। हम लोग, जो इन सबको साक्षात् भगवान् मानते है, उनके कार्यों को प्रमाण मान ही आगे चल सकते है।"

"मुझको विवाह किए बिना कुछ भी कष्ट प्रतीत नहीं होता।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ कि तुम अपने पर नवीन परीक्षण कर रही हो। वह भय से रिक्त नहीं हो सकता। जीवनलाल जी का लडका सुन्दर, सज्जन, बुद्धिमान और निर्वाह के लिए कमाने योग्य है। ऐसा अवसर फिर मिल सकेगा या नहीं कौन कह सकता है ?"

कमला इस पर चुप कर गई। पाँच बजे जब जीवनलाल कचहरी

से आया तो सब बात तय हो गई। जब सदानन्द घर लौटा तो रमा ने बताया कि एक लडका और एक स्त्री उसको पूछते हुए यहाँ आए थे। सदानन्द का अनुमान था कि यह फिरोज और शबनम हो सकते हैं।

रात सदानन्द बैठक पर नहीं गया। वह घर पर ही सो गया। उसका विचार था कि कुछ दिन वह वहाँ जाना छोड देगा तो शबनम भी वहाँ उससे निराश हो आना छोड देगी।

अगले दिन उस्ताद ने पूछा, "रात फिर नहीं आए सदानन्द ?"

"उस्ताद! बडी बहन की शादी की बातचीत हो रही है। इस-लिए रात घर ही सोया था। क्या रात फिर बैठक खुली रही है ?"

"नहीं। यह बात नहीं। जब तुम यहाँ सोते हो तो मेरे आने से पहले ही काम पर लग जाते हो।"

"अभी कुछ दिन और मेरे लिखने का काम बन्द रहेगा। शादी का इन्तजाम करना है।"

"कहाँ शादी हो रही है ?"

"एक लडका है। हाईकोर्ट में रीडर है।"

"अच्छी तनख्वाह पाता होगा ?"

"हाँ।"

"तुम अपनी शादी कब करोगे ?"

सदानन्द इस प्रश्न का अर्थ न समझ सकने के कारण उस्ताद का मुख देखने लगा। उसने पूछा, "क्या बात है उस्ताद ?"

"कुछ नहीं। फिरोज कल बता रहा था कि उसकी मौसी तुम्हारे घर गई थी।"

"क्यों ? क्या काम था उसको ?"

"यह तो उसने नहीं बताया।"

सदानन्द का विचार था कि उस्ताद इस विषय में और भी अधिक जानता है, परन्तु बताना नहीं चाहता। उसने भी बात वहीं समाप्त कर, अपना बस्ता खोल लिखना आरम्भ कर दिया।

फिरोज आया तो अपने काम पर लग गया। दोपहर के समय जब सदानन्द अपने घर जाने लगा तो फिरोज उसके साथ चल पडा।

"तुम मेरे घर गए थे कल ?"

"हॉ। शबनम की मॉ भी साथ थी।"

"बुर्का पहने थी क्या ?"

"नहीं, उमका ख्याल था कि बुर्के मे गई तो वह मुहल्ले वालो की ऑखो मे चढ जाएगी।"

"क्या काम था ?"

"शबनम कल दिन-भर रोती रही है और ठण्डी आहे भरती रही है।"

"क्यो ?"

"वह तुमसे मुहब्बत करने लगी है।"

"यह मुहब्बत करने का अजीब तरीका है। पैसे कमाने आई थी। पैसे नही मिले तो ग्राहक को ही हजम कर लेना चाहती है।"

"पैसे तो मिले थे। मगर वे वापिस कर दिए है।"

"हॉ। इसलिए कि उसकी नजरो मे मेरी कीमत पॉच रुपये से ज्यादा दिखाई दी है। शायद दम दे देता तो छुट्टी मिल जाती।"

"नहीं दोस्त! यदि तुम उससे पहली रात वस्ल कर लेते तो तुम बीसियो दूसरो की तरह उसकी नजरो मे गिर जाते। उस रात के तुम्हारे अपने पर जब्त रखने ने तुम्हारी कीमत बहुत बढा दी थी।"

"इस पर भी जो कीमत मै अपनी समझता हूँ, वहॉ तक वह पहुँच नहीं सकी। शायद उसकी तालीम और तरबियत उसको वहॉ तक नही पहुँचा सकती।"

"क्या कीमत है वह ?"

"कुछ-कुछ मैने उसको बताई थी। बकाया फिर कभी मिलेंगे तो बता दूँगा।"

"तो तुम उससे मिलोगे ?" फिरोज ने प्रसन्न हो पूछा।

"मैं मिलने मे कोई हरज नही समझता। रात-भर उसका मेरी बैठक मे रहना मुझको ठीक मालूम नही होता। मेरे काम में हरज होता है।"

"तो आज रात वह और उसकी माँ तुमसे मिलने आवेगी। तुम अपनी कीमत बाजा कर देना। तब वे, माँ बेटी, देख लेगी कि उनके पास तुम्हारी कीमत देने के लिए काफी कुछ है या नहीं।"

सदानन्द कहने को तो कह गया, परन्तु वह समझता था कि वह अपने को इस लडकी के साथ बाँधता जा रहा है। इससे वह गम्भीर हो गया। वह मन मे विचार करने लगा था कि कह दे कि आज नही मिल सकता, परन्तु उसके कुछ कहने से पूर्व ही फिरोज, यह कह कि वे रात को मिलेगी चला गया।

यह एक प्रकार से भेंट करने की स्वीकृति थी। सदानन्द के मन मे एक सन्तोष था कि शबनम की माँ भी साथ होगी।

फिरोज वहाँ से चला तो सीधा कूचा दरियाई बाफों मे अपनी मौसी के घर जा पहुँचा। शबनम खिडकी के पीछे खडी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसको गली मे दाखिल होते देख, वह दरवाजा खोलने चली आई। फिरोज के मकान मे दाखिल होते ही उसने पूछा, "क्या हुआ है?"

"वह रात बैठक पर सोने नही गया था। आज तुम दोनों, माँ बेटी की उससे मुलाकात का इन्तजाम कर आया हूँ। वह कहता है कि उसने अपनी कीमत कुछ-कुछ तुम्हें बता दी थी और बकाया आज मिलने पर बता देगा। क्या कुछ दहेज वगैरह की बात है?"

"ऐसी कोई बात नहीं हुई। वे तो सिर्फ यह कह रहे थे कि शादी मे पहले बहुत-सी बातें गौर तलब है।"

"तो यही गौर तलब होना है कि लेना देना क्या होगा?"

"नहीं भाई जान! वे जानते है कि हम बहुत गरीब हैं।"

"तो फिर क्या हो सकता है?"

"चलो। अम्मी खाना बना रही है। आज यहीं खा लो।"

फिरोज ऊपर चढ़ गया। शबनम की माँ पैंतीस वर्ष की एक सुन्दर स्त्री थी। अपनी छोटी अवस्था में वह शबनम से ज्यादा सुन्दर रही मालूम होती थी। बावजूद अपने व्यवसाय के वह किसी किस्म का शृंगार नहीं करती मालूम होती थी। वह फिरोज को यह कह, 'बैठक में बैठो। खाना लेकर आती हूँ' चौके में चली गई।

शबनम फिरोज के साथ थी। उसने कहा, "अम्मी कह रही थीं कि मैं तुमसे शादी कर लूँ।'

"मुझ से?" फिरोज हँस पड़ा। फिर कुछ सोच कर बोला, "मेरी किस्मत में यह शादी नहीं लिखी।"

"क्यों? मुसलमानों में ऐसी शादियाँ तो होती रहती हैं।'

"पर सदानन्द को देखकर तुम मुझको पसन्द थोड़े ही करोगी?"

"अम्मी कहती हैं कि जैसे वह कातिब है, तुम भी हो। दोनों बराबर ही तो हुए।"

"पर शादी तुम्हारी होनी है या अम्मी की?"

"तुम अम्मी से शादी करोगे?"

"हाँ, वे तुमसे ज्यादा खूबसूरत हैं।'

"तो अम्मी को आने दो। मैं बात तय करा देती हूँ।" यह कह दोनों हँसने लगे।

शबनम की माँ खाना लेकर आ गई। एक बड़ी थाली में दस-बारह रोटियाँ थीं और एक बड़ी-सी बाटी में कलेजी भून कर रखी हुई थी।

तीनों उस थाली के पास बैठ गए और खाने लगे। एक बड़ा-सा गिलास पानी का भर समीप रख लिया गया। तीनों उसमें से पानी पीने लगे।

शबनम ने माँ से कहा, "अम्मी! फिरोज भाई जान तुमसे शादी करना चाहते हैं।'

नहीं तो कल फिरोज से विवाह का बन्दोबस्त कर दूँगी।"

"बस मौसी! मैं इस चुड़ैल से शादी नहीं करूँगा।"

"क्यों?"

"दूसरों से न मंजूर की गई छुटकन मेरे लिए ही रह गई है क्या?"

"तो तुम पहले ही शादी कर लो। मैं तुम्हारी माँ से बात कर आई हूँ।"

"पर यह खातून माने भी तो।"

"मान जाओ, शबनम!"

"मैं इससे मुहब्बत नहीं करती।"

"मुहब्बत पीछे हो जावेगी।"

"मै पहले चाहती हूँ।"

"अजब किस्सा है तुम दोनों का।"

"मौसी!" फिरोज ने कहा, "पहले सदानन्द से बात कर लो। मैं समझता हूँ कि वह मान जाएगा। एक बात है। तुम भी जरा अक्ल से काम लेना। शादी होनी है शबनम की और सदानन्द की। तुमको शर्तें लगाने का क्या हक है?"

"क्यों? शबनम मेरी बेटी नहीं है क्या?"

"जब फल पक कर पेड़ से गिर जाता है, तो फिर पेड़ का उससे क्या रिश्ता रह सकता है?"

"यह फल नहीं है। इन्सान की बच्ची है।"

"तो मतलब यह हुआ कि इन्सान को उतनी भी आजादी नहीं, जितनी कि फल या कुत्ते-बिल्ली को है?"

शबनम समझ रही थी कि माँ लाजवाब हो रही है।

"हाँ तो बताइये, क्या कहना चाहती है आप ?" सदानन्द ने शबनम की माँ की ओर देखकर पूछा।

सदानन्द जब रात का खाना खाकर बैठक पर आया था, तो माँ-बेटी दोनों वहाँ उपस्थित थीं। फिरोज जाने को तैयार खड़ा था। सदानन्द के आते ही वह वहाँ से यह कहकर कि उसको शाहदरा जाना है, चला गया। उनको बैठा देख सदानन्द को विश्वास हो गया कि उस्ताद फकीरुद्दीन को इनकी सब बातों का पता है और वे वहाँ उसकी स्वीकृति से बैठी है। अन्यथा वह दरवाजा खुला क्यों छोड़ गया है। इस प्रकार की परिस्थिति को समझ उसने हाथ जोड़ नमस्कार की और बैठकर उक्त प्रश्न पूछा।

शबनम की माँ ने कहा, "उस दिन लड़की आपसे मिलने आई थी। आपका सुलूक देखकर वह आप पर फिदा होने लगी है। वह तो आप के पास बिना शादी के भी रहने को तैयार है। मगर आपने कहा मालूम होता है कि आप शादी के बिना किसी से भी ताल्लुक नहीं रख सकते। इसलिए यह आपसे शादी करने के लिए तैयार है। अब फरमाइए, आप क्या चाहते हैं ?"

"मैं समझता हूँ कि कुछ गलतफहमी हो गई है। मेरे कहने का मतलब शबनम नहीं समझी। मैंने कहा था कि मैं शादी के बिना किसी औरत को बीबी नहीं बना सकता और शादी के पहले बहुत सी बातें गौर करने वाली है।"

"तो गौर कर लिया होगा आपने ? इसीलिए तो मैं आई हूँ।"

"सबसे पहले गौर करने की बात तो यह है कि मैंने कुँवारी लड़की से विवाह करना था। जैसे मैं कुँवारा हूँ, वैसे ही मैं अपनी बीबी कुँवारी चाहता हूँ। अगर मैं अपनी होने वाली बीबी के वस्फ को छोड़ भी दूँ तो इसके एवज में मुझको क्या मिलता है, यह देखना है।"

"एवज में क्या चाहते हैं ?"

"मुस्तकिल मुहब्बत (स्थायी प्रेम)। इसका मुझको विश्वास हो

जाना चाहिए, जिससे मेरी बीवी का दामन आगे तो पाक रहे।"

"यह तो है। लड़की आपसे मुहब्बत करती है। इसका तो खाना-पीना हराम हो गया है।"

"एक ऐसी लड़की, जो अभी कल तक दस-दस रुपये पर अपनी अस-मत बेचती फिरती थी, आज मेरी मुहब्बत में दीवानी हो फिर रही है, मुझको एक दिन के अमल से यकीन नहीं हो सकता। वह अपने फेल से मुझको यकीन दिलाये तब ही तो शादी के लिए दूसरी बातों पर गौर कर सकता हूँ।"

"आप शादी की बात कर रहे हैं या बाजार से खरबूजे ककड़ी खरीद रहे हैं? जिस नफासत के साथ आप मुहब्बत और पाक-दामनी को तोल रहे हैं, वह तो बाजार में नमक-मिर्च खरीदने की तरह होती है।"

"नमक-मिर्च खरीदने के वक्त तो कुछ ज्यादा एतयात की जरूरत नहीं होती। नमक खोटा आ गया तो दो-चार आने का नुकसान हो जाएगा, जो दस-पाँच मिनट की मेहनत-मजदूरी से पैदा हो सकता है। लेकिन बीवी खोटी मिल गई तो उमर-भर की कमाई खतम हो सकती है। मेरी जिन्दगी फजूल गँवाने के लिए नहीं है।"

"तो आप चाहते क्या हैं?"

"मैं शबनम से शादी का वायदा नहीं करता। मैं इसके लिए इसको पूरा मौका देना चाहता हूँ कि जो कुछ यह कहती है, उसको अपने अमल से साबित कर दे। जब मुझको इस बात पर यकीन हो जाएगा कि दरहकीकत यह मुझसे मुहब्बत करती है तो फिर शादी हो सकती है।"

"कितना अर्सा लग जाएगा, इस बात के यकीन करने के लिए?"

"यह भला कोई बता सकता है?"

"देखिए साहब! यहाँ एक गरीब लड़की के गुजारे का भी तो सवाल है। यह खाएगी पियेगी कहाँ से?"

यह सवाल अति विकट था। इस पर भी सदानन्द ने कहा, "खाने-पीने की बात निहायत मामूली है। सब दुनिया खाती-पीती है। खाने-

पीने के लिए कोई पेशा नही करता। इसके लिए भी कोई काम देख लिया जावेगा।"

"आप कैसे और कहाँ इससे मिला करेंगे ?"

"सिर्फ मिलने से काम नहीं बनेगा। इसके लिए तो कुछ और इन्तजाम भी करना पड़ेगा। मैं सोच कर बता दूँगा।"

"तो मै कल से आपसे मिलने यहाँ आया करूँगी। तब तक आप मेरे मुतल्लिक देख लीजिएगा।" शबनम ने खुशी-खुशी कहा।

"नहीं, यहाँ नहीं। यह जगह दिन के वक्त दुकान का काम देती है और रात को मै तन्हाई मे तुमसे मिलना नहीं चाहता। मै सोचकर तुमको फिरोज के हाथ कहला भेजूँगा।"

शबनम की माँ ने उस समय कह दिया कि शबनम सदानन्द से मुहब्बत करती है, परन्तु वहाँ से अपने घर लौट उसने शबनम को डाँटा, "देखो शबनम! यह लडका बहुत ही चालबाज और चालाक मालूम होता है। यह तुमको अपने चंगुल मे ऐसा फँसाएगा कि तुम बेवकूफ बन, इसके आगे-पीछे नाचती फिरोगी। मेरा कहा मानो तो इसका खयाल छोडकर, फिरोज से या किसी दूसरे शरीफ मुसलमान से शादी कर लो।"

शबनम चुपचाप माँ की डाँट-फटकार सुनती रही। जब माँ सब कुछ, जो वह कहना चाहती थी, कह चुकी तो उसने कहा, "अम्मी! अब नींद आई है। मैं सोने जा रही हूँ।"

"मुश्किल यह है कि कल दूध वाले का बिल देना है और आज सारी रात तुमने जाया कर दी है। न खुद कहीं जा सकी हो और न ही मुझको जाने दिया है।"

"मुन्शी फकीरुद्दीन के पास चली जाओ।"

"अब दस बज गए है। पता नहीं वह घर पर होगा भी या नहीं। कहीं चला गया होगा।"

"अम्मी! कोशिश तो करो।"

शबनम की माँ ने कपड़े बदले और घर से नीचे उतर गई।

शबनम ने अपने सन्दूक में से कलम दवात और एक कागज निकाला और लिखने लगी—

"इम्तिहान में न डाल ऋो रहीम ऋो करीम।
बदा है गुनहगार दे दे दिल में नसीम॥
बे सरो सामान है दूर है मंजिल मगर।
तन्हाई में चल पड़ा, खुदा के भरोसे पर॥
मत पूछना सवाल जो कहने में कासिर हूँ।
मुश्किल में न डालना आजिज मुसाफिर हूँ॥
दिल की बातों में बच्चों का खेल छोड़ दे।
नाजुक काच सा है, न इस पर ज़ोर दे॥
टूट गया तो न मुमकिन होगा बनाना यह।
बन पाएगा नहीं होगा विराना यह॥"

यह लिखा हुआ कागज उसने अपने ट्रंक मे रख दिया। वह माँ की एक घण्टा-भर प्रतीक्षा करती रही। जब वह नही आई तो समझ गई कि उसको काम मिल गया है।

प्रात काल माँ लौट आई और दूध वाले का बिल अदा हो गया।

आराम कर वह उठी तो दोपहर हो गया था। उसने शबनम से पूछा, "फिरोज आया था क्या?"

"नहीं।"

"देखो शबनम! फकीरुद्दीन का कहना है कि जब तक सदानन्द मुसलमान होना मंजूर न कर ले, तब तक विवाह नहीं होना चाहिए।"

"क्यों?"

"इसलिए कि तुम्हारी औलाद मुसलमान हो सके।"

"न होगी तो क्या होगा?"

"एक मुसलमान की औलाद गैर-मुसलमान नहीं होनी चाहिए।"

"ठीक है। अगर वे गैर-मुसलमान होंगे तो नुकसान उनका होगा और मुसलमान होंगे तो फायदा उनका होगा। मुझको इसमे क्या? मैं

उनके लिए क्यों परेशान रहूँ ?"

"तो क्या तुम भी इस्लाम छोड़ना चाहती हो ?"

"मैं एक बात छोड़ रही हूँ। वह है पेशा, जो मैं अब तक करती रही हूँ और मैं कुछ नहीं जानती।"

"इस्लाम पर तुम्हारा एतक़ाद कायम रहेगा न ?"

"अभी तक तो है। कल को क्या होगा, मैं आज कैसे बता सकती हूँ ?"

"तो तुम्हारी शादी सदानन्द से नहीं होगी।" इस समय फिरोज़ वहाँ आ गया। वह शाहदरा से अपने साथ रोटी लाया था। उसने शबनम को वह कटोरदान दिया, जिसमें रोटी रखी थीं और कहा, "इनको ज़रा गरम तो कर दो शबनम।"

शबनम रोटी लेकर चौके में चली गई। उसके चले जाने पर फिरोज़दीन ने पूछा, "रात क्या हुआ मौसी ?"

"उसने कहा कि वह शादी का वायदा नहीं करता। हाँ, शबनम को वह मौका देगा कि वह अपनी मुहब्बत का सबूत दे सके।"

"कैसे मौका देगा ?"

"वह बताएगा कि शबनम उसको कहाँ मिला करे। वह उसके आमालों को जानकर ही नतीजा निकालेगा।"

"तो तुम मान गई हो क्या ?"

"मैं कुछ नहीं मानी। यह तो शबनम के इन्कार करने की बात थी। उसने कुछ नहीं कहा। वहाँ चुपचाप बैठी रही। आखिर में शबनम ने कहा कि वह उससे मिलने के लिए बैठक में जाया करेगी और उसने मना कर दिया है। वह तुम्हारी मार्फत बताएगा कि कहाँ वह मिल सकता है।"

"और खाना-पीना कैसे चलेगा ?"

"मतलब यह कि मैं कमाऊँगी और वह खाएगी।"

"यह तो ठीक नहीं।"

"क्या ठीक नहीं ?" शबनम, जो खाना गरम कर ले आई थी, पूछने लगी।

"जो तुम्हारा इम्तिहान ले रहा है, उसी को तुम्हारा खर्चा देना चाहिए।"

"उन्होंने कहा था कि वे इन्तजाम सोचकर बताएँगे।"

'कब तक बताएँगे ?"

"जब उनका मन करेगा।"

"तब तक तुम क्या करोगी ?"

"फिरोज भाईजान से उधार ले लूँगी।"

सदानन्द दोपहर तक काम कर जब घर पहुँचा तो सरोजिनी उनके घर कमला के विवाह के विषय में विचार करने आई हुई थी। उसने यह योजना बनाई थी कि उनकी कोठी में विवाह होगा। बरातियों को एक समय का खाना दिया जायगा और लड़की-लड़के को कपड़े भूषण और कुछ घर का सामान दिया जायगा। यह सब खर्चा वकील साहब करेंगे। इसके अतिरिक्त परमानन्द और सदानन्द अपनी कमाई में से जो कुछ भी अपनी बहन को देना चाहें, देंगे। सदानन्द का कहना था कि हम बहुत गरीब आदमी हैं। इसलिए हमारी बहन का विवाह गरीबों की भाँति होना चाहिए।

सरोजिनी ने मुस्कराकर कहा, "आप गरीब आदमी हैं, पर आपका छोटा भाई तो मोटर में स्कूल जाता है। इससे आपकी गरीबी से कमला के विवाह का क्या सम्बन्ध है ? विवाह तो हमने करना है।"

"प्रमोद तो आपका गोद लिया बच्चा है न ? कमला की बात दूसरी है।"

"नहीं उसकी बात भी वैसी ही है।

"देखो लक्ष्मी देवी ! मैने रमाकान्त की लडकी लेने के लिए पाँच हजार रुपया देने का विचार किया था। परन्तु जब तुमने लडके के लिए कुछ नही माँगा तो मेरी आँखें खुल गईं। मुझको समझ आ गया कि उनको रुपया लेना नही चाहिए। इससे मेरा मन उनकी ओर से विरक्त हो गया। मैंने तब ही निश्चय कर लिया था कि वह पाँच हजार रुपया कमला के विवाह पर व्यय करूँगी। सो वह तो होगा ही। इसके अतिरिक्त आप जो उचित समझें, उसके लिए करें।"

इस परामर्श के पश्चात् कमला के विवाह की तैयारी होने लगी। सदानन्द नित्य मध्याह्नोत्तर वकील साहब की कोठी मे पहुँच जाता और वहाँ विवाह के विषय मे जो कुछ करने को उसको कहा जाता, वह कर देता।

शबनम के विषय मे विचार करने का समय केवल रात को ही होता था। जिस दिन शबनम और उसकी माँ सदानन्द से मिलने बैठक पर आई थीं, उसके तीसरे दिन शबनम की चिट्ठी मिली, जिसमे शेर लिखे थे और नीचे साथ मे यह लिखा था, 'आज तीन दिन हो गए है, आपने कोई तजवीज, जिसका आपने वायदा किया था, नहीं भेजी, जिससे मैं आपके नजदीक आ सकूँ। साथ ही माँ की कमाई मे से अपना गुजर करना मुझको पसन्द नही। इसलिए मैंने फिरोज से पाँच रुपये उधार लेकर अपनी रसद पानी के लिए माँ को दे दिए है। उम्मीद है कि उस रकम के खर्च होने तक आप कुछ बन्दोबस्त कर देंगे।"

इस चिट्ठी के मिलने पर सदानन्द फैसला करने पर विवश हो गया। उसको जब कोई व्यवहार-गम्य योजना नहीं सूझी तो उसने शबनम को चिट्ठी लिख दी, "परसों मेरी माँ से मिलना। वह तुमको जो कुछ बताएगी, करना।" इसके साथ ही उसने घर का पता लिख दिया।

यह चिट्ठी उसने फिरोज को दे दी और उसको पाँच रुपये देते हुए कहा, "शबनम ने लिखा है कि यह मैं तुमको दे दूँ।"

उस दिन दोपहर का खाना खाकर सदानन्द लक्ष्मी के साथ मैक्लोड

रोड पर चला गया, तो मार्ग मे उसने बात चला दी, "माँ !" सदानन्द ने कहा, "परसों एक लडकी तुमसे मिलने आएगी। वह मुझसे विवाह करना चाहती है। मै चाहता हूँ कि तुम उसको देख और समझकर मुझे बताओ कि क्या वह मेरे योग्य होगी।"

माँ हँस पडी। जब सदानन्द विस्मय मे माँ का मुख देखने लगा तो माँ ने गम्भीर होकर कहा, "मै उसका मुख देख कैसे बता सकूँगी कि वह अच्छी लडकी है या बुरी है।"

"माँ ! यह तो मैने नही कहा कि तुम एक दिन मे ही यह बता देना। वह तुम्हारे पास आएगी और तुम उसकी भलीभाँति परीक्षा कर मुझको बताना। तब तक मै बैठक मे सोया करूँगा।"

"यह तो ठीक नही। पराई लडकी को मै अपने घर मे कैसे रख सकती हूँ? उसके माता-पिता कहाँ है?"

"पिता नही है। माँ आवारा है। लडकी भी कुछ अच्छे चाल-चलन वाली नही लगती। परन्तु उसने वचन दिया है कि वह अपने जीवन को सुधारेगी। बताओ माँ ! यह प्रबन्ध हो सकेगा क्या?"

माँ चुप कर गई। दोनो चुपचाप चलते गए। माँ के मन मे सघर्ष चलने लगा था और इसका सकेत उसने कोठी के बाहर खडे हो कर दे दिया। उसने सदानन्द से कहा, "देखो बेटा ! मेरी समझ मे तो यह बात आई थी कि उस आवारा माँ की बदचलन लडकी को अपने बच्चो मे न लाऊँ। चरित्र-हीनता छूत की बीमारी है। इससे बचने का सर्व श्रेष्ठ उपाय, इससे दूर रहना है।

"पर मै सोचती कि मै कौन हूँ, जो यह समझूँ कि वह सुधरने का यत्न नही करेगी। यदि उसके सुधरने की इच्छा सच्ची है तो फिर इसके लिए उसको अवसर न देना पाप हो जाएगा। इस कारण मै इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि भगवान् के कामो मे हमको बाधा नही डालनी चाहिए। उस को कहना कि आ जाए।

"पर एक शर्त है। जिस दिन उसने मेरा कहना नही माना, मै उसे

घर से निकाल दूँगी।"

"ठीक है माँ! मैंने उसको पत्र लिखा है कि परसों वह तुमसे मिले और जैसा तुम कहो करे।"

"तो ठीक है! हम तो उस दिन से ही भगवान भरोसे हैं, जिस दिन तुम्हारे पिता हमें छोड़ गए थे। वह बेअन्त है। उसके काम के ढंग न्यारे हैं। हम क्षुद्र जीव उसकी बातों को समझ नहीं सकते। उसको आने दो। मैं यत्न करूँगी कि वह तुम्हारे योग्य हो जाए।"

पश्चात् दोनों कोठी के अन्दर प्रवेश कर गए।

अगले दिन शबनम का कोई उत्तर नहीं आया। सदानन्द भी अपनी माँ से निश्चय कर चुप था।

निश्चित दिन शबनम सदानन्द के घर का पता पूछती हुई आ गई। उसने मकान के दरवाजे का कुण्डा खटखटाया तो लक्ष्मी, जो उसकी प्रतीक्षा कर ही रही थी, नीचे चली आई। दरवाजा खोल उसने लड़की को सिर से पैर तक देखा। शक्ल-सूरत में उसे लड़की भली ही प्रतीत हुई। उसने पूछा, "क्या चाहती हो?"

शबनम, जो सदानन्द की माँ को पहचानने का यत्न कर रही थी, पूछने लगी, "आप पंडित सदानन्द की माँ हैं?"

"हाँ।"

"मैं आपसे मिलने आई हूँ।"

"ऊपर आ जाओ।"

शबनम लक्ष्मी के पीछे-पीछे मकान के ऊपर चढ़ गई। ऊपर चमेली बैठी थी। बच्चे सब स्कूल जा चुके थे। जब लक्ष्मी ने उसको चटाई पर बैठाया तो शबनम ने अपनी जेब में से चिट्ठी, जो सदानन्द की लिखी हुई थी, दिखाई।

चिट्ठी हाथ में ले फिर वापिस करते हुए लक्ष्मी ने कहा, "तुम्हीं पढ़ कर सुनादो। मैं उर्दू नहीं जानती।"

शबनम ने पढ़ कर सुना दिया। लिखा था, 'परसों मेरी माँ से

मिलना। वह तुमको जो कुछ बताए करना।'

"ठीक है। तो तुम मेरा कहा मानोगी ?"

"हाँ माँ जी ! इसीलिए तो आई हूँ।"

"तो ऐसा करो कि आज से तुम यहीं रहा करो। अब घर जाने की जरूरत नहीं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि तुम अपनी माँ की संगत से अलहदा रह सको।"

"मेरी माँ नहीं मानेगी।"

"तो तुम उसको मनाओ। देखो बेटी ! तुम्हारी माँ आवारा है और अगर तुम भले घर की शोभा बनना चाहती हो, तो तुम उससे अलग हो जाओ।"

आवारा शब्द सुन शबनम का मुख लज्जा से लाल हो गया। इसको लक्ष्मी ने देखा और कहा, "बेटी ! इस घर में हम एक-दूसरे से कोई बात छिपाते नहीं। इसलिए सदानन्द ने तुम्हारे विषय में मुझको सब कुछ बताने योग्य बता दिया है। क्या बताऊँ तुमको कि उसने तुम्हारे विषय मे क्या कहा है।"

शबनम इस प्रकार की बातें सुनने के लिए तैयार हो कर नहीं आई थी। पर अब वहाँ पहुँच कर, अपने मन को इन सब बातों के लिए तैयार करने लगी। उसको चुप देख लक्ष्मी ने कहा, "सदानन्द ने मुझको कहा था कि एक लडकी मेरे पास आएगी। उस लडकी की माँ कुछ आवारा है और लडकी भी कुछ अच्छे चालचलन वाली नहीं है। इस पर भी लडकी सुधरना चाहती है। मैं तुम्हारी देखभाल कर उसे बताऊँ कि तुम उसकी पत्नी बन सकोगी या नहीं।

"अब तुम मुझे बताओ कि इसमें उसने सब कुछ सत्य बताया है या इसमें कुछ गलत भी है ?"

"तो आपने मुझमें क्या देखा है ?"

"मैंने देखा है कि तुम अच्छी सुन्दर लड़की हो। जहाँ तक शरीर

का सम्बन्ध है, तुम सदानन्द की पत्नी बनने योग्य हो। परन्तु यह शरीर तो शादी-शुदा जीवन में बहुत कम काम आता है। परिवार में स्त्री का चरित्र और स्वभाव ही है, जो सबसे आवश्यक होता है।

"विषय-वासना में तो दिन-भर का एक छोटा-सा भाग ही व्यय होता है। शेष समय तो कई अन्य बातों के लिए है। इस कारण तुम्हारे दूसरे गुण क्या-क्या हैं, यह जानना आवश्यक है और तब ही मैं अपनी ठीक-ठीक सम्मति दे सकती हूँ।

"इन गुणों के जानने के लिए तुम्हारा मेरे साथ रहना आवश्यक है। देखो यह सदानन्द के बड़े भाई की पत्नी है और इसको मैं बचपन से जानती हूँ। तभी इसको अपने घर में लाई हूँ और मैं समझती हूँ कि लड़का इससे सुखी और प्रसन्न है।"

"तो आप क्या चाहती हैं?"

"मैं यह कहती हूँ कि यदि तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे विषय में अपनी सम्मति दूँ तो तुमको मेरी देख-रेख में रहना होगा। तब ही मैं ऐसी सम्मति दे सकती हूँ।"

"कितने दिनों तक रहना होगा?"

"देरी की बात तो मैं नहीं कह सकती। हाँ जब भी तुम जाना चाहोगी, जा सकोगी। अब भी यहाँ आकर रहना तुम्हारी अपनी इच्छा पर निर्भर है। हाँ जब तक तुम मेरे घर में रहोगी, तुम्हें मेरी आज्ञानुसार रहना होगा।"

"शादी के पीछे भी?"

"नहीं! फिर तुम जानो तुम्हारा पति। मैं तुम दोनों के कामों में हस्तक्षेप नहीं करूँगी।"

"तो मैं माँ से बात कर आऊँगी। एक बात और है। क्या हम आपस में मेल-जोल रख सकेंगे?"

"सदानन्द रात को बैठक में सोया करेगा और तुम यहाँ मेरे पास रहोगी। वह दोपहर को खाना खाने आता है। उस समय मिलना

चाहोगी तो मिल सकोगी।"

"मैं माँ से राय कर आऊँगी।"

"हाँ। उसकी स्वीकृति से ही आना होगा। तुम अभी नाबालिग हो। उससे एक चिट्ठी लिखाते लाना कि वह तुम्हें मेरे यहाँ भेज रही है।

"एक बात और। जब तुम यहाँ आओगी तो माँ से मिलने नहीं जा सकोगी। वह तुमसे मिलने आएगी तो मिल सका करोगी।"

"तो वह जेलखाना होगा?"

"नहीं। जेलखाना नहीं बल्कि पाप-मोचन स्थान होगा।"

शबनम अपना नाम बताए बिना ही चली गई। लक्ष्मी का विचार था कि अब वह फिर नहीं आएगी। इस कारण जब वह सीढियाँ उतर गई तो हँस पड़ी।

चमेली जो यह सब बातचीत सुन रही थी, विस्मय से पूछने लगी, "माँ जी! यह क्या बात है कुछ समझ मे नहीं आया।"

"सदानन्द बहुत समझदार हो गया प्रतीत होता है। मालूम होता है कि यह लड़की उसको शादी के लिए तग कर रही थी। उसने अपने गले से बला टालने के लिए मेरे पास इसे परीक्षा के लिए भेज दिया है। अब यहाँ रहने की बात सुन, वह भाग गई है।"

लक्ष्मी को उसके चले जाने से प्रसन्नता ही हुई थी।

मध्याह्नोत्तर जब सदानन्द भोजन के लिए घर आया तो लक्ष्मी ने सारी बातें, जो लड़की से की थीं, उसे बता दीं। सदानन्द ने मुस्करा कर पूछा, "माँ तुमने उससे नाम पूछा था क्या?"

माँ अवाक् रह गई। यह तो एक आवश्यक बात थी और यही वह भूल गई थी।

चाहोगी तो मिल सकोगी।"

"मैं माँ से राय कर आऊँगी।"

"हाँ। उसकी स्वीकृति से ही आना होगा। तुम अभी नाबालिग हो। उससे एक चिट्ठी लिखाते लाना कि वह तुम्हें मेरे यहाँ भेज रही है।

"एक बात और। जब तुम यहाँ आओगी तो माँ से मिलने नहीं जा सकोगी। वह तुमसे मिलने आएगी तो मिल सका करोगी।"

"तो यह जेलखाना होगा?"

"नहीं। जेलखाना नहीं बल्कि पाप-मोचन स्थान होगा।"

शबनम अपना नाम बताए बिना ही चली गई। लक्ष्मी का विचार था कि अब वह फिर नहीं आएगी। इस कारण जब वह सीढ़ियाँ उतर गई तो हँस पड़ी।

चमेली जो यह सब बातचीत सुन रही थी, विस्मय में पूछने लगी, "माँ जी! यह क्या बात है कुछ समझ में नहीं आया।"

"सदानन्द बहुत समझदार हो गया प्रतीत होता है। मालूम होता है कि यह लड़की उसको शादी के लिए तग कर रही थी। उसने अपने गले से बला टालने के लिए मेरे पास इसे परीक्षा के लिए भेज दिया है। अब यहाँ रहने की बात सुन, वह भाग गई है।"

लक्ष्मी को उसके चले जाने से प्रसन्नता ही हुई थी।

सुनाई थी, जिसमें उसने इस्लाम पर सख्त नुकताचीनी की थी। उसमें एक बन्द था—

काले बदला बांग इस्लाम आया।
इस मुल्क दा हाल बेहाल होया।
कत्लेआम ते ज़नाह कारी करके।
दायिरा इस्लाम विशाल होया॥

"इसमें इस्लाम की क्या नुकताचीनी है? इसमें तो उस वक्त के मुसलमानों के इखलाक की नुक्ताचीनी है।"

"यह कहा है न कि इस्लाम के आने पर ये सब खराबियाँ हुई थीं।"

"एक बात तो माननी पड़ेगी कि उन दिनों हिन्दू की जान तब बख्शी जाती थी, जब वह मुसलमान हो जाता था।"

"यह सब बकवास है। यह इन्सानी फितरत के खिलाफ है।"

"तो हिन्दुओं ने यह तवारीखें गलत लिख दी है क्या? रेल के स्टेशन के पास, जो शहीद गंज बना है, क्या वह झूठ है?"

"हाँ शबनम! तुम नहीं जानती कि यह हिन्दू कौम कितना झूठ बोल सकती है। ये बनिये हैं। ये अपने मतलब के लिए सब किस्म का फरेब कर सकते हैं।"

"पर भाई जान! अम्मी अभी कह रही थीं कि मैं उसको अपने काबू में कर पहले मुसलमान बना लूँ, तब शादी करूँ।"

"ठीक तो है।"

"पर क्या यह फरेब नहीं? वे तो अपने मतलब के लिए फरेब करते हैं। पर यहाँ तो अम्मी और फकीरुद्दीन इस्लाम के लिए फरेब करने को कह रहे हैं।"

"यह इतना गुनाह नहीं। अपने लिए गुनाह गुनाह है पर खुदा की उम्मत बढ़ाने के लिए किया गुनाह सवाब हो जाता है।"

"तो यही तो उन्होंने अपनी शायरी में कहा है। फिर गलत

"मैने उसको मना नहीं किया। मै दोपहर को डेढ से तीन बजे तक घर पर ही रहता हूँ। वह वहाँ पर आ सकती है।"

"वह रात को बैठक पर मिलने के लिए कह रही है।"

"मै बैठक मे आजकल नहीं सोता। बहन का विवाह है। उसके इन्तजाम मे लगा रहता हूँ और रात घर पर ही सो रहता हूँ।"

"तो किताब का काम खतम हो गया है क्या?"

"हाँ किताब लिखी जा चुकी है। आज मै उसको ताज कम्पनी वालो को देने जा रहा हूँ। उन्होंने पढने के लिए माँगी है।"

"आज तुम्हारा वैसे क्या प्रोग्राम है?"

"आज शाम को मोरी दरवाजे के बाग मे मुशायरा है और मै शायद वहाँ जाऊँ। रात के दस बजे तक वहाँ से फुरसत मिलेगी। पश्चात् मै घर चला चाऊँगा।"

फिरोज चुपकर रहा। दोपहर का खाना खाकर वह मौसी के यहाँ जा पहुँचा। शबनम घर पर थी। उसकी माँ कुछ खरीदने बाजार गई हुई थी। फिरोज ने सदानन्द की बात बताई तो शबनम उससे मिलने के लिए उसके घर जाने को तैयार हो गई।

फिरोज ने कहा, "मगर जल्दी क्या है, शाहजादी साहिबा?"

"मै आज कुछ फैसला करना चाहती हूँ। माँ न तो लिखकर देती है और न ही मेरी उनसे शादी के लिए राजी होती है।"

"देखो शबनम! सदानन्द से तुम्हारी शादी नहीं हो सकती। फकीरुद्दीन ने तुम लोगों के लिए बहुत-कुछ किया है। मै जानता हूँ कि वह एक सौ रुपया महीना के लगभग तुम्हारी माँ को देता है।"

"देखो मेरे उम्मीदवार खाविन्द साहब! मै शादी करूँगी तो सदानन्द से ही करूँगी। फकीरुद्दीन चाहे कुछ भी कहे, तुमसे मेरी शादी नहीं हो सकती।"

"एक दिन फकीरुद्दीन एक ऐसी मजलिस मे जा पहुँचा था, जहाँ सदानन्द अपनी कविता सुना रहा था। उसने एक पजाबी की कविता

ई थी, जिसमें उसने इस्लाम पर सख्त नुकताचीनी की थी। उसमें
बन्द था—

कालें बदलां वांग इस्लाम आया।
इस मुल्क दा हाल बेहाल होया।
कत्लेआम ते ज़िनाह कारी करके।
दायिरा इस्लाम विशाल होया॥

"इसमें इस्लाम की क्या नुकताचीनी है? इसमें तो उस वक्त के
मानों के इखलाक की नुक्ताचीनी है।"

"यह कहा है न कि इस्लाम के आने पर ये सब खराबियाँ
थीं।"

"एक बात तो माननी पड़ेगी कि उन दिनों हिन्दू की जान तब
ी जाती थी, जब वह मुसलमान हो जाता था।"

"यह सब बकवास है। यह इन्सानी फितरत के खिलाफ है।"

"तो हिन्दुओं ने यह तवारीखें गलत लिख दी हैं क्या? रेल के
न के पास, जो शहीद गंज बना है, क्या वह झूठ है?"

"हाँ शबनम! तुम नहीं जानतीं कि यह हिन्दू कौम कितना झूठ
सकती है। ये बनिये हैं। ये अपने मतलब के लिए सब किस्म
फ़रेब कर सकते हैं।"

"पर भाई जान! अम्मी अभी कह रही थीं कि मैं उसको अपने
मे कर पहले मुसलमान बना लूँ, तब शादी करूँ।"

"ठीक तो है।"

"पर क्या यह फरेब नहीं? वे तो अपने मतलब के लिए फरेब
ा है। पर यहाँ तो अम्मी और फकीरुद्दीन इस्लाम के लिए फरेब
र को कह रहे हैं।"

"यह इतना गुनाह नहीं। अपने लिए गुनाह गुनाह है पर खुदा
उम्मत बढ़ाने के लिए किया गुनाह सवाब हो जाता है।"

"तो यही तो उन्होंने अपनी शायरी में कहा है। फिर गलत

"तुम सब काम खराब कर दोगी।"

"तुम देखोगी कि उसको पता भी नहीं चलेगा कि कौन आया है।"

"मैं तब जाने दूँगी, अगर तुम वायदा करो कि पसन्द आ गया तो शादी के लिए तैयार हो जाओगी।"

"यही देखने तो जा रही हूँ।"

शाम चार बजे के लगभग शबनम ने साड़ी-जम्पर पहन लिया तथा थोड़ा-सा शृंगार कर चल पड़ी। आँखों में सुरमा और होंठों में सुर्खी भी उसने लगा रखी थी। जूता-बाजार में पहुँच नासिर शू स्टोर के सामने जा खड़ी हुई। दुकान उसने देखी कि छोटी सी थी, परन्तु काफी माल भरा पड़ा था। शबनम दुकान के बाहर खड़ी थी। दुकानदार उसको सिर से पैर तक देख मुस्कराया और पूछने लगा, "क्या चाहिए?"

"जूता मेरे पाँव का। जरा मुलायम और हल्का-सा चाहिए।"

"पाँव दिखाइये। क्या साईज है?" दुकानदार ने पूछा।

शबनम ने सैंडिल उतारकर नंगे पाँव को सामने थड़े पर रख दिया।

"बहुत छोटे पाँव हैं।"

"हाँ! बड़े होने में ही नहीं आते। क्या करूँ?"

नासिर मियाँ ने एक लाल रंग का जूता निकालकर पहनाया। उसने पाँव दबाकर जूते में डालना चाहा तो शबनम ने दर्द अनुभव करते हुए 'आ...।' कहा।

"ओह, बहुत नाजुक हैं पाँव?" इतना कह उसने हाथ का दबाव ढीला कर दिया।

शबनम ने कहा, "लाइये मैं खुद ही पहनकर देख लेती हूँ।"

"नहीं सरकार! पहना देता हूँ। अबके दर्द नहीं होगा।"

"अजी छोड़िए भी न। आप तो पाँव पकड़कर बैठ गए।"

नासिर ने उसकी आँखों की ओर देखा और हाथों से जरा पाँव दबाया। शबनम मुस्कराई तो वह भी मुस्कराकर कहने लगा, "एक और जूता है। इससे भी ज्यादा मुलायम है। मैं वह दिखाता हूँ।"

इतना कह वह उठकर एक और जूता ले आया।

उसने इसे पहनाया तो शबनम ने कहा, "यह ठीक मालूम देता है। पर साहब! इसके दाम तो बहुत ज्यादा होंगे?"

"जी नहीं कुछ ज्यादा नहीं। आप ले जाइये। दाम नहीं हैं, तो फिर आ जाएँगे।"

इतना कह नासिर ने शबनम की आँखों में देखा। शबनम ने कहा, "फिर भी बता तो दीजिए, कितना दाम देना होगा?"

"आपकी एक मुस्कराहट ही काफी है।"

"तो हमारी मुस्कराहट का दाम बहुत ज्यादा है, या यह जूता बहुत घटिया है?"

"हजूर नहीं। आपकी मुस्कराहट बेमोल की चीज है। यह जूता क्या, इस पर तो सारी दुकान कुर्बान की जा सकती है।"

"ओह! तो आपकी शादी नहीं हुई अभी?"

"नहीं। क्यों?"

"ऐसी बातें तो वही करते हैं, जिनके घर माँगने वाला कोई नहीं हो।"

"कोई हो भी तो आपका मुकाबिला वह क्या कर सकेगा? आप लाजवाब हैं।"

"तो ले जाऊँ यह जूता? मुझको यह पसन्द है।"

"हाँ! बड़े शौक से।"

"तो इसका दाम आज रात को नौ बजे शेरा वाला दरवाजे के अन्दर सफीर वाली गली में महता के मकान में आकर ले जाना।"

"जहे किस्मत। हाजिर हो जाऊँगा सरकार! आपका नाम क्या है?"

"रामप्यारी। महता मेरा भाई है और आजकल दिल्ली गया हुआ है।"

शबनम जूता लेकर चली गई और मुस्कराती हुई घर जा पहुँची।

वहाँ माँ के सामने जूता फेंक बोली, "लो ले आई हूँ यह तुम्हारे नासिर मियाँ ने जूता।"

माँ इसका अर्थ नहीं समझी। उसने पूछा, "कितने में लाई हो?"

"दो आँखें मटकाकर।"

"क्या मतलब?"

शबनम ने पूर्ण कथा सुना दी और कहा, "मैं अब सदानन्द से मिलने जा रही हूँ और उनसे सब बात तय कर ही लौटूँगी।"

"कहाँ मिलोगी उससे?"

"पंजाब पब्लिक लायब्रेरी में वे चार बजे से सात बजे तक रहते हैं। मैं वहीं जा रही हूँ।"

"कब तक लौटोगी?"

"रात खाने के वक्त से पहले ही आ जाऊँगी।"

"पर देखो, उनके घर रहने की बात मुझे मंजूर नहीं।"

"क्यों? वैसे तो तुम मुझको बेवाकिफों के घर में भेजती रहती हो?"

"वह बात दूसरी है।"

"अच्छी बात है।"

शबनम को मालूम था कि सदानन्द लायब्रेरी नहीं जाएगा और शाम को सात बजे भाटी दरवाजे के बाहर मुशायरे में शामिल होगा। कठिनाई यह थी कि वहाँ पर सब आदमी ही होंगे। वह वहाँ अकेली कैसे जाए और फिर उसको कैसे बुलाए। उसको एक बात सूझी। उसने फिरोज को साथ ले जाना ठीक समझा। इसका कारण घर से सीधा कितावत करने वाली बैठक के सामने से गुजरी। वह उस्ताद फकीरुद्दीन के समाने नहीं जाना चाहती थी।

उसने देखा कि फिरोज अपना बस्ता समेट रहा है। इससे वह दुकान के आगे से लौट, मस्ती दरवाजे की ओर कुछ दूर जाकर, खड़ी हो फिरोज की प्रतीक्षा करने लगी। फिरोज शाहदरा जाने के लिए उधर से ही जाया करता था। पाँच मिनट में फिरोज लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ

आता दिखाई दिया। वह समीप आया तो शबनम ने उसके साथ चलते हुए कहा, "कहाँ जा रहे हो फिरोज भाई जान?"

"घर को शाहदरा।"

"पहले मेरे साथ चलो।"

"कहाँ।"

"तुम्हारे सदानन्द से सब बात तय करने जा रही हूँ।"

"मौसी नाराज होगी।"

"पूछ कर आई हूँ।"

"पर वे तो तुम्हारे लिए एक नया खाविन्द तय कर आई है?"

"मालूम है।" इतना कह शबनम ने नासिर मियाँ से भेंट का वृत्तान्त बता दिया। इस पर फिरोज ने कहा, "तो क्या हुआ? एक नौजवान को फुसला कर तुम उसकी हँसी करती हो?"

"नहीं भाई जान! वह तो खुद ही मेरे पाँव को छूकर लुत्फ उठाता मालूम होता था। उसने अपने-आपही कहा था कि मेरी मुस्कराहट पर सारी दुकान कुर्बान कर सकता है। मैंने उसको फुसलाने की कोशिश नहीं की। वह तो पके फल की तरह अपने-आप ही टूट कर गिर गया है।"

"तो क्या हुआ? हम नौजवान तुम जैसी तितलियों को बाजारों में घूमते देखते हैं तो अपने पर काबू खो बैठते हैं। इसीलिए तो हजरत ने तुम जैसों के लिए पर्दा तजवीज किया है।"

"वाह! अपनी नालायकी को छिपाने के लिए दूसरों पर पाबन्दी लगानी पसन्द है तुमको?"

"हजरत वली-उल इस्लाम हमसे बहुत लायक थे। हम अपनी लगड़ी दलीलों से अपनी बातों को साबित नहीं कर सकते। नासिर बेचारे का क्या कुसूर है, जब तुम ही अपनी खूबसूरती उसके सामने से बिखेरती हुई चली आओ?"

"पर सदानन्द को यह खूबसूरती क्यों घायल नहीं कर सकी?"

"मुझको तो शक है कि वह तन्दुरुस्त आदमी नहीं।"

"तो उसके चेहरे पर तुमसे और नासिर से ज्यादा रौनक क्यों है? उसका मेरे पर यह जादू क्यों है, जो मैं उसकी ओर बेबस खिंची जाती हूँ? मेरे मन में भी एक बार ऐसा शक तो हुआ था, परन्तु बाद में गौर करने पर बेबुनियाद साबित हुआ।"

वे मस्ती दरवाजे से बाहर जा पहुँचे थे। अब शबनम ने उसको कहा, "फिरोज भाई जान! तुम नहीं चाहते क्या कि तुम्हारी बहन की जिन्दगी सुधर जाए? माँ जो कुछ करती रही है और उसने जो कुछ हमसे कराया है, क्या वह नावाजिब नहीं था? देखो मेरी थोड़ी सी मदद कर दो। मैं सामने अपना किनारा देख रही हूँ। थोड़ा सहारा दो और मैं तैर कर वहाँ पहुँच जाऊँगी।"

फिरोज मान गया। उसने कहा, "चलो। पर मेरा नाम बीच में नहीं आना चाहिए। बताओ किधर चलना है?"

"पहले मैक्लोड रोड पर वकील कँवरसेन की कोठी पर। अगर वहाँ न मिले तो मोरी दरवाजे के बाहर मुशायरे में।"

"तो रात शाहदरा नहीं जा सकूँगा।"

"मत जाना। हमारे घर ही सो रहना। देखो फिरोज! मेरा मन कहता है कि कल तक कुछ होने वाला है। फकीरुद्दीन को मैं जानती हूँ और यह नासिर उसका ही चुना हुआ लड़का है।"

दोनों वहाँ से वापस लौट पड़े और बजाज हट्टा, रंग महल और वहाँ से मोची दरवाजे की ओर घूम गये। मोची दरवाजे के बाहर से चेम्बरलेन रोड और रत्नचन्द रोड पर जा पहुँचे। जब वे वहाँ से मैक्लोड रोड पर जाने लगे तो शबनम की नजर बाईं ओर एक अहाते पर जा पड़ी। अहाते के बाहर एक बोर्ड लगा हुआ था, जिस पर लिखा था, 'मिशन अहाता। गरीब, मुसीबतजदों की पनाहगाह। आओ यशु मसीह के आग़ोश में पनाह लो। उसकी सरपरस्ती सब के लिए खुली है।"

शबनम खड़ी हो गई। उसने सुन रखा था कि ईसाई लोग जो भी उनके पास जाते हैं, सबको पनाह देते हैं।"

वह चल पड़ी। फिरोज ने पूछा, "यह क्या था ?"

"पढ़ नहीं सकी।"

"कुछ हजरत ईसा के मुतल्लिक लिखा है।"

"हाँ।" इतना कह वह चुपचाप मन में कुछ सोचती रही।

मैक्लोड रोड पर कॅवरसेन की कोठी पर जब वे पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ शादी के लिए सजावट हो रही है। बिजलियाँ लग रही थीं। झँडियाँ, पत्तों के बन्दनवार और कोठी के फाटक पर बेलों का द्वार बनाया जा रहा था। वह वहाँ खड़े हो गए। फिरोज ने एक से पूछा, "यहाँ क्या है भाई ?"

"वकील साहब की लडकी की शादी है।"

"पण्डित सदानन्द कहाँ मिलेंगे ?"

जिससे प्रश्न किया गया था, वह ध्यान से फिरोज और उसके पास खड़ी लड़की को देखने लगा। पश्चात् उसने पूछा, "क्या काम है ?"

"उन्हीं से काम है।"

"बताओ। मैं उसका भाई हूँ।"

फिरोज अभी सोच ही रहा था कि कुछ कहे अथवा न, शबनम ने आगे बढ़ कर कहा, "आज मुशायरा है न। मैं भी उसी में हिस्सा लेने के लिए अमृतसर से आई हूँ। पण्डित जी ने लिखा था कि मैं यहाँ आ जाऊँ और वे मुझे वहाँ ले चलेंगे और मेरी वाकफियत करा देंगे।"

यह परमानन्द था। उसने कह दिया, "वह तो वहाँ चला गया है।"

"हमको कुछ देरी हो गई है। गाड़ी लेट हो गई थी।"

मोरी दरवाजे के बाहर दो-तीन हजार लोगों का मजमा लगा था

लाहौर के सब विख्यात कवि, उर्दू, हिन्दी, फारसी और पंजाबी में कविता कहने वाले इकट्ठे हो रहे थे। पंजाबी की कविता कहने वालों में सदानन्द मशहूर था। और लोग उसकी कविता सुनने के लिए लालायित हो रहे थे।

मुशायरा तो शाम सात बजे से आरम्भ हो चुका था। इधर-उधर के कई कवि अपनी-अपनी कविता सुना रहे थे। रात के नौ बजे मशहूर कवियों की बारी आई। मौलाना बारी साहब, उस्ताद रियाज अहमद साहब और मौलवी साबरी बारी-बारी में आए और अपनी-अपनी तसरीफें सुना कर सुनने वालों की वाह-वाह में बैठ गए। अब मजलिस के सदर ने सदानन्द का नाम बुलाया, "हजरात!" उसने कहा,

"अब लाहौर के मशहूर नौजवान कवि सदानन्द अपनी कविताएँ सुनावेंगे।"

लोगों ने तालियाँ बजा कर सदानन्द का स्वागत किया और सदानन्द अपने नियमानुसार पहले भगवान की उपासना का गीत गाने लगा।

उसने गाया—

"जाऊँ कहाँ तज चरण तिहारे
जिसका नाम पतित पावन है, जिसे दीन अति प्यारे ॥"

शायरों की मजलिस में तुलसी-निर्मित गीत का पसन्द किया जाना कठिन था। जहाँ इश्क, प्यार, मुहब्बत के मरहलों, आशिकों के दर्दे-दिल पर पूरा जोर था, वहाँ

'कौन देव बराई बरद हित हरि-हरि अधम उधारे'

सुनने के लिए लोगों को तैयार करना, यह सदानन्द की मधुर वाणी का ही काम था। जब उसने गाया—

"देव दुनिज मुनि नाग मनुज माया विबस विचारे
किन के हाथ दास तुलसी प्रभु कहाँ अपन पौ हारे
तज चरण तिहारे ॥"

सुनने और समझने वालों की आँखें तरल हो उठीं।

इसके पश्चात् सदानन्द ने अपनी एक हिन्दी में बनाई कविता सुना दी। उसने सुनाया,

"नव कलियन के रस के लोभी क्यों मधुर-मधुर गुण गाते हो
कली-कली पर घूम-घूम कर ले-ले कर रस उड़ जाते हो
हैं अति कोमल ये दीन-हीन श्वास मात्र से व्याकुल होतीं
लज्जातीं लाल हो जातीं हैं जब निठुर भ्रमर तुम आते हो॥

कुछ अधर खिले मुस्कान भरे
रहे वक्षस्थल हैं कुछ उभरे
ऐसी कलिका के यौवन में
विष घोल निठुर कित जाते हो॥

विष भरे हुए निःश्वासों ने तेरे है यह उत्पात किया
उठते यौवन को पीस मसल फिर निर्मम राग सुनाते हो॥
इस पर अट्टाहास की हँसी तेरी स्वच्छन्द निकलती है
यह शिष्टाचार तुम्हारा है इसको तुम प्रेम बताते हो?

ऐसी मुर्झाई पत्तियों से
दुःख भरी आह इक निकलेगी
जो भस्म करेगी सब जग को
देखें फिर भी कुछ गाते हो।"

भँवरे के इस चरित्र-चित्रण और उसके अन्त पर सब वाह-वाह कह उठे। किसी ने आवाज लगा दी, 'पंजाबी में।' बस फिर क्या था सब ओर से पंजाबी में कविता की मांग होने लगी। सदानन्द ने सदर की ओर देख कर आज्ञा माँगी और फिर कहने लगा—

'चल पई पुरवई सावन दी पी मिलन दी चाह हुन उठ पई ए
परदेस गए पियरवा मोरे अते हूक विरह दी उग पई ए
श्याम रंग दियाँ परियाँ ने झुरमुट अम्बर विच पाया ए
गल्लां गोरियाँ मेरियाँ चुम्मन नूँ लहरा बूँदा दा इक आया ए

पुरवा डोल गई कन विच बोल गई
साजन आवन दी गल ओ खोल गई ॥

पवन अँगना विच जद चल पई गया उड्ड दुपट्टा सिर दा ए
जूड़ा खुल गया बाल उड्ड पये चन्दा बदलां विच पिया फिरदा ए
कोयल कू-कू करदी कूकदी ए याद प्रीतम विच हैरान होई
गल प्रीतम दे इक हार लेई विन्ही जान नूँ कली परेशान होई ॥

पुरवा डोल गई कन विच बोल गई
साजन आवन दी गल ओ खोल गई ॥"

सदानन्द का 'साजन आवन दी गल ओ खोल गई' कहना दिमाग में एक वलवला पैदा करने वाला सिद्ध हो गया।

अभी लोग एक और एक और की माँग कर रहे थे कि किसी ने एक चिट सदानन्द के हाथ में दे दी। सदानन्द ने पढ़ी और उसके माथे पर त्योरी चढ़ गई। फिर कुछ विचार कर, उसने पुनः कागज पर लिखे को पढ़ा। उस पर लिखा था—

"परदेस तो पुरवा आई ए पाती सजनी दी संग लाई ए।
साजन आ जा सजनी बेकल ई बैठी तकदी दे, दुहाई ए ॥
पुरवा डोल गई कन विच बोल गई।
साजन आवन दी गल ओ खोल गई ॥
शबनम।"

सदानन्द उठा और मजमे से बाहर निकल आया। वह इधर-उधर शबनम को ढूँढने लगा। इसी समय फिरोज उसके पास आकर बोला, "सदानन्द ! बहुत परेशान किया है तुमने।"

"कहाँ है वह ?"

"वह बैठी है।" इतना कह उसने घास पर बैठी शबनम की ओर संकेत कर दिया। सदानन्द उसके समीप जा कहने लगा, "यहाँ क्या कर रही हो तुम ?"

"जो एक औरत डोलती पुरवाई में कर सकती है।"

"हूँ। तो यह बात है। चलो ! यहाँ ठीक नहीं।"

तीनो मोरी दरवाजे की ओर चल पड़े। मार्ग मे फिरोज ने बताया, "हम तुम्हे ढूँढते-ढूँढते मैक्लोड रोड पर जा पहुँचे थे। वहाँ शादी की तैयारी होती देख तुमसे मिलने की उम्मीद करते थे। वहाँ से यहाँ आए। अब तुम्हारी कविता हो चुकने पर ही हम तुम्हें बुला सके हैं।"

उस बाग मे एकान्त स्थान देख सदानन्द बैठ गया और उनको बैठाकर पूछने लगा, "आज मेरी तलाश क्यो है ?"

"तलाश तो बहुत दिनो से थी, मगर आप तक पहुँच नहीं पाती थी।" शबनम ने कहा।

"तुम मेरी माँ से मिली थी, मगर बाद मे वहाँ कभी नहीं आईं।"

"आपकी माँ ने कहा था कि अपनी माँ से चिट्ठी लेकर आऊँ। वह मिल नहीं सकी। आज बहाना बना आई हूँ यह पूछने के लिए कि क्या करूँ ?"

"देखो शबनम ! तुम अभी नाबालिग हो। तुम्हारा अभी अपनी माँ की इजाजत के बिना कहीं भी जाना ठीक नहीं। जो तुमको ले जाएगा वह मुजरिम है। इसलिए अगर तुम्हारी माँ तुमको हमारे घर मे जाकर रहने की इजाजत नहीं देती तो तुम बालिग होने तक उसके पास ही रहो। कहो तो बीस रुपये महीना तुम्हारे खर्च के लिए मैं भेज दिया करूँगा।"

"खर्चे का सवाल तो पीछे देखा जायगा। मेरा तो एक जूता बेचने वाले के साथ कल या परसों विवाह भी हो जाएगा।"

"तो फिर मै क्या कर सकता हूँ ?"

"कोई इलाज नहीं इसका ?"

"इलाज तो है। मगर शहर मे बलवा हो जाएगा। हिन्दू-मुस्लिम फिसाद खड़ा हो जाएगा। कई मारे जाएँगे और कई लुट जाएँगे। इतनी जिम्मेदारी की बात मै नहीं कर सकता।"

"पर यह क्यों होगा ? मैं खुद कह दूँगी कि मैं माँ के पास रहना नहीं चाहती।"

सदानन्द कुछ विचार में पड़ गया। पश्चात् उसने कहा, "एक बात है। तुम हिन्दू हो नहीं सकती, तुम अपना विवाह स्वयं नहीं कर सकतीं; तुम माँ की सरपरस्ती से निकल नहीं सकती। सिर्फ एक चीज है और वह यह कि तुम अदालत में हाजिर होकर माँ के पेशे की बाबत और माँ का तुमसे पेशा कराने की बाबत बयान दे दो। तब अदालत तुम्हारी हिफाजत के लिए कुछ-न-कुछ बन्दोबस्त कर सकती है।"

"पर मैं अदालत में जाकर अपनी माँ के खिलाफ यह सब कुछ कहूँ तो सब लोग मुझ पर हँसी करेंगे और फिर आप मुझसे शादी कर लेंगे क्या ?"

"मेरी शादी की शर्त तो एक ही है। मेरी माँ के पास जाकर रहो। जब वह तुम्हारी सिफारिश करेंगी तो मैं शादी कर लूँगा।"

"पर अब यह कैसे हो सकता है ? मैं बालिग हूँगी इक्कीस साल की उमर होने पर। उसमें अभी चार साल बाकी हैं। तब तक कहाँ रहूँ ?"

"तुम कल सुबह वकील साहब की कोठी पर पहुँच जाओ। वहाँ उनसे राय कर कोई तरकीब निकल आएगी।"

"और कोई तरीका नहीं क्या ? क्या मैं आज ही आपके साथ भाग नहीं सकती ?"

"नहीं। परसों कमला बहन की शादी है। मैं यदि भागना भी चाहूँ तो नहीं भाग सकता। साथ ही मैं इसको ठीक नहीं समझता।"

"तो फिर ?"

"सुबह आठ बजे वकील साहब की कोठी पर आ जाना। बातचीत हो जाएगी।"

चतुर्थ परिच्छेद

प्रभा और रमा जुडवाँ थीं। बचपन से ही वे इकट्ठी सोतीं, खाती-पीती और खेलती थीं। प्रकृति ने रूप-रंग भी उनको एक जैसा ही दिया था। केवल रमा की दाहिनी गाल पर एक तिल था, जो प्रभा के नहीं था। इससे ही एक-दूसरे की पहचान होती थी। घर वाले तो इस भेद को जानते थे, परन्तु बाहर वाले सदा भूल कर बैठते थे।

जब नन्दलाल ने घर छोडा तो रमा प्रभा सात वर्ष की थीं। वे स्कूल जाने लगी थीं। परन्तु घर की व्यवस्था के कारण पढाई में बिल्कुल कमजोर थीं और अभी पहली कक्षा में ही बैठी थीं।

नन्दलाल के घर से चले जाने के पश्चात् घर की अवस्था सुधरने लगी। लक्ष्मी बच्चों की अवस्था पर अधिक ध्यान देने लगी और प्रभा रमा पढाई कर स्कूल में उन्नति करने लगीं। उन्होंने अब दो वर्षों में तीन श्रेणियाँ पास कर लीं। ये दो-तीन वर्ष उनके भारी संघर्ष के थे। आयु बढ़ी हो रही थी और पढाई होती कम थी। अपने से छोटी आयु की लडकियों में बैठने में उन्हें लज्जा लगती थी और लडकियाँ भी उनकी हँसी उड़ाती थीं। इसके अतिरिक्त उनके कपड़े दूसरी लडकियों से काफी घटिया होते थे। उनकी पुस्तकें फटी पुरानी होती थीं। कभी पैन्सिल नहीं होती थी और कभी उनके पास कापी नहीं होती थी।

लड़कियाँ स्कूल में आधी छुट्टी के समय कुछ खाती-पीती थीं और इनके पास पैसे न होने के कारण ये दूसरों का मुख देखती रहती थीं।

ज्यूँ-त्यूँ कर तीन वर्ष व्यतीत हुए और अब वे अपनी आयु की लड़कियों में बैठने लगीं। यह लज्जा की बात मिट गई। अब कपड़े भी उनके साफ सुथरे होते थे, यद्यपि वे कीमती नहीं थे। इस पर भी उनके घर की आर्थिक व्यवस्था ऐसी नहीं थी कि उनको जेब खर्च के लिए कुछ मिलता।

इसी तरह कुछ और समय व्यतीत हो गया। इस समय उनकी आयु तेरह वर्ष की थी और वे सातवीं कक्षा में पढ़ती थीं। दोनों अपनी माँ की भाँति सुन्दर निकल रही थीं। कौमार्यावस्था में पदार्पण करने से मन के उद्गार उग रहे थे। इस पर भी उन पर साधनहीनता की लगाम लग रही थी।

एक दिन उनकी एक सहेली को शरारत सूझी। वह देख रही थी कि दोनों बहनें स्कूल में एक पैसा भी व्यय नहीं करतीं। उसका अनुमान था कि वे इतनी गरीब हैं कि उनके माता-पिता उनको जेब-खर्च के लिए कुछ नहीं देते। उसने इनको तंग करने की सोची।

आधे वक्त की छुट्टी थी। उनकी सहेली मोहिनी इस छुट्टी के समय स्कूल से बाहर एक खोंचे वाले से पानी के बताशे खा रही थी। दोनों बहनें कुछ अन्तर पर खड़ी थीं। मोहिनी ने उनको देखा तो आवाज़ दे दी, "प्रभा ! ओ प्रभा ! कांजी के बताशे खाओगी ?"

"नहीं। तुम खाओ।' प्रभा ने उत्तर दिया।

"क्यों, जी नहीं करता ?'

दोनों चुप रहीं। इस पर मोहिनी ने प्रभा के पास जाकर, उसको बाँह से पकड़कर अपने समीप बैठा लिया और बताशे वाले से कहा, "एक पत्ता इनको भी दे दो।"

प्रभा खाना नहीं चाहती थी, परन्तु जब खाने लगी तो उसकी दृष्टि रमा की ओर भी गई। वह उनकी ओर पीठ कर खड़ी थी। प्रभा की

दोनों के बीच में बैठी थी। वह उनकी कठिनाई का अनुमान लगा, मन-ही-मन आनन्द अनुभव कर रही थी।

रमा मन में बदला लेने का विचार कर रही थी। वह सोचती थी कि मोहिनी के धोखे का बदला तो उसको ही लेना चाहिए। वह अपनी बहन प्रभा को भोली-भाली सरल-चित्त समझती थी।

मोहिनी ने हँसी उडाने के लिए प्रभा से पूछा, "प्रभा! पैसे दे दिए थे?"

"हाँ।" रमा ने उत्तर दिया।

"कहाँ से लाई थी?"

"अपनी माँ से।"

"तुम तो कहती थी कि तुम्हारी माँ तुम्हें जेब-खर्च नहीं देती?"

"हाँ। परन्तु उसने हमको एक रुपया दे रखा है, जिससे तुम-जैसी चुड़ैलों से वास्ता पड़े, तो हमको लज्जित न होना पड़े।"

"मैं चुडैल हूँ क्या?" मोहिनी ने माथे पर त्योरी चढाकर पूछा।

इस समय अध्यापिका का ध्यान इनकी ओर चला गया। उसने मोहिनी के माथे पर त्योरी चढी देखी तो डाँट कर कहा, "मोहिनी! चुप करके बैठो। नहीं तो कमरे से बाहर निकाल दी जाओगी।"

मोहिनी चुप कर गई। घण्टी बजी और वह अध्यापिका चली गई। दूसरी अध्यापिका अभी नहीं आई थी। रमा ने अपने कुर्ते के साथ लगी सुई को निकाल लिया। वह स्कूल आने से पूर्व देवानन्द की कमीज मुरम्मत कर रही थी। मुरम्मत करने के पश्चात् अपनी आदत के अनुसार उसने सुई अपने कुर्ते में लगा ली थी और पश्चात् उसे ध्यान नहीं रहा और वह सुई उसके कुर्ते के साथ ही लगी रही। इस समय सुई उसके काम आई। अध्यापिका कमरे से बाहर निकली ही थी कि रमा ने दूसरी ओर की लडकी से बातें करते-करते सुई मोहिनी की जाँघ चुभो दी। मोहिनी चिल्लाकर खडी हो गई। रमा अपने साथ बैठी लड़की से कह रही थी, "हिन्दी की अध्यापिका नहीं आवेगी।"

"क्यों ?" उस लड़की ने पूछा।

"उनके सिर में दर्द हो रहा है।"

इसी समय मोहिनी के चिल्लाने से सब लड़कियों का ध्यान उसकी ओर चला गया। मोहिनी के एकदम उठने से उसकी पुस्तकों का थैला डैस्क के नीचे गिर पड़ा और पुस्तकें डैस्क तथा बैंच के नीचे बिखर गईं।

मोहिनी को जब पीड़ा से कुछ शान्ति हुई तो वह रमा की ओर देख कर पूछने लगी, "यह तुमने क्या किया है ?"

"क्या किया है ?"

"बाहर चल कर बताऊँगी।"

"बता लेना।" इस समय दूसरी अध्यापिका आ गई। सब लड़कियाँ अपने-अपने स्थान पर बैठ गईं। मोहिनी बैंच के नीचे हो अपनी पुस्तकें समेटने लगी। इस पर अध्यापिका ने डाँटकर पूछा, "मोहिनी! नीचे बैठी क्या कर रही हो ?"

उसने नीचे से निकल कर कहा, "बहन जी! पुस्तकें गिर पड़ी थीं, उठा रही हूँ।"

मोहिनी फिर नीचे घुस कर पुस्तकें निकालने लगी। इस समय उसकी जेब से उसकी पर्स निकल कर गिर पड़ी। रमा ने यह देखा और पाँव की ठोकर से उसको तीसरी बैंच के नीचे ढकेल दिया।

जब यह घण्टी समाप्त हुई तो मोहिनी ने कहा, "रमा की बच्ची! आज बाहर चल तो। तुमको मजा चखाऊँगी।"

"पर मैंने क्या किया है ?"

"तुमने मुझे सुई चुभोई है।"

"मैं तुम्हारी कसम खा कर कहती हूँ कि मैंने नहीं चुभोई।"

"मेरी कसम क्यों खाती हो ? अपनी माँ की कसम खाओ।"

"हाँ खाती हूँ।"

इस पर भी मोहिनी को सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा, "बाहर

चलकर बात करूँगी।"

प्रभा रमा से अधिक बल शाली थी। उसने मोहिनी की चोटी खींच कर कहा, "हाँ हाँ देख लेना।"

मोहिनी को ज्ञान हो गया कि ये दो हैं। अब उसको शान्ति हुई। तने में तीसरी और अन्तिम अध्यापिका आ गई। अध्यापिका पढ़ा ही थी परन्तु रमा मन में विचार कर रही थी कि सुई चुभोने से मजा आया है, परन्तु इतना पर्याप्त नहीं। कुछ और करना चाहिए।

इस पर उसको मोहिनी की पर्स याद आ गई। वह उसको तीसरी के नीचे पड़ी दिखाई दी। उसका मन कह रहा था कि उसमें और पैसे हैं। ठोकर मारने के समय वह कुछ भारी प्रतीत हुआ था। इस र के विचारों में स्कूल का समय समाप्त हो गया।

लड़कियाँ उठ-उठ कर जाने लगीं। घण्टी बजते ही मोहिनी भी दी। अब वह डर गई थी कि दोनों बहनें तो उसका कचूमर ही ल देंगी।

लड़कियों के कमरे से निकलते ही रमा तीसरी बेंच के नीचे घुस कर नेकाल लाई। पर्स उसने खोल कर देखा। उसमें पाँच रुपये का एक ग्रौर रेजगारी थी। रमा ने रुपये और रेजगारी जेब में रख ली र्स को खिड़की में से दूर बाहर फेंक दिया।

भा को कुछ समझ नहीं आया। उसने पूछा, "रमा क्या था?"

कुछ नहीं चलो।"

नों स्कूल से निकल कर घर की ओर चली गई।

गले दिन घर से चलते समय प्रभा ने पूछा, "बताशे वाले के लेने?"

रे पास हैं। भैया से माँग लिए थे।"

कितने लिए हैं।"

प्र आने। उन्होंने कहा है कि हम दोनों के लिए एक सप्ताह के "

हाथ पकड़ लिया और अपने पास बिठा लिया। बताशे वाले को रमा ने कहा, "इसको भी खिलाओ। पैसे मैं दूँगी।"

प्रभा को सन्देह हो गया। आज रमा खुले दिल खर्च कर रही थी। इस कारण मोहिनी के चले जाने पर उसने पूछा, "वह कल पर्स ही थी, जो तुमने खिड़की में से फेंकी थी।"

"प्रभा! चुप रहो। उसकी चतुराई का फल उसको मिला है। कल जब उसकी किताबें गिर गई थीं, तो पर्स भी गिर पड़ी थी। वह पर्स उठाना भूल गई थी।"

"पर यह तो चोरी हो गई?"

"चोट्टे की चोरी चोरी नहीं होती।"

"माँ को पता चल गया तो पीटेंगी।"

"पता क्यों लगेगा? तुम बताना नहीं।"

"मन डरता है।"

"इसमें डरने की क्या बात है? देखो न! मोहिनी ने हमको कितना धोखा दिया है। यदि बताशे वाला पैसे कल ही माँगता तो हमारी कितनी हेटी होती। उस भले आदमी को हम पर दया आ गई, पर मोहिनी को अपनी करतूत पर शोक नहीं हुआ।"

प्रभा सरल-चित्त लड़की थी। इस पर भी दोनों एक-दूसरे से इतना स्नेह रखती थीं कि एक-दूसरे का विरोध नहीं कर सकती थीं। रमा अति चंचल स्वभाव रखती थी और प्रभा कहा मानती रहती थी।

इस एक साधारण-सी घटना का परिणाम बहुत बड़ा हुआ। पाँच रुपये दस आने समाप्त होने तक दोनों को बाजार से मिठाई इत्यादि स्वादिष्ट पदार्थ खाने का स्वाद पड़ गया। रुपये समाप्त हुए पर खाने की चटक लगी रही। अब जीवन फीका प्रतीत होने लगा और निर्धनता अखरने लगी।

प्रभा ने तो अपना जीवन सँभाल लिया परन्तु रमा के स्वभाव की चंचलता ने जीवन में विषमता उत्पन्न करनी आरम्भ कर दी। परिणाम

यह हुआ कि पहले माँ के पैसे चोरी होने लगे। फिर परमानन्द के। तदनन्तर पड़ोसियों के, जिनके घर रमा का आना-जाना था।

रमा पड़ोसियों के घर जाती तो उनके घर में कहीं इकन्नी-दुअन्नी पड़ी मिलती तो उठा लेती। एक दिन वह रामलाल की माँ की चवन्नी उठा लाई। इस प्रकार का धन तो जमा नहीं किया जा सकता। चोर को खर्च करने की इच्छा रहती है। वास्तव में धन का मजा तो उसके खर्च करने में ही मिलता है।

रमा रामलाल के मकान से निकलकर सोचने लगी कि क्या खरीदे। वह बाजार में गई और दुकानों पर कोई खरीदने योग्य वस्तु देखने लगी। उसकी दृष्टि एक बिसाती की दुकान पर लगे हेयर-क्लिपों पर पड़ी। वह वहाँ खड़ी हो गई। लड़कियाँ अपने बालों को बाँधने के लिए क्लिप लगाती थीं। यद्यपि रमा प्रभा के बाल श्रेणी की किसी भी लड़की से कम लम्बे और कम सुन्दर नहीं होते थे, इस पर इनके पास क्लिप नहीं होते थे।

रमा ने दुकानदार से पूछा, "ये कितने के हैं?"

"चार-चार आने के हैं।"

"दो-दो आने वाले नहीं है।"

दुकानदार रमा का मुख देखने लगे लगा। पश्चात् कुछ सोच बोला, "तुम्हारे पास दो आने हैं, क्या? अच्छा यह ले जाओ और बाकी दो आने फिर दे जाना।"

"नहीं मेरे पास चार आने हैं। परन्तु मुझको दो क्लिप चाहिएँ।"

"यह तो अकेला ही लगाया जाता है।"

"इस पर भी मुझे दो चाहिएँ।"

"तो दो ही ले जाओ। चार आने फिर दे जाना।"

"नहीं तुम छोटे निकाल दो। मैं उधार नहीं करती।"

"अच्छा तुम चार आने में ही दो ले जाओ।"

"क्यों? क्या पहले दाम ज्यादा बताए थे, तुम मुझको लूटना

चाहते थे ?"

"नहीं लड़की ! लूटना नहीं चाहता था । हां, अब लूटना चाहता हूं । जो कुछ तुमको जरूरत हो चार आने में ही ले जाओ ।"

"सच ?" रमा को शरारत सूझी ।

"हॉं । इस शोकेस में से जो मन में आए ले जाओ । सब कुछ एक चवन्नी में ।"

"तुम सबको ऐसे ही देते हो ?"

"नहीं सरकार ! यह रियायत तुम्हारे लिए है ।"

"क्यों ?"

"इसका उत्तर लेना चाहती हो ।"

"हॉं ।"

"तो यह लो । घर जाकर इसमें मुख देखना । तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल जायगा ।" इतना कह दुकानदार ने एक छोटा-सा दर्पण निकालकर दे दिया ।

"यह भी चार आने के बीच ?"

"हॉं ।" दुकानदार ने कहा, "और इसके साथ यह सब ।" इतना कह दुकानदार ने एक लिफाफे में वह शीशा, दो क्लिप, एक कंघा और एक क्रीम की शीशी डालकर उसे पकड़ा दिया ।

रमा ने वह बण्डल ले लिया और चवन्नी निकालकर देने लगी, परन्तु दुकानदार ने नहीं ली और कहा, "चवन्नी तो तुम पहले दे चुकी हो ।"

"नहीं तो ।"

दुकानदार मुस्कराया और बोला, "मेरी प्यारी लड़की ! तुमने चार आने दे दिए हैं । तुम भूल गई हो । जाओ अब दूसरे ग्राहक आने लगे हैं ।"

रमा उस बण्डल को उठाकर घर चली गई । वह हैरान थी कि दुकानदार ने उसको यह सब कुछ किस प्रकार दे दिया है । चवन्नी

उसके हाथ में ही थी। यह सामान भी उसके पास था। यह कैसे हो गया ? वह मन-ही-मन दुकानदार की मूर्खता पर हँसती रही।

रमा के मन मे कुछ अज्ञात भय समा गया था। इस कारण उसने सारा सामान, जो दुकानदार ने उसे दिया था, छिपाकर रख दिया। वह माँ को यह दिखा नहीं सकती थी। उसका मन कहता था कि कुछ गलत बात हो गई है। इस पर भी वह सामान वापस करने नहीं गई।

उक्त घटना के कई मास पीछे की बात है। उसी बाजार मे से वह जा रही थी कि उसी दुकानदार ने रमा को आवाज दी। रमा को इससे विस्मय हुआ कि वह उसका नाम कैसे जानता है। उसने आवाज दी थी, "रमा देवी !"

रमा ने उधर देखा तो उसने पूछा, "अब तुम कुछ लेने नहीं आतीं ?"

"तुमने पहली वस्तुओं के दाम नहीं लिये तो और कैसे लेने आती ?"

"तो लाओ दाम दे दो।"

"इस वक्त तो मेरे पास नहीं हैं।"

"देखो यह नाखून को लगाने का रंग कितना बढ़िया आया है। लोगी ?"

"नहीं मुझको नही चाहिए।" रमा को स्मरण हो आया कि उसने पहला सामान भी अभी तक छिपाकर रखा हुआ है।

"देखो तो सही। दिखाओ हाथ। तुम्हें लगाकर दिखाता हूँ। बहुत सुन्दर लगेगा।"

सुन्दर शब्द सुन रमा के मन में पुन. लोभ जाग्रत हो उठा। उसने पूछा, "कितने का है ?"

"दो पैसे का।"

"तुम झूठ बोलते हो। दो पैसे का रंग कहाँ मिलता है?"

"मेरी दुकान पर मिलता है और तुम्हारी जैसी लड़कियों के लिए।"

"क्यों मुझको क्या है?"

"जो शीशा मैंने तुम्हें दिया था, उसमें अपना मुख नहीं देखा तुमने?"

रमा ने चोरी-चोरी अपना मुख उसमें देखा था, परन्तु वह इसका अर्थ नहीं समझ सकी थी। इस पर दुकानदार ने कहा, "तो क्या मुख सुन्दर नहीं लगा था तुम्हें?"

पहली बार रमा को भास हुआ कि दुकानदार उसकी प्रशंसा कर रहा है। इससे उसका मुख लज्जा से लाल हो गया। दुकानदार ने रंग की शीशी खोल दी और सलाई से रमा के हाथ की एक उँगली पर लगाने लगा। एक-एक कर उसने पाँचों उँगलियों को रंग दिया। रमा ने उँगलियों को लाल-लाल चमकते देखा तो बहुत प्रसन्न हुई। उसे खुश देख दुकानदार ने रंग की शीशी को कागज में लपेट रमा के हाथ में देते हुए कहा, "ले जाओ। इसका दाम भी पहली वस्तुओं के साथ ले लूँगा।"

रमा हाथ में शीशी पकड़ विस्मय में मुख देखती रह गई। वह चल पड़ी।

दुकानदार ने नौकर से कहा, "दुकान का जरा ख्याल रखना, अभी आता हूँ।" और दुकान से निकल रमा के साथ हो लिया। रमा अपनी गली में घुसने ही वाली थी कि दुकानदार ने कहा, "एक और चीज बहुत बढ़िया है। मेरे घर आओ तो तुम्हें दूँगा।"

रमा खड़ी हो गई। वह मन में विचार कर रही थी कि उसके साथ जाए अथवा नहीं। उसने कुछ विचार कर कहा, "मैं यहीं खड़ी रहती हूँ। तुम जाकर ले आओ।"

"नहीं, यहाँ बाजार मे लाकर देने क' नहीं। डरो नहीं। वह सामने ही तो मेरा मकान है।"

रमा उसके घर की ओर घूमी कि एक हृष्ट-पुष्ट युवक दोनो का मार्ग रोककर खड़ा हो गया। रमा पहचान गई। यह उनके पड़ोस में रहने वाला परमानन्द का मित्र सुन्दर था। इस पर भी वह समझ नहीं सकी कि वह करना क्या चाहता है।

सुन्दर ने आव देखा न ताव, एक मुक्का तान कर दुकानदार के मुख पर दे मारा। दुकानदार का सिर चकराने लगा। इस समय एक अन्य, जो दुकानदार का मित्र प्रतीत होता था, आकर सुन्दर से भिड़ गया। उसने सुन्दर को गले से पकड़ लिया। परन्तु सुन्दर उसकी आशा से ज्यादा बलशाली था। उसने एक ही झटके मे अपने को छुड़ा लिया। दुकानदार ने अब अपने मुक्के का बदला लेने के लिए हाथ उठाया। परन्तु सुन्दर दोनो के मुकाबले मे भी अधिक चुस्त और बलशाली था। उसने एक घूँसा दुकानदार के मित्र के मुख पर मारा। वह आदमी भी चक्कर खाकर गिरा। अब दोनो मिल कर उससे लड़ने लगे। और सुन्दर दोनो को अकेला ही पीटने लगा।

इस समय तक इधर-उधर आने-जाने वाले लोग एकत्रित होने आरम्भ हो गए थे। यह देख दुकानदार ने खिसक जाना ही उचित समझा। वह भाग गया। उसको भागते देख उसका मित्र भी भाग खड़ा हुआ। इस समय काफी भीड़ वहाँ एकत्रित हो गई थी। सुन्दर ने भीड़ की परवाह न करते हुए रमा को कहा, "चलो रमा! तुम्हे घर छोड़ आऊँ।"

लोगो ने इसका क्या परिणाम निकाला कहना कठिन है, परन्तु सुन्दर के जाने के पश्चात् सब उसकी प्रशंसा कर रहे थे।

सुन्दर ने रमा को भीड़ से दूर ले जाकर पूछा, "कहाँ है वह रंग?"

"वह तो मैने वहीं फेंक दिया था।"

"इधर आओ।" इतना कह वह उसको एक नल के पास ले गया और बोला, "लो हाथ धो लो। माँ देखेंगी तो बहुत पीटेगी।"

हाथों से रंग उतरवाकर सुन्दर रमा को लेकर उसके घर की ओर चल पड़ा। मकान पर चढ़ने से पूर्व उसने रमा से कहा, "देखो अब उस बाजार में कभी मत जाना। परमानन्द मेरा मित्र है और तुम उसकी बहन हो। यदि मैंने फिर कभी तुम्हें उस दुकानदार से बातें करते देखा तो तुम्हारी टाँगें तोड़ दूँगा।"

सुन्दर उस बाजार में से गुजर रहा था कि उसकी दृष्टि रमा पर पड़ी। उसने देखा कि दुकानदार उसके नाखूनों पर रंग लगा रहा है। वह परमानन्द के घर की अवस्था जानता था। वह विचार भी नहीं कर सकता था कि उसकी बहन नाखूनों के लिए रंग खरीद सकती है। फिर यह हुआ कैसे? वह कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया और दुकानदार और रमा की ओर देखने लगा। दुकानदार की मटकती आँखों को देख उसको कुछ सन्देह हो गया। वह खड़ा खड़ा अधिक ध्यान से उनको देखने लगा। जब दुकानदार रमा के साथ-साथ चला तो वह उनके पीछे हो लिया। गली के समीप पहुँच दुकानदार ने रमा को उस गली में चलने के लिए कहा। रमा झिझकी। इस समय सुन्दर आकर उनके पीछे खड़ा हो गया। जब रमा और दुकानदार गली में घुसने के लिए घूमे तो सुन्दर उनके सामने आ गया। दुकानदार ने उसको हटने के लिए कहा था कि उसने एक घूँसा उसके मुख पर दे मारा। सुन्दर जानता था कि पहिल करने वालों की हमेशा जीत होती है। इस कारण उसने लड़ाई आरम्भ करने का श्रेय दूसरे को नहीं दिया।

रमा सहमी हुई घर पहुँची। वह कुछ-कुछ समझ गई थी कि दुकानदार का क्या विचार था। उसने यत्न कर अपने मन के भावों को छिपा रखा। केवल प्रभा से उसका कोई भेद नहीं छिपा था। उसने प्रभा से उस दुकानदार से मिली वस्तुओं का उल्लेख किया था और उस दिन की घटना भी, रात जब दोनों एक ही बिस्तर पर सोने लगीं, तो बता

रुपया दिया और कहा, "जा रमा बेटी ! रामलाल की दुकान से आठ आने की चीनी ले आ।"

रमा ने रुपया लिया और चीनी लेने चल पड़ी। रमा के जाने के कुछ ही काल पीछे सुन्दर घर आया। माँ ने कहा, "सुन्दर ! कहाँ थे तुम ? देखो रमा को चीनी लेने भेजना पड़ा है।"

"तो क्या हुआ ? अभी लेकर आ जावेगी।"

"बेटा ! यह चोट्टी है। बीच मे से कुछ ऐंठ लेगी।"

"तो काम जो करेगी। तुम फोकट मे काम कराना चाहती हो, उससे ?"

माँ सुन्दर को रमा का पक्ष लेते देख विस्मय मे उसका मुख देखती रह गई। सुन्दर माँ के मुख पर विस्मय की रेखा देख कहने लगा, "माँ ! रमा सदा भैया की बहन है। वह मुहल्ले वालो को कहानियाँ और बैत सुना कर प्रसन्न किया करता है। उसकी बहनें मुहल्ले वालो का काम करती-फिरती है। परन्तु उनको कोई कुछ देता तक नहीं। तो वे क्या करें ? जहाँ कहीं भी किसी की दुअन्नी चवन्नी पड़ो मिल जाती है, उठा लेती है। मैं समझता हूँ कि ठीक ही करती है।"

माँ को यह मीमासा समझ नहीं आई। इससे उसने कहा, "जाओ रामलाल की दुकान पर गई होगी। और आठ आने के पैसे लेते आना।"

"ओ हो ! माँ ! मै अभी कालेज से आ रहा हूं। आज डेढ घण्टा फुटबाल का मैच खेला है और इस समय थककर चूर हो रहा हूँ। मान लो उसने एक आना बीच मे से ले भी लिया तो कौन गजब हो जाएगा ?"

"तो तुम्हारे पिताजी से कह दूँगी कि तुम यह कहते हो ?"

"कह देना माँ ! मैं भी कह दूँगा कि माँ इन गरीब लड़कियो से फोकट मे काम कराती फिरती है।"

सुन्दर और परमानन्द सहपाठी रह चुके थे और स्कूल के दिनो मे

वह परमानन्द की पुस्तकों इत्यादि से सहायता करता रहता था। परमानन्द तो प्रान्त मे प्रथम रहने पर भी कालेज मे नही पढ सका परन्तु सुन्दर थर्ड डिविज़न मे पास होने पर भी कॉलेज मे प्रवेश पा गया। फुटबाल का खिलाडी होने से कॉलेज मे उसकी मान-प्रतिष्ठा थी। वह अब डी० ए० वी० कॉलेज मे थर्ड ईयर मे पढता था।

आज फोरमैन क्रिश्चयन कालेज से उनके कौलेज की टीम का मैच था। पहली वारी मे दोनो टीमे कोई गोल नहीं कर सकी। इस कारण पन्द्रह-पन्द्रह मिनट दोनो टीमो को खेलने के लिए और दिए गए। जिस समय यह आधा घण्टा भी बिना किसी पर गोल हुए समाप्त होने वाला था, तो फोरमैन क्रिश्चयन कॉलेज के एक खिलाडी ने गलत खेल (फौल) खेला। रैफ्री ने 'फौल' दिया। इस पर किक लगाने के लिए सुन्दर को कहा गया। खेल समाप्त होने मे केवल दो ही मिनट शेष थे। सुन्दर ने समझा कि मैच तो बराबर ही समाप्त होगा। केवल एक ही उपाय है कि जोर से एक किक लगाकर गेंद विपक्षियो के गोल मे फेंक दिया जाए। उसने ऐसा ही किया।

'फौल' गोल से काफी दूर हुआ था। इस कारण यह आशा नही की जाती थी कि इतनी दूर गेंद बिना रुकावट के गोल मे जा पहुँचेगी। पर सुन्दर ने पूरे बल से किक लगाई और गेंद उडती हुई गोल मे जा पहुँची। गोल-कीपर समझ रहा था कि गेंद काफी ऊपर है और गोल के ऊपर से निकल जावेगी। परन्तु गोल-कीपर का अनुमान गलत सिद्ध हुआ। गेंद ऊपर के डण्डे को छूती हुई गोल मे जा घुसी।

फोरमैन क्रिश्चयन् कॉलेज की टीम की हार हुई। एक गोल से और यह गोल करने का श्रेय सुन्दर को मिला, जो उसने खेल के अन्तिम मिनटों मे किया था।

सुन्दर के कॉलेज के लडकों ने बहुत खुशी मनाई। खिलाडियों ने उसके निशाने की प्रशंसा की। प्रोफैसरों ने उसकी पीठ ठोकी और लडकों ने उसको कन्धों पर उठाकर ग्राऊंड का चक्कर लगाया।

घर पर आया तो माँ ने उसको रमा की शिकायत की। सुन्दर को उस दिन की विजय की अपेक्षा मे एक आना चुराया जाना बिल्कुल महत्वहीन लगा। पर वह माँ को समझाता कैसे? उसकी माँ ने फुटबाल मैच न कभी खेला था और न कभी देखा था।

सुन्दर अभी अपना मुख दर्पण मे देख रहा था और अपने लडको द्वारा ग्राऊंड का चक्कर लगाए जाने को स्मरण कर रहा था कि रमा चीनी लेकर आ गई। रमा ने चीनी सुन्दर की माँ को दे दी और साथ ही अठन्नी लौटा दी। सुन्दर की माँ ने चीनी की पुड़िया को हाथ मे लेकर। उसके तोल का अनुमान लगा पूछा, "कितने की लाई हो?"

"सुन्दर की माँ! आठ आने की।"

"यह तो कम मालूम होती है।"

"इतनी ही दी है।"

"कहाँ से लाई हो।"

"रामलाल की दुकान से।"

"सुन्दर बेटा! जरा जाओ इस लडकी के साथ। रामलाल ने बच्ची जान इसको ठग लिया मालूम होता है।"

"चाची उसने आठ आने की दी है। एक सेर नौ छटाँक है।"
रमा ने कहा

"रमा बेटी! यह तो कम मालूम होती है। जाओ सुन्दर! लडकी को आना दो आना छोड सकती हूँ परन्तु रामलाल को क्षमा नहीं किया जा सकता।"

सुन्दर जो अभी शीशे मे खडा अपना मुख देख रहा था, घूमकर रमा और माँ को देखने लगा। माँ का मुख क्रोध से लाल हो रहा था। सुन्दर को एक तरकीब सूझी। उसने कहा, "अच्छा माँ! जाता हूँ। चलो रमा! रामलाल से आज झगडा होगा।"

सुन्दर ने चीनी की पुडिया माँ के हाथ मे ले ली और रमा से कहा, "चलो।" रमा कोंपती हुई सुन्दर के आगे-आगे चल पडी। मकान के

तुम उनकी छोटी बहन हो। यह दो आने और लो। हाँ एक बात है। यदि तुम चोरी करना छोड़ दो तो मैं तुमको दो आना रोज दिया करूँगा। अच्छा अब भाग जाओ।"

रमा को इस बात से बहुत लज्जा लगी। उसने फिर सुन्दर की माँ के घर पाँव नहीं रखा। साथ ही उसका मन चोरी करने से उचाट हो गया। यह वह समय था, जब सदानन्द माँ को दो रुपये रोज देने लगा था। इसमें से माँ ने सब स्कूल जाने वाले बच्चों को जेब खर्च देना आरम्भ कर दिया।

जिस दिन परमानन्द का विवाह था, सुन्दर भी आमन्त्रित था। उसने विवाह के अवसर पर रमा को एक कोने में खड़ा देखा। रमा विवाह होता देख रही थी। सुन्दर समीप ही था। उसने रमा को देखा। जब दोनों की आँखें मिलीं तो सुन्दर की हँसी निकल गई। रमा का मुख लज्जा से लाल हो गया। सुन्दर उसकी लज्जा मिटाने के लिए कहने लगा, "रमा! अब तुम हमारे घर नहीं आतीं?"

रमा चुप रही। इस पर सुन्दर ने फिर कहा, "अब तो वह काम नहीं होता न?"

"नहीं।" रमा ने धीरे से कहा।

"तब तो तुम्हारा बहुत इनाम एकत्रित हो गया है।"

"कैसा इनाम बाँट रहे हो सुन्दर भैया?" सदानन्द इस समय एक टोकरे में लड्डू बनवा कर लाया था। जब समीप से गुजरा तो उसने सुन्दर की बात सुन ली थी।

"पहले लड्डू खिलाओ। पीछे इनाम की बात बताऊँगा।"

सुन्दर ने बी० ए० की परीक्षा दी। उसके परचे कुछ अच्छे नहीं हुए थे। इस कारण उसने समझ लिया कि आगे पढ़ना अब बेकार है।

वह नौकरी और साथ ही विवाह कर जीवन मे स्थिर होने का विचार करने लगा।

उसका परीक्षाफल निकला। वह थर्ड डिविज़न मे पास हो गया। यूनिवर्सिटी के कार्यालय के बाहर से अपना परीक्षाफल देख, वह अपने मन मे मनसूबे बाँधता हुआ आ रहा था कि उसको गली में सदानन्द प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। सुन्दर ने पीछे से आवाज दी, "सदा-नन्द!"

सदानन्द रुक गया। सुन्दर को अपनी ओर लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ आता देख वह उसकी ओर बढ़कर पूछने लगा, "क्या बात है?"

"एक आवश्यक बात है। चलो ऊपर मौसी के पास चलकर बताता हूँ।"

"तो आओ।"

दोनों मकान पर चढ गए। माँ रोटी पका चौके से निकली थी। उसने इनको देख कहा, "आओ सुन्दर! आज तुम्हारा मुँह मीठा कराती हूँ। बैठो। ओ रमा!" उसने रमा को आवाज दी। रमा प्रभा के साथ चौके में सामान समेट रही थी। माँ ने आवाज देकर कहा, "अन्दर से थोड़ा गुड ले आओ।"

"पर माँ है क्या?" सदानन्द ने चटाई पर बैठते हुए पूछा।

"बैठो।" माँ ने कहा। सब बच्चे माँ के सुन्दर को बैठने के लिए कहने और गुड मँगवाने पर चारों ओर एकत्रित हो गए थे। आजकल स्कूलों में गर्मियो की छुट्टियाँ थीं और सब बच्चे घर पर ही थे। सुन्दर भी सदानन्द के पास बैठता हुआ बोला, "लाओ मौसी! डालो।" और उसने जेब से रुमाल निकाल घुटनों पर बिछा लिया।

रमा मटकी में से गुड की डली निकालकर ले आई। लक्ष्मी ने गुड की डली तोड सुन्दर के मुख में थोड़ी डाल दी। सुन्दर ने थोड़ा-सा खाते हुए और शेष रुमाल में लपेटते हुए जेब में रख लिया और कहा, "मौसी! धन्यवाद! अब आशीर्वाद दो कि मै फलूँ-फूलूँ और

पुत्र-पौत्रों का सुख भोगूँ ।"

सदानन्द अभी भी विस्मय में मुख देख रहा था। उसको कुछ भी समझ नहीं आया। इस कारण उसने माँ से पूछा, "माँ! मुझको भी बता दो न कि क्या बात है?"

देवानन्द अब समीप आकर कहने लगा, "भैया! मैं बताता हूँ। सुन्दर भैया बी० ए० में पास हो गए हैं।"

माँ को सुन्दर के पास होने का समाचार उसने ही लाकर दिया था। इस कारण लक्ष्मी ने जब सुन्दर को देखा तो मुख मीठा कराने लगी।

"तुम भी लालबुझक्कर हो।" सुन्दर ने कहा, "उत्तीर्ण तो पाँच सौ से अधिक लडके हुए हैं। सबको गुड क्यों नहीं खिलाया? मैंने तो यह मीठा किसी अन्य निमित्त से लिया है।"

सब सुन्दर का मुख देखने लगे। सुन्दर ने कहा, "मौसी! मैं अपने विवाह के विषय में तुमसे राय करने आया हूँ। मैंने समझा था कि तुम मेरे मन की बात समझ गई हो और इसी कारण मुख मीठा करा रही हो।"

सुन्दर चुप कर गया। किसी ने कुछ नहीं कहा। केवल लक्ष्मी ने पूछा, "कहाँ सगाई हो रही है तुम्हारी?"

"मौसी! यही बताने तो आया था, परन्तु इन सब ने यहाँ झमेला डाल ऐसा कर दिया है कि अब मुझको लज्जा लग रही है।"

सदानन्द ने सब बच्चों को चुप करने के लिए कहा।

सुन्दर बोला, "जाओ सब अपना-अपना काम करो। मैं वचन देता हूँ कि सबको अपनी बारात में ले जाऊँगा।"

लक्ष्मी ने बच्चों को संकेत किया तो रमा, प्रभा चौके में समान समेटने चली गईं। देवानन्द, कृष्ण और राम गली में चले गए। सुन्दर ने इस प्रकार सबको टलते देखा तो अपने मन की बात कह दी, "मौसी! यह गुड तो मैंने अपनी सगाई का मानकर ही खाया है। मैं सदानन्द भैया के सामने तुमसे रमा को माँगने आया हूँ।"

मोढ़ने की प्रतीक्षा की और जब उसने देखा कि वह इस ओर ध्यान ही नहीं दे रही तो वह उठकर, प्रभा के ऊपर से लाँघ उसके मुख की ओर हो लेट गई। प्रभा रो रही थी। रमा ने पूछा, "क्या है प्रभा! भैया ने डाँटा है क्या?"

प्रभा उत्तर नहीं दे रही थी। इस पर रमा ने उसके गले में हाथ डालकर, उसका मुख चूम लिया और कहा, "प्रभा! क्या हुआ है? बताओ न। मेरे दिल में भी कुछ होने लगा है।"

"मैं समझती हूँ कि तुम झूठी बातें करती हो। तुमने अपने विवाह की बात निश्चय की और मुझको बताया तक नहीं।"

"किसने कहा है तुमको कि मैंने विवाह की बात निश्चय की है?"

"माँ भैया से कह रही थीं कि अवश्य ही रमा और सुन्दर में बात-चीत हो चुकी है, नहीं तो सुन्दर इतना निस्संकोच हो बात न करता।"

"प्रभा! यह बात नहीं। मेरे में और उसमें कभी बात हुई ही नहीं। भैया के विवाह पर ही हमने एक-आध बात की थी। उस समय भी मैंने उसे सुन्दर भैया कहकर पुकारा था। इसके बाद कभी भी मैं उससे बोली नहीं।"

"कैसे मानूँ यह? वह मुझको भी जानता है और मैं तुमसे बड़ी हूँ। इस पर भी वह विवाह तुमसे ही करना चाहता है।"

"यह तो तुम उससे ही पूछना कि क्यों मुझसे विवाह करना चाहता है। पर मैं कहती हूँ कि मैं माँ से कह दूँगी कि जब तक प्रभा का विवाह नहीं होगा मैं विवाह नहीं करूँगी।"

"पर मैं सुन्दर से स्वयं विवाह करना चाहती हूँ।"

"तो कर लो न। मैं तुम्हारी भाँति रोकूँगी नहीं।"

"तो तुम उससे प्रेम नहीं करतीं?"

"और तुम प्रेम करती हो। भला क्यों?"

"वह बहुत अच्छा है।"

"तुम्हारे लिए अथवा हम दोनों के लिए?"

"मुझको बहुत अच्छा लगता है।"

"मुझको भी बहुत अच्छा लगता है। प्रश्न तो यह है कि उसको हममें से कौन अच्छी लगती है। प्रभा! मैं तुम्हारे लिए यत्न करूँगी।"

"हट। सब काम बिगाड़कर अब क्या यत्न करोगी?"

"देखना क्या करती हूँ।"

दोनों एक-दूसरे के गले में बाँह डाले हुए सो गईं।

कई दिन तक खुफिया पुलिस सदानन्द के पीछे लगी रही। मगर उसके आने-जाने के स्थानों की देखभाल के पश्चात् पुलिस का यह निर्णय निकला कि शबनम उसके पास नहीं है। धीरे-धीरे शबनम की खोज ठंडी पड़ गई। शबनम की माँ और फिरोज शबनम के गुम हो जाने पर सब्र कर बैठ गए। शबनम के लापता हो जाने के पश्चात् शबनम की माँ को अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप लगने लगा। वह कभी-कभी सदानन्द से मिलने लगी। उसके मस्तिष्क में यह बात बैठ गई थी कि यदि शबनम जीती है तो एक-न-एक दिन सदानन्द से अवश्य सम्बन्ध बनाएगी और यदि वह सदानन्द से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखेगी तो वह उसको उससे मिला देगा।

शबनम की माँ कभी फिरोज के साथ और कभी अकेली बैठक पर उससे मिलने आती थी। प्राय: इतनी बात होती, "सदानन्द! कुछ पता चला?"

"नहीं अम्मी जान!"

"मुझको अपनी करनी पर बहुत अफसोस है। न जाने उस वक्त सिर पर क्या फतूर सवार हो गया था कि मैं उसकी बात मानती ही नहीं थी!"

"अम्मी! अब क्या हो सकता है? मैं तो उससे आपकी मजूरी के

"मैं आपका नाम जानना चाहती हूँ।"

"क्या करेगी नाम जानकर ?"

"वह पीछे बताऊँगी। पहले यह बताइये कि आपका नाम पंडित सदानन्द है या नहीं ?"

सदानन्द ने बहुत ध्यान से लड़की की ओर देखा। अच्छी खूब-सूरत थी। रंग गहरा गन्दमी-सा अवश्य था। इस पर भी रूपरेखा और नख-शिख अच्छे लुभायमान थे। सदानन्द ने कहा, "जी हाँ मेरा यही नाम है।"

"आप कूचा बानियों में रहते हैं ?"

"जी।"

"तो यह चिट्ठी आपके नाम है। इसको यहाँ न पढ़िएगा। घर जाकर पढ़िएगा और यदि कोई उत्तर हुआ तो इसी पुस्तक के एक सौ पन्ने पर रख किताब बन्द कर लायब्रेरी को वापिस कर जाइएगा। वह उत्तर उचित स्थान पर पहुँच जाएगा।"

"क्या मैं आपका नाम जान सकता हूँ।"

"क्या मेरे नाम की भी कोई चिट्ठी आप देंगे ?"

"चिट्ठी तो नहीं। पर यदि मैं इस चिट्ठी की बाबत कुछ जानना चाहूँ तो कैसे जान सकूँगा ?"

"उसकी जरूरत नहीं होगी। उत्तर जैसे मैंने कहा है, इसी किताब में रख जाइएगा। अच्छा अब मैं जाती हूँ। मेरा जाने का समय हो गया है।"

सदानन्द को लगभग विश्वास हो रहा था कि यह पत्र शबनम का है। उसने पत्र जेब में रख लिया और सोचने लगा कि यह लड़की कौन हो सकती है। वह अब किताब की ओर ध्यान लगाना चाहता था, परन्तु बार-बार उसकी आँखों के सामने वह चिट्ठी लाने वाली आ जाती और वह चिट्ठी को पढ़ने के लिए व्याकुल हो जाता। इस कारण उसने पुस्तक वापिस कर दी और घर की ओर चल पड़ा। अभी पाँच ही

बजे थे और और अक्तूबर के महीने में पाँच बजे काफी दिन होता है। इस कारण घर जाने के स्थान वह भाटी दरवाजे के बाग में जा बैठा और चिट्ठी निकाल कर पढ़ने लगा। लिखा था—

"श्रीमान् जी! आदाब अर्ज़ है।

"आपको यह चिट्ठी इस तरह से मिलने में हैरानी तो होगी। मुझको और कोई तरीका नहीं सूझा, जिससे आपको लिख सकूँ। आपके घर का डाक-पता मुझे मालूम नहीं था। बैठक के पते पर लिखना मुनासिब नहीं समझा। खुद अपना पता भी लिखने से डरती हूँ। मुझको अपने किसी पर भरोसा नहीं रहा।

"उस दिन आपसे मुशायरे के बाद मिल कर घर पहुँची तो निकाह पढ़ा देने का बन्दोबस्त देख, पिछले पाँव लौट आई और अपनी किस्मत से यहाँ आ गई हूँ, जहाँ से यह चिट्ठी लिख रही हूँ।

"मुझको यहाँ जिसमानी तौर पर हर किस्म का आराम है। इस पर भी मेरा मन निहायत ही बेचैन और दुःखी है।

"मुझको मालूम है कि आपको पकड़वा दिया गया था और किसी किस्म का सबूत आपके खिलाफ न मिलने पर आपको छोड़ दिया गया था। मुझको यह भी मालूम है कि मेरे अपने घर मेरी माँ, जहाँ भी चाहे मेरी जबरदस्ती शादी कर सकती हैं। इसलिए मैं अपने बालिग होने तक गायब ही रहना चाहती हूँ।

"जिस जगह पर मैं हूँ, मेरी हिफाज़त हो रही है और हो सकती है। इस पर भी मैं आपसे अजहद मुहब्बत करती हूँ और यह मुहब्बत मुझको चार साल के इम्तिहान में कामयाब कराएगी।

"चिट्ठी का जवाब कि आप कैसे हैं और क्या मैं आपसे इस अर्से के पीछे शादी की उम्मीद कर सकती हूँ, ज़रूर दें।"

सदानन्द इस पत्र को पढ़कर चकित रह गया। वह उत्तर तो देना चाहता था, मगर दो प्रश्न उसके सम्मुख थे। एक तो यह कि क्या वह शबनम का पता जानने की कोशिश करे और दूसरे यह कि वह इसका

उल्लेख शबनम की माँ से करे।

रात को उसने पत्र का उत्तर लिख दिया। उसने लिखा,

"प्रिय शबनम! तुम्हारा पत्र पढ़कर बहुत ही खुशी हुई। यहाँ यह समझा जा रहा है कि तुमने खुदकशी कर ली है। मैं तुम्हारी माँ से कभी-कभी मिलता रहता हूँ। प्रकट रूप में वह पश्चात्ताप करती मालूम होती है। इस पर भी मैं यकीन से नहीं कह सकता।

"मेरी उत्कट इच्छा है कि तुमसे मिलूँ परन्तु परिस्थिति का विचार कर मेरी भी यही राय है कि तुम अभी लापता रहो।

"जिस प्रश्न का उत्तर तुमने माँगा है, उसके विषय में मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने विवाह नहीं किया और अभी निकट भविष्य में विवाह करने का विचार भी नहीं। रही तुम्हारी मेरे से शादी की बात। उसकी बाबत मैं तब तक कुछ नहीं कह सकता जब तक शादी हो नहीं जाती। मैं अपनी पत्नी को नेक, चरित्रवान, सरल स्वभाव और विश्वास के योग्य देखना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरी पत्नी रोटी बना सके, कपड़े सी सके, घर का इन्तज़ाम कर सके और बच्चे पाल सके। मैं अपनी पत्नी को वास्तविक हिन्दू विचार रखने वाली देखना चाहता हूँ।"

अगले दिन सदानन्द निश्चित स्थान पर चिट्ठी रख आया। उससे अगले दिन सायकाल उसने पुन. उसी पुस्तक को पढ़ने के लिए निकल-वाया। उसने देखा कि चिट्ठी वहाँ पर नहीं थी। वह विचार करने लगा कि रात को बहुत देरी से वह पुस्तक वापिस करके गया था। इस कारण अवश्य कोई प्रातःकाल आया होगा, जो इसमें से पत्र ले गया होगा।"

उसने लायब्रेरी से पूछा, "क्या आज कोई इस पुस्तक को पढ़ने वाला आया था?"

"हाँ। एक लड़की आज दिन के समय आई थी और वह इस पुस्तक को एक घण्टा भर पढ़ती रही है।"

पुस्तकाध्यक्ष सदानन्द से बहुत अच्छी तरह परिचित था। सदानन्द

कई वर्षों से नियमित आने वालों में से था। इस कारण सदानन्द के इस प्रश्न पर उसने पूछा था कि बात क्या है। सदानन्द ने कहा, "कुछ विशेष बात नहीं। मैंने पुस्तक में 'मार्कर' रखा हुआ था। वह आज नहीं है।"

सदानन्द समझ गया कि चिट्ठी चली गई। उसका विचार था कि चिट्ठी का उत्तर आएगा। जहाँ तक शबनम के जीवित होने का प्रश्न था, वह उसकी माँ को बता देना चाहता था। इससे उसको सान्त्वना मिलेगी। परन्तु वह ऐसी कोई बात बताना नहीं चाहता था, जिससे शबनम के छिपने के स्थान का सुराग मिल सके। अतएव उसने शबनम का पत्र फिरोज को देकर कहा, "यह पत्र कल डाक द्वारा मुझको मिला है, मौसी को दिखा देना। उसको यह जानकर खुशी होनी चाहिए कि वह अभी तक जीवित है।"

सदानन्द के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब उसको पता चला कि वह पत्र पुलिस में दे दिया गया है। वह यह आशा करता था कि शबनम की माँ उससे स्वयं पूछने आएगी कि पत्र कैसे आया और कहाँ से आया। शबनम की माँ को अपने पूर्व व्यवहार पर पश्चात्ताप करते देख, वह यह विचार भी नहीं कर सकता था कि वह फिर पुलिस से सहायता लेने जाएगी।

अगले दिन पुलिस उससे कितावत करने की बैठक पर मिलने आई। खुफिया पुलिस के इन्स्पैक्टर ने शबनम का पत्र दिखा कर पूछा, "इसको आप पहचानते हैं।"

"हाँ। यह शबनम का लिखा हुआ है। मैं उसकी लिखावट पहचान सकता हूँ।"

"यह किसके नाम है ?"

"यह परसों मुझे डाक द्वारा आया था। इस पर किसी का नाम नहीं लिखा था। परन्तु पत्र के विषय को पढ़कर मैं कह सकता हूँ कि यह मुझको लिखा गया है।"

"आपने इसका उत्तर दिया है।"

"नहीं। मै नहीं जानता कि कहाँ इसका उत्तर दूँ।"

"अगर आपको पता होता तो आप क्या करते ?"

"मै उसको लिखता कि वह अपनी रक्षा के लिए डिप्टी कमिश्नर के सामने हाजिर हो जाए। वहाँ जाकर बयान दे दे कि उसकी माँ एक बिना लायसेंस के पेशा करने वाली है और उससे भी पेशा करवाना चाहती है और सरकार उसकी रक्षा करे।"

पुलिस अफसर सदानन्द का मुख देखता रह गया। उसने कुछ विचार कर पूछा, 'यदि आप लडकी की माँ के इतने खिलाफ है तो फिर आपने यह चिट्ठी उसको क्यो दी ?"

"उसकी माँ एक दिन रोती थी और कहती थी कि उसकी लडकी ने आत्महत्या कर ली है। इस कारण मैने यह अपना कर्तव्य समझा और ज्यूँ ही यह पत्र मुझे मिला, मैने यह खुशखबरी उसको पहुँचा दी।"

इन्स्पैक्टर पुलिस को कोई बात पकड की नहीं मिली। वह चला गया, परन्तु सदानन्द के पीछे फिर से खुफिया-पुलिस लग गई।

शबनम की माँ के ऐसे व्यवहार से सदानन्द बहुत ही निराश हुआ था। पुलिस इन्स्पैक्टर के चले जाने के पश्चात् सदानन्द ने फिरोज को एक ओर ले जाकर पूछा, "यह तुम्हारी मौसी ने क्या कर दिया है ? मै यत्न कर रहा था कि पता करूँ कि चिट्ठी कहाँ से आई है। मगर अब पुलिस इसमे दखल देने लगी है तो मै क्यो मगजपच्ची करूँ ?"

"सदानन्द ! मैने मौसी से कहा था कि वह तुमसे मिले और कोशिश करे कि उसका पता मिल जाए। चिट्ठी से मालूम होता है कि वह तुमसे जवाब की उम्मीद रखती है। इसलिए वह जरूर तुमसे

सम्पर्क उत्पन्न करती। मगर एक बात तुम नहीं जानते कि उस्ताद फकीरुद्दीन मौसी पर बहुत असर रखता है और उसने ही यह चिट्ठी पुलिस में पहुँचाई है।"

"शबनम को अपनी माँ द्वारा मुझे पकड़वाने की बात मालूम है इससे इस चिट्ठी का पुलिस में पहुँच जाना भी उसको मालूम हो जाएगा। नतीजा यह होगा कि वह अब मुझको नहीं लिखेगी और उसको ढूँढ निकालना निहायत ही मुश्किल हो जाएगा।"

सदानन्द के मन में यह बात पक्के रूप में बैठ गई कि फकीरुद्दीन के यहाँ काम करना छोड़ देना चाहिए। अब उसका परिचय बढ़ गया था और वह अन्य कई स्थान जान गया था, जहाँ उसको काम मिल सकता था। उसने उसी दोपहर काम के लिए अन्य ठिकाना ढूँढने का निश्चय कर लिया।

समाचार पत्रों में किताबत के लिये काम चलाऊ लोग लिए जाते थे और उजरत कम दी जाती थी। सदानन्द ने वहाँ काम के लिए यत्न करना व्यर्थ समझा। उसको भय लग गया था कि चालू काम करने से उसको रद्दी लिखने का अभ्यास हो जाएगा। किताबी काम पैसा-अखबार बाजार में इनामी प्रेस में बहुत होता था। इस कारण उसने अपनी लिखी हुई दो-चार किताबें लेकर इनामी प्रेस में जाने का विचार कर लिया।

ताज ऐण्ड कम्पनी की कई किताबों की उसने किताबत की थी। अतएव वह वहाँ गया और उसने दो-तीन अपनी किताबत की हुई किताबें खरीद लीं। पीछे उसने ताज ऐण्ड कम्पनी के मालिक नसीरुद्दीन से कहा, "आप तो जानते ही हैं कि इन किताबों की किताबत मैंने की है। मैं चाहता हूँ कि आप इस मतलब का एक सर्टिफिकेट मुझको दे दें।"

नसीरुद्दीन ने कुछ विचार कर कहा, "मैं इस बात की तस्दीक नहीं कर सकता। हमने उस्ताद फकीरुद्दीन के मार्फत लिखवाई है। उसने कहाँ और किससे लिखवाई है, हम कैसे लिखकर दे सकते हैं?"

सहायता के लिए उसे रख छोड़ा था। ठाकुरदास ने सदानन्द से कहा कि वह अगले दिन दस बजे ही यहाँ आ जाए और बारह बजे तक किताब छपने पर रोक की आज्ञा मिल जाएगी।

सब-जज ने इन्जक्शन जारी करने में यह कठिनाई उपस्थित की कि यह दीवानी दावा हो सकता है। किताब छप जाये तो हर्जाने का दावा किया जा सकता है।

इस पर ठाकुरदास ने कहा "हजूर! इस वक्त किताब की पाण्डु-लिपि (मसविदा) जो सदानन्द के हाथ का लिखा है, किताबत करने वाले के पास मौजूद है। किताब छपते ही वह जला डाला जाएगा। तब यह सिद्ध करना अति कठिन हो जायेगा कि किताब लिखने वाला सदानन्द ही है। इन प्रमाणों की रक्षा के लिए यह जरूरी है कि यह 'रोक' की आज्ञा जारी की जाए और पुलिस को इस सम्बन्ध की सब सामग्री पर अधिकार करने की आज्ञा दी जाए।'

'रोक' की और पुलिस द्वारा सब सामग्री अधिकार मे करने की आज्ञा हो गई। सदानन्द ने सदालत के प्यादे और पुलिस के इन्स्पेक्टर को ले दे कर एक बजे तक इनामी प्रैस पर छापा डलवा दिया। प्रैस का मैनेजर पहले तो बहुत नाराज हुआ, परन्तु जब उसने पूर्ण विवरण जाना तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सदानन्द से पूछा, "तो यह किताब तुम्हारी लिखी है ?"

"जी।"

"ताज कम्पनी वाले बड़े बेईमान हैं।"

"अब तो मामला अदालत में चला गया है। देखियेगा कि क्या गुल खिलता हे। आपको तो मेरी सहायता करनी चाहिए।"

प्रैस वालों ने तो रोक की आज्ञा ले ली और पाण्डुलिपि और छपा फर्मा पुलिस के हवाले कर दिया। कठिनाई ताज कम्पनी वालों से ही पड़ी। प्रैस में तो पाँडुलिपि के कुछ पन्ने ही थे। शेष कम्पनी वालो के पास रखी थी। जब पुलिस वहाँ पहुँची तो उन्होंने कह दिया कि उनके

पास कुछ नहीं है। इस पर इन्स्पेक्टर ने कह दिया, "इस हालत में मुझको आपकी दुकान और मकान की तलाशी लेनी पड़ेगी।"

इससे नसीरुद्दीन बहुत बहुत घबराया। उसने पाण्डुलिपि के शेष पन्ने निकाल कर दे दिए।

अगले दिन अदालत में पेशी हुई। ताज कम्पनी के वकील ने पहले तो यह कहा कि यह किताब लिखी तो कबीरुद्दीन साहब ने थी मगर इसकी सुलेख लिपि सदानन्द से करवाई थी। मगर जब इस बात को बयान के रूप में कलम बन्द कराने के लिए कहा गया तो वह बदल गया। वह कहने लगा कि किताब छपवाने का अधिकार पचास रुपये में सदानन्द से खरीद लिया गया था। इस विषय की किसी प्रकार की लिखत पढ़त माँगने पर उन्होंने तीन दिन की तारीख माँग ली।

जज ने वकील को अपने बयान बदलने पर डाँट दिया। मगर अगले ही दिन डेवरसेन की कोठी में बैठ नसीरुद्दीन ने समझौता कर लिया। सदानन्द से दस प्रतिशत रायल्टी पर किताब ले ली गई और लेखक का नाम सदानन्द का ही रखने का निश्चय हुआ। मुकद्दमे का खर्चा भी ताज कम्पनी को देना पड़ा।

सुन्दर सदानन्द और उसकी माँ से रमा का विवाह कर देने की स्वीकृति लेकर घर आया तो माँ से कहने लगा, "माँ! मैं पास हो गया हूँ।"

"शुक्र है। तुम्हारी पढ़ाई तो समाप्त हुई।"

"केवल छः साल में माँ!"

"छः साल? तुमको पढ़ाई करते तो सोलह साल हो गए हैं?"

"यही तो कह रहा हूँ। स्कूल की पढ़ाई दस साल तक हुई। वह तो सब लड़के करते हैं। केवल एफ० ए० में एक बार और एक बार

बी० ए० में फेल हुआ हूँ। पर माँ! दिन-भर का भूला रात को भी घर आ जाए तो भूला नहीं समझा जाता। अब मै पास तो हो गया हूँ। तुमको खुशी मनानी चाहिए।"

"कैसे खुशी मनाऊँ?"

"मेरा विवाह करके।"

"विवाह? पहले कुछ कमाना तो सीखो।"

"सो तो मैंने नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र दिया हुआ है। एक-दो दिन मे, अफसरों से मिलूँगा। एक बार नौकरी मिली तो तरक्की करवानी मेरे बायें हाथ का खेल है।"

"सुन्दर! तुम बातें बहुत बनाते हो। अगर इतना पढने में समय लगाते तो दो वर्ष पहले ही पास कर लिये होते।"

"पर माँ! जो कुछ मैं इन दो वर्षों में करता रहा हूँ, वह दूसरे लडके सारी उमर में भी नहीं कर सकते। अब तुम देख लेना कि मुझको नौकरी कितनी जल्दी मिलती है।"

"अच्छा नौकरी लग जाने पर तुम्हारे लिए लड़की ढूँढूँगी।"

"कहाँ ढूँढोगी? यहाँ मुहल्ले में पाँच फुट की कितनी ही लड-कियाँ तो घूमती-फिरती हैं। एक से विवाह का बन्दोबस्त कर दो न।"

"कौन लडकियाँ हैं, जो तुम्हारे योग्य हैं?"

"एक को तो मैं भी जानता हूँ। परमानन्द की बहन रमा ठीक नहीं रहेगी क्या?"

"रमा वह चोटी? नहीं, उससे तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता।"

"क्यों?"

"वे ब्राह्मण हैं। उसकी माँ नहीं मानेगी।"

"वह मान जाएगी।"

"मान भी जाएगी तो मैं नहीं मानूँगी। सुन्दर की बहू एक चोटी नहीं हो सकती।"

"माँ! बचपन की बातो पर ध्यान देना ठीक नहीं। अब तो वह

बहुत अच्छी बन गई है। मुझको वह बहुत भली प्रतीत होती है।"

"तो यह बात है। अब पता लगा कि वह चोट्टी ही नहीं, छिनार भी है।"

"माँ! क्या कहती हो तुम?"

"मैं कहती हूँ कि परमानन्द की बड़ी बहन कमला कॅवरसेन की रखेल थी और यह रमा तुमसे साँठ-गाँठ लगाये हुए है।"

"अच्छी बात। सुन लो माँ! मैं रमा से ही विवाह करूँगा। पिताजी आएँ तो उनसे कह देना। मैं खेलने जा रहा हूँ।"

इसके तीन-चार दिन पीछे सुन्दर को अपने पिता के दफ्तर से बुलावा आया कि वह नियुक्त करने वाले अधिकारी से मिलने के लिए हाजिर हो। सुन्दर मिलने गया और आत्म-विश्वास के साथ उसने अफसर से हाथ मिलाया। अफसर, मिस्टर वैस्टन एक एंग्लो-इंडियन था। वह स्वयं अपने कॉलेज के दिनों में फुटबाल का खिलाड़ी रहा था। इस कारण सुन्दर के उसके सामने आते ही उसने पूछा, "तुम फुटबाल खेलते हो?"

"जी! मैं अपने कालेज की फर्स्ट टीम में छः साल खेलता रहा हूँ और हमारे कॉलेज ने कई टूर्नामेंट जीते हैं।"

"तुम अच्छा खेलते हो क्या?"

सुन्दर ने अपने कोट के बटन खोल, अन्दर की वास्केट, जो तमगों से भरी हुई थी, दिखा दी। वेस्टन उन तमगों को देख चकित रह गया। उसने उठकर एक-दो मैडल पढ़े और फिर अपनी सीट पर बैठ कर कहा, "मिस्टर सुन्दर लाल! मैं भी फुटबाल का खिलाड़ी रहा हूँ और मैं जानता हूँ कि एक अच्छा खिलाड़ी होना जिन्दगी में सफलता का चिह्न है। मैं तुमको नौकरी दे रहा हूँ। अभी तो तुम जूनियर ग्रेड में ही लिए जाओगे, परन्तु शीघ्र ही दफ्तर की अपनी परीक्षा होगी। तुमको उसमें बैठना चाहिये। तुम सफल होगे, मेरा विश्वास है।"

सुन्दर लाल ने धन्यवाद किया और बाहर आ गया। एक घण्टे में

ही उसको नियुक्ति-पत्र मिल गया। वह नियुक्ति-पत्र ले अपने पिता के पास, जो उसी दफ्तर में काम करता था, जा पहुँचा। सुन्दर के पिता का नाम चरणदास था। वह सीनियर ग्रेड का क्लर्क था और अपने विभाग में सुप्रिन्टैंडेंट था। इस समय साढे चार सौ वेतन पाता था। सुन्दर लाल ने अपने पिता को नियुक्ति-पत्र दिखाया तो उसने लड़के को आशीर्वाद दिया और कहा, "तुम्हारी माँ ने कहा था कि तुम विवाह करना चाहते हो ? अब मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा।"

"पर पिता जी !" सुन्दर ने अपने पिता के समीप कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "मैंने यह भी कहा था कि परमानन्द की बहन रमा से मैं विवाह करूँगा।"

"पर वे तो ब्राह्मण हैं ?"

"हाँ पिता जी ! ब्राह्मण चमार नहीं होते।"

"पर वे मान जाऍंगे ?"

"मैं सदानन्द को मना आया हूँ और घर में उसकी ही चलती है।"

"सदानन्द तो हिन्दू संगठनिया है न ? वह तो वर्ण कर्म से मानता है। जन्म से ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं समझता।"

"पर पिता जी ! वह हम सरकारी कर्मचारियों को ब्राह्मण ही समझता है। उसने कहा है कि लिखने-पढने का काम करने वाले ब्राह्मण ही होते हैं।"

"तब तो ठीक है। पर तुम्हारी माँ नहीं मानेगी। वह कहती है कि रमा चोट्टी है और छिनार है।"

"पिता जी ! वह तो परमानन्द की बडी बहन कमला को भी यही समझती थी। जीवन लाल की पत्नी से मिल शिकायत भी कर आई थी। परन्तु जीवन लाल कँवरसेन के बँगले में आता-जाता है, कहता है कि कमला देवी है।"

"और तुम कहते हो कि रमा देवी है। ठीक है न ?"

सुन्दर हँस पड़ा और कहने लगा, "पिता जी! वह बहुत ही सुन्दर है।"

"और सुन्दर को सुन्दरी मिलनी ही चाहिए।"

उसी सायंकाल सुन्दर यूनिवर्सिटी ग्राऊंड्स से एक मैच खेलकर आ रहा था कि पंजाब पब्लिक लायब्रेरी से आता हुआ सदानन्द अनारकली बाज़ार में मिल गया। सुन्दर ने सदानन्द को आवाज़ दे रोक लिया और कहा, "सदा भैया! बहुत ही अच्छी खुशखबरी है। मेरी नौकरी लग गई है।"

"अच्छा? तब तो बधाई हो। कहाँ लगी है?"

"पिता जी के दफ्तर में। अभी तो केवल पचास ही मिलेंगे, परन्तु अब मेरी उन्नति कोई रोक नहीं सकता। भैया! मैं फुटबाल का खिलाड़ी हूँ। मैंने तो मैदान में आकर हारना सीखा ही नहीं। दो महीने में आफिसर-ग्रेड की परीक्षा होगी और मैं अवश्य पास हो जाऊँगा।"

"तब तो भैया! मिठाई खिलानी चाहिए।"

"हाँ। पर नहीं......।" उसने कुछ विचार कर कहा, "नहीं, तुमको नहीं खिलाऊँगा। रमा तुमसे छोटी है। छोटी बहन के घर का तुम कैसे खा लोगे? हाँ बच्चों के लिए मिठाई भिजवा दूँगा।"

"तो तुम्हारे माता-पिता विवाह के लिए मान गए हैं क्या?"

"पिता जी मान गए हैं और माता जी नहीं मानेंगी। विवाह उनकी अनुमति के बिना ही हो जाएगा।"

"मेरा कहना है कि इसके लिए जल्दी ही क्या है? अपनी माता जी को विचार करने का अवसर दे दो न।"

"और इतने में कोई दूसरा गोल कर गया तो?"

"क्या मतलब?"

"मतलब तो सीधा है। कोई दूसरा रमा को विवाह कर ले गया तो?"

"तो कोई और लड़की मिल जाएगी। हमारी भी तो एक और

बहन है।"

"प्रभा! नहीं मैं प्रभा से विवाह नहीं करूँगा।"

"यह तो ठीक है सुन्दर भैया! पर तुमको विदित होना चाहिए कि दोनों जुड़वाँ बहनें हैं। जो कुछ एक खाती है, दूसरी भी वही खाती है। जो एक पहनती है, दूसरी भी वही पहनती है। जिसको एक पसन्द कर वरना चाहती है, दूसरी भी उसी से विवाह करना चाहती है। जानते हो हमारे घर में क्या हो रहा है? रमा और प्रभा दोनों तुमसे विवाह करना चाहती हैं। बड़ी मुश्किल से दोनों को मनाया है कि दोनों का एक से विवाह तो हो नहीं सकता। अब दोनों हठ कर रही हैं कि दोनों का एक ही दिन विवाह हो।"

सुन्दर यह समस्या सुन अवाक् रह गया। दोनों घर की ओर आ रहे थे और सुन्दर सदानन्द के कहने का अर्थ समझ रहा था। उसको जब इसका तात्पर्य समझ में आया तो बोला, "सदा भैया! इस का अभिप्राय है कि या तो मैं प्रभा के लिए एक अच्छा लड़का ढूँढूँ, नहीं तो दोनों से विवाह कर लूँ। मैं पहली बात करने का यत्न करूँगा। और भगवान् ने चाहा तो दोनों बहनों का विवाह एक ही दिन में हो जाएगा।"

"हम भी यत्न कर रहे हैं।"

"पर भैया! एक बात है। रमा से मेरा विवाह होगा। यह निश्चय जानो।"

"क्यों? प्रभा में क्या खराबी है?"

"नहीं, यह बात नहीं। दो वर्षों से मेरे मन में यह धारणा-सी बनी हुई है कि वह मेरी पत्नी बनेगी और दो वर्षों से ही मैं उसके साथ अपने जीवन के अनेकानेक चित्र बनाता आ रहा हूँ। कुछ मस्तिष्क में ऐसी भावना बन गई है कि वह मेरी वस्तु है। पिछले कुछ दिनों से उसके लिए माँ से लड़ता आ रहा हूँ और अब कहीं तुम लोगों ने अदल-बदल करने का यत्न किया तो ठीक नहीं होगा।"

सदानन्द चुप कर गया। दोनों गली में पहुँच गए थे। सुन्दर ने कहा, "चलो मैं मौसी से भी कह आऊँ। रमा की सगाई तो मेरे संग हो जानी चाहिए। विवाह से पहले हमको एक और सुयोग्य वर को ढूँढ लेना चाहिए और दोनों का एक ही समय विवाह हो जाएगा।"

सदानन्द सुन्दर को अपने घर ले जाना नहीं चाहता था परन्तु वह मानता कब था। सदानन्द तो पीछे ही रह गया और वह सीढ़ियाँ चढ़ आवाज देने लगा, "मौसी! मैं सुन्दर हूँ।"

लक्ष्मी रसोई बना रही थी। वह रमा प्रभा को वहाँ बैठाकर आ गई। "आओ सुन्दर! आज नीचे का कमरा खाली है। वहाँ चलकर बैठें।"

विवश सुन्दर को पिछले पाँव लौटना पड़ा। सीढ़ियाँ उतरते हुए उसने पूछा, "भाभी नहीं है आज?"

"वह माँ के यहाँ गई है।" लक्ष्मी ने परमानन्द का कमरा खोला तो दोनों वहाँ जा बैठे। सदानन्द ने दियासलाई लाकर लैम्प जला दिया। बात सदानन्द ने आरम्भ की। "माँ! उस दिन सुन्दर भैया परीक्षा में पास हुआ था और रमा माँगने आया था। आज इसको नौकरी मिली तो रमा प्रभा दोनों को माँग रहा है। रमा को अपने लिए और प्रभा को अपने किसी मित्र के लिए।"

"कौन मित्र?"

"अभी निश्चय नहीं किया है।" सुन्दर ने कहा, "सदा भैया ने कहा है कि दोनों का विवाह एक ही दिन होना चाहिए। तो मैंने कहा कि मैं उसके लिए भी वर ढूँढ दूँगा।"

"शाबाश बेटा!" लक्ष्मी ने कहा, "पर वह वर भी तुम्हारी भाँति परमानन्द और सदानन्द को पसन्द होना चाहिए।"

"देखो तो मौसी! मैं क्या करके दिखाता हूँ। मैंने यह कहा है कि मैं प्रभा के लिए लड़का ढूँढ दूँगा और तब तक विवाह के लिए प्रतीक्षा भी करूँगा। पर रमा मेरे लिए चुक है।"

"वह क्या होता है ?"

"यह सदानन्द बता देगा। मैं अभी जाकर पिताजी को भेजूँगा। जिससे सगाई हो सके।"

सुन्दर अपने पिता जी को भेज नहीं सका। उसके घर में उसकी माँ ने महाभारत मचा रखा था। सुन्दर जब घर पहुँचा तो उसके पिता ने कहा "लो सुन्दर आ गया। तुम दोनों आपस मे फैसला कर लो।"

'क्या फैसला कर लें पिता जी ?"

"यही कि रमा से विवाह होना है या नहीं ?"

"देखो माँ ! मेरा विवाह रमा से ही होगा और किसी लड़की से नहीं होगा। तुम मानोगी तब भी और नहीं मानोगी तब भी। पिताजी मान चुके हैं और अच्छा तो यह है कि तुम भी मान जाओ।"

"मैं रमा जैसी लडकी को अपने घर में नहीं रख सकती। न ही मैं लक्ष्मी के परिवार से अपना सम्बन्ध जोड़ूँगी।"

"अच्छा माँ ! यह बताओ कि मै रमा से विवाह कर लूँ तो तुम क्या करोगी ?"

"मैं उसको इस घर मे घुसने नहीं दूँगी।"

"यह बहुत मामूली बात है, माँ ! मैं विवाह से पहले ही एक अच्छा-सा मकान भाड़े पर ले लूँगा। जिसमें तुम चाहो तो आकर रह सको और यदि न चाहो तो न सही।"

"उस मकान का खर्चा कैसे चलाओगे ? पचास रुपये में घर-गृहस्थी का खर्चा कैसे चल सकता है ?"

"इसका हिसाब-किताब मैं कर लूँगा। इसकी तुम चिन्ता न करो।"

"तुम्हारे विवाह पर तुम्हारे पिता को एक पैसा भी खर्च नहीं करने दूँगी। गरीबों की लड़की लेकर गरीब हो जाओगे।"

"मैं समझता हूँ कि गरीबों की लड़की अमीरों के घर आकर अमीर ही होगी। माँ ! देखती जाओ मैं करता क्या हूँ।"

"मैं लक्ष्मी के बच्चों की इतनी निन्दा करूँगी कि तुम्हारे विवाह पर एक भी आदमी नहीं आएगा।"

"मैं उनकी इतनी तारीफ करूँगा कि उनकी निन्दा करने वाले को लोग पागल कहने लगेंगे।"

चरणदास हँस पड़ा और बोला, "बस! बस करो। यह क्या औरतों की भाँति लड़ रहे हो। सुन्दर को अधिकार है कि जिससे वह चाहे विवाह कर सकता है और जिससे वह विवाह करेगा, उस लड़की की निन्दा कर हम मूर्ख नहीं बन सकते। यदि वह कुछ खराब भी रही हो, तब भी हमारा कर्तव्य है कि उसको खराबी से बचाएँ और उसकी मान-प्रतिष्ठा को बट्टा न लगने दें।"

"पर मैं तो चाहती हूँ कि ऐसी लड़की से विवाह न किया जाए।"

"कैसी लड़की से?" सुन्दर ने पूछा।

"रमा चोट्टी से।"

"वह चोरी करती थी। पर ऐसा तो सब बच्चे करते हैं। अब तो वह ऐसा नहीं करती।"

"तुमने उसकी चोरी को छिपाया था।"

"कौन कहता है?"

"रामलाल ने कहा था कि वह छः आने की चीनी ले गई थी और बाद में तुमने दो आने की चीनी अपने पास से लेकर उसमें डाल दी थी।"

"माँ! केवल यही नहीं। साथ ही जब उसने मान लिया कि उसने दो आने अपने पास रखे हैं तो उसके सच बोलने पर मैंने उसको दो आने इनाम भी दिया था। जब किसी का सुधार करना होता है, तो कई प्रकार से उसको ठीक व्यवहार पर लाने के लिए प्रोत्साहन देना पड़ता है। सो मैंने भी किया था। इसमें क्या खराबी हुई?"

"देखो सुन्दर की माँ!" चरणदास ने कहा, "जब से रमा से विवाह की चर्चा चली है, मैं मुहल्ले और बाजार के बीसियों आदमियों

"हाँ। तुम पर एक सौ रुपया महीना छः वर्ष तक खर्च किया है। उसका कुछ भाग तो मिलना ही चाहिए। उनकी लड़की इतने पढ़े-लिखे की बीवी बनने जा रही है।"

इस झगड़े को चरणदास ने बन्द करा दिया। उसने कहा, "अच्छा तुम जाना और बातचीत कर लेना।"

इस रात तो बातें करते-करते बड़ी देरी हो गई थी। इस कारण चरणदास परमानन्द से मिलने नहीं जा सका। अगले दिन जब परमानन्द अपनी बाईसिकल निकाल अपने काम पर जाने लगा तो चरणदास दातुन करता हुआ उसके पास जा खड़ा हुआ। परमानन्द ने नमस्ते कही तो चरणदास ने पूछा, "पमी! बहुत जल्दी है क्या?"

"नहीं लाला जी! आप बताइये।"

"तो चलो। कुछ दूर तक पैदल चलते हैं।"

दोनों गली से निकल शाहालमी दरवाजे की ओर चल पड़े। चरणदास ने बताना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "सुन्दरलाल ने बी० ए० पास कर लिया है।"

"जी हाँ। मालूम हो गया है। सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई है।"

"आज से उसकी नौकरी भी लग गई है।"

"तब तो बहुत-बहुत बधाई हो।"

"अब मैं उसका विवाह करने की बात सोच रहा हूँ।"

"बहुत अच्छा विचार है।"

"मैं तुम्हारी बहन रमा से सुन्दर का विवाह करना चाहता हूँ।"

"और मौसी जी क्या चाहती हैं?"

"हम दोनों एकमत नहीं हैं।"

"इसका मैं क्या अर्थ समझूँ?"

"सुन्दर की माँ इस विवाह के पक्ष में नहीं है। मैं यह विवाह चाहता हूँ, परन्तु मेरे चाहने से क्या हो सकता है, जब तक लड़की के भाई और उसकी माँ न चाहें। मैं आप लोगों की सम्मति जानना चाहता हूँ।"

"हम सुन्दर को एक योग्य वर समझते हैं, परन्तु सुन्दर की माँ के विरोध मे यह बात हो सकेगी क्या ?"

"मै इस विवाह के पक्ष मे हूँ। इस पर भी यह आपके समझने की बात है कि लडकी की सास का विरोध क्या रूप लेगा ?"

"हमारा विचार है कि समझा-बुझाकर मौसी को अनुकूल कर लेना चाहिए।"

"आपका विचार ठीक है, परन्तु मेरा अनुभव है कि सुन्दर की माँ के मान जाने की सम्भावना नही।"

"इस पर भी यत्न तो करना ही चाहिए।"

"वह तो हो रहा है और विवाह के उपरान्त भी होता रहेगा। इस पर भी आपकी बहन का विवाह यह मानकर ही करना होगा कि सास रूठी हुई है और रूठी रहेगी।"

"तो आप हमको क्या सम्मति देते है ?"

"रमा यदि मेरी लडकी होती तो मै इस प्रकार का रिश्ता मान जाता।"

परमानन्द विस्मय मे चरणदास का मुख देखने लगा। इस विषम परिस्थिति मे वह इस प्रकार की सम्मति को सुनने के लिए तैयार नही था। इस पर भी उसने कहा, "लालाजी! यह आपकी ही तो लडकी है। आप जैसा चाहिए, वैसा करिए। हम भी आपके ही बालक है।"

"तो बात पक्की रही। बताओ सगाई कब होगी ?"

"यह आप बताइये। हाँ इतना आप समझ लीजिए कि हम बहुत ही निर्धन लोग है। कुछ दे-ले नही सकेगे। केवल लडकी ही देने को है।"

"इसकी तुम चिन्ता मत करो। एक बात ध्यान रखो कि यदि सुन्दर की माँ कुछ माँगे तो देने से न न करना। मै सब इन्तजाम कर दूँगा।"

परमानन्द को यह बात कुछ जँची नही। उसने पूछा, "लालाजी!

इससे क्या मतलब है आपका ? क्या आप यह कहना चाहते है कि हम आपसे धन लेकर सुन्दर की माँ को दिखा दें कि हमने दिया है ? यदि आपका यह कहना है तो मेरा इसके उत्तर मे निवेदन है कि यह विवाह नहीं हो सकेगा। हम ऐसे अच्छे कार्य का श्रीगणेश धोखे मे नहीं करना चाहते। फिर इसका एक व्यवहारिक अग भी है। यदि हम आपसे लेकर ही रमा के दहेज का प्रबन्ध कर दे तो प्रभा के लिए हम क्या करेंगे ?"

चरणदास को बात समझ आ गई। उसने कहा, "परमानन्द ! तुम ठीक कहते हो। तुम जैसे मन आए करो। मै समझता हूँ कि मै, सुन्दर और पॉच अन्य लोग आवेंगे और सगाई की रस्म पूरी कर जाएँगे। तुम हमारे लिए नारियल और चौदह छुआरे शकुन-मात्र के लिए तैयार रखना।"

सुन्दर की माँ दोपहर को लक्ष्मी के पास जा पहुँची। सब बच्चे स्कूल गये हुए थे। सदानन्द दोपहर का खाना खाने आया हुआ था। चमेली घर का काम कर रही थी। सुन्दर की माँ आई तो सीढियो पर से ही आवाज देने लगी, "परमानन्द की माँ ! ओ परमानन्द की माँ !!"

लक्ष्मी चौके से निकल आई और देखने लगी कि कौन आवाज दे रहा है। सदानन्द ने भी देखा तो विस्मय मे मुख देखता रह गया। चमेली चौके का काम छोड वहाँ आ गई। लक्ष्मी ने सुन्दर की माँ को आदर सहित बैठाया और पूछा, "सुन्दर की माँ ! आज तो बहुत कृपा की है जो इस घर को पवित्र किया है। बताओ कैसे आना हुआ है ? हम क्या सेवा कर सकते है आपकी ?"

"बात तो आपको पता चल गई होगी। सुन्दरलाल के पिता आज पमी से मिले थे। पमी ने कहा है कि आप से मिलकर मै बातचीत कर लूँ।"

"पमी तो सुबह का गया रात को ही घर लौटता है। उसने क्या बात सुन्दर के पिता से की है, हमे नहीं पता। आप ही बता दीजिए।"

"यही रमा के विवाह की बात थी। पमी ने कहा है कि वह जात-पात का विचार नहीं रखता। वह अपनी बहन क्षत्रियों के घर देने को तैयार है। इस पर शेष बात करने मैं आई हूँ।"

"बताओ बहन!" लक्ष्मी ने पूछा।

"मैं चाहती हूँ कि लेन-देन की बात कर लूँ। लडके ने बी० ए० पास किया है और रेल के दफ्तर में नौकर हो गया है।"

"सो तो सदा ने बताया ही है।"

"मैं आपके विषय में भी जानती हूँ कि रमा के पिता के चले जाने से आर्थिक अवस्था अभी ठीक ढग पर नहीं आई। इस पर भी कुछ तो व्यवहारिक बात करनी ही पड़ेगी। कोई और होता तो पाँच हजार से कम पर नहीं मानती। आपसे दो हजार से कम नकद नहीं मिलना चाहिए। नहीं तो विवाह की बात आगे चलनी कठिन है।"

सदानन्द और लक्ष्मी यह बात सुन अवाक् रह गए। उन्हें चुप देख सुन्दर की माँ ने कहा, "विवाह के समय भूषण और कपडों के अतिरिक्त लडके के लिए एक सोने की घडी, एक बाईसिकल और एक ग्रामोफोन बाजा जरूर होना चाहिए।"

अब सदानन्द को हँसी सूझी। उसने कहा, "मौसी! बस? हमने तो इससे कहीं अधिक देने का विचार कर रखा है। इस सब के अलावा एक रेशमी सूट और भूषणों का सैट आप के लिए भी देने का विचार है।"

सब कुछ पक्का कर देंगे। हाँ, एक बात मैं बताना भूल गया। परमानन्द के वकील साहब कह रहे थे कि रमा के विवाह पर एक मोटर देने का प्रबन्ध करना चाहिए। मैं तो चाहता था कि एक हाथी दे दूँ। पर डरता हूँ कि सुन्दर के पिता उसको बाँधेंगे कहाँ।"

सुन्दर की माँ को सन्देह हो गया कि सदानन्द उसकी हँसी उड़ा रहा है। इससे वह विचार करने लगी कि उसके कहने का क्या उत्तर दे। सदानन्द ने उसको चुप देख कहा, "मौसी! हमने तो बरातियों को रोटी देने के साथ-साथ एक-एक पगड़ी भी देने का विचार किया है।"

"सदा! चुप रहो।" लक्ष्मी ने सदा के भाव को समझ कर कहा।

"क्यों माँ! और क्या चाहती हो? हम दो भाई कमाते हैं। अपनी बहन के लिए हमको कुछ तो करना ही चाहिए।"

"जरा ठहरो। बहन जी को बताने दो कि वे क्या चाहती हैं।"

"मैं समझती हूँ" सुन्दर की माँ ने कहा, "कि जब बहन के भाई इतना कुछ करने को तैयार हैं, तो मेरे कहने की आवश्यकता नहीं। हाँ, यह देख लेना कि यदि मुझसे हँसी की तो लड़की को कीड़े पड़ जावेंगे। उसको जीवन का एक-एक दिन गुजारना कठिन हो जावेगा।"

"मौसी! हम सब समझते हैं। तुमको किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। तुम सुन्दर और उसके पिताजी को कहना कि हमसे मिल लें और सब बातें ठीक-ठीक निश्चय कर लेंगे।"

सुन्दर की माँ गई तो लक्ष्मी ने सदानन्द से कहा, "यह तुमने क्या कह दिया है?"

"क्या कह दिया है माँ? यह औरत हमसे हँसी करने आई थी। यह जानते हुए भी कि हम निर्धन हैं, हमसे दहेज में दो हजार माँगने चली आई है।"

"पर बेटा! अपने से बड़ों की हँसी उड़ाना किसी भी अवस्था में उचित नहीं। फिर वह तो रमा की सास बनने वाली है।"

"माँ! यदि रुपये देने की बात रही तो रमा का उससे विवाह नहीं

होगा। सुन्दर को विवाह करना है तो बिना कुछ लिये ही करना होगा। मुझको तो विश्वास है कि यह औरत कार्य में विघ्न डालने के विचार से ही यहाँ आई थी।"

रात को सुन्दर और उसके पिता आए तो सदानन्द ने बताया कि सुन्दर की माँ ने क्या-क्या माँगा है। इस पर चरणदास ने मुस्करा कर कहा, "और सदा! तुमने भी तो एक मोटर, एक हाथी, और सब बरातियों के लिए पगड़ी देने को कहा है। देखो जी! मैं सब कुछ समझता हूँ। इस औरत को सीधा करने का उपाय एक ही है कि इसकी पूर्णरूप से अवहेलना की जाए।

"मैंने बुद्धवार का दिन प्रातः आठ बजे का समय सगाई के लिए निश्चित किया है। सो आप तैयार रहिएगा। हम सात आदमी आवेंगे। साधारण सा प्रबन्ध ही होना चाहिए।"

परमानन्द और सदानन्द ने सगाई पर पूर्ण कार्य की योजना बना ली। सब आने वालों के लिए पीने के लिए दूध और थोड़ी-थोड़ी मिठाई का प्रबन्ध करना था। सगाई के निमित्त देने के लिए एक थाल लड्डू और पाँच रुपये नकद और लड्डू ढाँकने को रेशमी रूमाल। बस इसके अतिरिक्त कुछ प्रबन्ध नहीं था।

सदानन्द आज बहुत प्रसन्न था। रमा के विषय में सब कार्य सन्तोषजनक चल रहा था। उसको अब प्रभा की चिन्ता थी। वह विचार करता था कि ऐसा कोई सज्जन अन्य भी मिल सकेगा क्या?

इसी विचार में लीन अगले दिन वह लायब्रेरी जा रहा था कि वह लड़की, जो उसके पास शबनम का पत्र लेकर आई थी, मिल गई और साथ-साथ चलने लगी। सदानन्द ने भयभीत हो कहा, "देखिए, मेरे पीछे खुफिया पुलिस लगी है। और यदि आप मेरे साथ कुछ

अधिक समय तक रहीं तो खुफिया पुलिस आपके पीछे भी लग जावेगी"

वह लड़की यह सुन घबराई। इस पर उसने कहा, "तो आपसे कब और कहाँ मिला जा सकता है ?"

"लायब्रेरी ही सुरक्षित स्थान हो सकता है। इस पर भी मैं विश्वास से नहीं कह सकता।"

"अच्छी बात है। मैं स्वयं मिलने का स्थान ढूँढ लूँगी। आज-कल आप किस समय घर पर पहुँचते हैं ?"

"मध्याह्न के समय डेढ़ बजे।"

"ठीक है। प्रबन्ध हो जावेगा।"

"पर क्या मिलना जरूरी है ?"

"यह मैं नहीं जानती। मैं तो अपनी सहेली का सन्देशा आप तक पहुँचाना चाहती थी। उसमें कुछ आवश्यक है अथवा अनावश्यक मैं नहीं जानती। उसका पत्र बंद लिफाफे में है।"

"मेरे से सम्पर्क बनाना खतरे से खाली नहीं। देख लें।"

वह लड़की सदानन्द से पृथक् हो गई। सदानन्द ने समझा कि उसने इसको सचेत कर ठीक ही किया है।

इस पर भी सदानन्द जब घर पहुँचा तो उसकी माँ ने उसको एक बंद लिफाफे में पत्र दिया। उसने कहा, "एक दस बारह वर्ष की आयु का लड़का दस बजे के लगभग यह चिट्ठी दे गया है और कह गया कि यह तुम्हारे लिए है।"

लिफाफे पर कोई पता नहीं था। सदानन्द ने पत्र खोला। उसके नीचे ऊपर कोई नाम नहीं लिखा था।

चिट्ठी शबनम की थी। उसमें लिखा था, "आपकी चिट्ठी मिलने से कुछ तो तसकीन मिली है। मगर आपने यह क्या लिखा है कि आप मुझको असली हिन्दू ख्याल वाली औरत देखना चाहते हैं।

"यहाँ, जिस जगह पर मैं हूँ, यह समझा जाता है कि हिन्दू एक जानवर है, जो पुराने गले-सड़े आज से पाँच हजार साल पुराने ख्यालों

मे जकड़ा हुआ, खुद मुसीबत की जिन्दगी बसर करता है और अपने ओस-पडोस वालों को भी मुसीबतों मे डालता रहता है। हिन्दुओ मे विधवाओं की मुसीबत, औरतों को लौंडियो और जूतियों की भाँति समझना, धन का लालच, लक्ष्मी की पूजा, पत्थर के ढेलों को भगवान् और सब किस्म की इन्सानियत से गिरी हुई बातों का मानना और करना ही दिखाई देता है। क्या आप मुझको यह सब कुछ मानने और करने वाली बनाने का यत्न करना चाहते हैं? मैं तो आपको ऐसा नही समझी थी। मैं चाहती थी कि इसके मुतल्लिक़ वाजा तौर पर आप मुझको लिखकर समझाएँ। जो दूसरी बातें आपने लिखी हैं, वह अपने में इख्तियार करने की कोशिश कर रही हूँ। उम्मीद है कि आप मुझमें वे बातें, जहाँ तक मुमकिन है, ठीक पाएँगे।"

सदानन्द की माँ ने कहा, "वह लड़का कहता था कि कल चार बजे वह पत्र का उत्तर लेने आएगा।"

"अच्छी बात है। पत्र का उत्तर देना ही है तो शीघ्र ही दे दूँगा।"

सदानन्द ने रात ही बैठ कर उत्तर लिख दिया। उसने लिखा—'मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि तुमने अपने मन का सन्देह पूछने का साहस किया है। सो मैं बताता हूँ।

"किसी भी बात की आखिरी सच्चाई क्या है, मान लेना कुछ बहुत बड़ी अक्लमन्दी नही। इन्सान की अक्ल की हद्द को न जानने से ही ऐसी बातें मानी जा सकती है। इसलिए हर एक बात पर खुले मन से नए-नए ख्याल सुनने और उन पर गौर करने के लिए तैयार रहना, जहाँ इन्सान के सही दिमाग का सबूत है, वहाँ यह इन्सान की तरक्की के लिए रास्ता खोल देता है।

"यह है हिन्दूपन के ख्यालो की बुनियाद। हिन्दुओ मे परमात्मा से लेकर अदना से अदना चीज पर नुक्ताचीनी की और सुनी जाती है और इस किस्म की नुक्ताचीनी करने वाले को अहिन्दु नही मान लिया

रही है, मगर मेरे घर की देखभाल नहीं कर रही।"

अगले दिन वही लड़का आया और माँ से पत्र ले गया। माँ ने पूछा, "सदा! यह कौन था और यह किसकी चिट्ठी थी?"

"माँ! वह लड़की, जिसको मैंने तुम्हारे पास भेजा था, जब तुमसे मिलकर अपनी माँ के पास गई तो उसकी माँ को सन्देह हो गया कि वह हिन्दू हो जावेगी। इस कारण उसका किसी मुसलमान से विवाह कर देने का प्रबन्ध करने लगी। एक रात उसका एक मुसलमान लड़के से निकाह पढ़ाने का प्रबन्ध हो गया था कि वह घर से भाग कर कहीं छिप गई।

"उसकी चिट्ठी आई है कि वह इक्कीस वर्ष की आयु हो जाने पर मुझसे शादी करने आवेगी। मैंने उसको लिख दिया है कि जब तक वह मेरे विचार के अनुसार अपना चरित्र नहीं बना लेती, तब तक हमारा विवाह नहीं हो सकता।"

"अब वह कितने वर्ष की है?"

"अट्ठारह वर्ष की हो चुकी है। अढाई-तीन वर्ष में वह बालिग होगी।"

"तब तक तुम विवाह नहीं करोगे?"

"मेरे विवाह के लिए अभी देरी है। कदाचित् तब तक वह बालिग हो जाए और मेरी शर्त पूरी कर दे तो फिर उससे भी शादी हो सकती है।"

माँ चुप कर रही। पर वह अपने मन में मिन्नतें मनाती रही कि उससे पहले ही सदानन्द का विवाह हो जाये।

निश्चित दिन सुन्दर, चरणदास और उनके दो सम्बन्धी तथा तीन मित्र आए और दूध-मिठाई खा, लड्डुओं का थाल तथा पाँच रुपये

ले गए। सगाई हो गई और गली में धूम मच गई कि सुन्दर की रमा से सगाई हो गई है।

घर पर सुन्दर की माँ ने लड्डुओं का थाल लेकर सुन्दर के पिता को आते देखा तो आग बबूला हो गई। उसने आते ही पूछा, "क्या दिया है परमानन्द ने?"

"माँ! यह लड्डू और पाँच रुपये।" सुन्दर ने कहा।

"बस?"

"और अपनी बहन देने का वचन दिया है।"

"तो यह लड्डू भी क्यों दिए हैं?"

"हमारे खाने के लिए और सम्बन्धियों में बाँटने के लिए।"

"इतने लड्डू में किस-किस को बाँटूँगी।"

"तो अपने पास रुपये नहीं रहे क्या? मैं आज ही हलवाई को एक मन लड्डू बनाने के लिए कह आया हूँ। शाम तक आ जावेंगे। तुम खूब मुहल्ले में और सम्बन्धियों में बाँटना।"

"जब तुमने सब-कुछ अपनी मर्जी से किया है, तो लड्डू भी तुम स्वयं ही बाँट देना।"

"अच्छा माँ! मैं बाँट दूँगा। ठीक है, विवाह मेरा होना है तो तुम्हें क्यों कष्ट दूँ?"

सगाई के दिन रमा ने चमेली से फिर कहा, "भाभी! भैया से कह देना कि बिना प्रभा के विवाह हुए मैं विवाह नहीं कराऊँगी।"

"देखो रमा! तुम्हारे भैया का विवाह हो गया है। कमला बहन का भी विवाह हो गया है। अब तुम्हारा हो रहा है। विश्वास जानो कि प्रभा का भी होगा।"

"परन्तु मैं कहती हूँ कि उसका मुझसे पहले होना चाहिये।"

"क्यों?"

"वह मुझसे बड़ी है। इसलिए उसका विवाह पहले होना चाहिए।"

"केवल एक घण्टा ही तो बड़ी है।"

"तो विवाह भी एक घण्टा पहले हो जाए।"

चमेली हँस पड़ी। फिर कुछ विचार कर कहने लगी, "पर कमला बहन से तुम्हारे भैया छोटे हैं और विवाह पहले हो गया था।"

"भैया और कमला बहन जुड़वाँ नहीं थे। यहाँ तो भाभी! यह है कि मुझको उसके बिना चैन नहीं और उसको मेरे बिना। जब से प्रभा को पता चला है कि मेरा विवाह हो रहा है, वह सूख कर काँटा हो रही है और मुझको सब कुछ फीका-सा लग रहा है।"

चमेली ने सब कुछ परमानन्द को बता दिया और उसने भी यह अनुभव किया कि प्रभा कुछ दुर्बल हो रही है। इससे उसको चिन्ता लगने लगी। प्रभा के लिए उचित लड़के की तलाश होने लगी।

चमेली ने एक दिन प्रभा को समझाया भी। परन्तु उसने कह दिया, "मैं प्रसन्न रहने का भरसक यत्न करती रहती हूँ, परन्तु कुछ बात है, जो मेरे बस में नहीं। मैं यह समझती हूँ कि हम रोटी, कपड़ा और अन्य शारीरिक आवश्यकताएँ तो परस्पर बाँटकर ले सकती हैं, परन्तु किसी दूसरे का प्रेम कैसे बाँटा जा सकता है। इस पर भी मेरी भूख कम हो गई है। रात को नींद नहीं आती और पढ़ने में रुचि नहीं रही।"

कई दिनों के मनन के पश्चात् प्रभा ने रमा से कह दिया कि उसको अपने विवाह में रुकावट नहीं डालनी चाहिए। रमा का उत्तर था, "परन्तु यह मैं तुम्हारे लिए नहीं कर रही। मुझको तो स्वयं कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा है कि बिना तुम्हारे मेरा जीवन चलना कठिन हो जायगा।"

"यह माना, पर मैं पूछती हूँ कि तुम्हारा विवाह न करना और मेरा किसी अन्य से विवाह हो जाना, हमारे वियोग को किस प्रकार कम कर सकेगा? एक ही बात हो सकती थी कि हमारा एक ही पति हो। परन्तु यह नहीं होगा। न ही यह किसी को पसन्द होगा। शेष कुछ भी हमारी समस्या को सुलझाने में योग्य नहीं हो सकता।"

बात तो यह थी कि रमा प्रभा क्या कहती है अथवा क्या करती है, इसका प्रभाव होने वाली घटनाओं पर कुछ भी नहीं था। किसी अज्ञात शक्ति के अधीन घटनाएँ चल रही थीं और उनको रोकने अथवा बदलने का यत्न निष्फल हो रहा था।

सुन्दर यत्न कर रहा था कि प्रभा के लिए कोई वर मिल जाय। सदानन्द और परमानन्द तथा कँवरसेन भी इधर-उधर खोज कर रहे थे। परन्तु इसका कुछ भी परिणाम नहीं निकल पा रहा था।

समय व्यतीत होता जाता था। सुन्दर की सगाई को पाँच मास से ऊपर हो चले थे। सुन्दर ऑफिसर-ग्रेड की परीक्षा देने की तैयारी में लगा हुआ था। इसके अतिरिक्त अफसरों से मेल-मुलाकात पैदा करने के लिए रेल्वे क्लब में जाता था और वहाँ भी खेल-कूद में भाग लेता था।

परीक्षा हुई और वह उत्तीर्ण हो गया। उसकी अफसरों से मित्रता का परिणाम यह हुआ कि उसको उन्नति मिल गई और वह स्टोर में सुप्रिन्टेंडेंट नियुक्त कर जालन्धर भेज दिया गया। वह जालन्धर गया। वहाँ मकान का प्रबन्ध कर परमानन्द पर बल डालने लगा कि उसके विवाह की तिथि निश्चित् कर दी जाए।

इस विषय में लक्ष्मी, परमानन्द, सदानन्द और चरणदास में परामर्श हुआ। इस पर यह निश्चय हुआ कि रमा का विवाह हो जाना चाहिए। चरणदास ने परमानन्द से कहा, "सुन्दर ने लिखा है कि विवाह के दिन दस बजे लाहौर आएगा। चार बजे से छः बजे तक मुहल्ले के शिवालय में विवाह सम्पन्न होगा और रात को आठ बजे की गाड़ी से वह अपनी पत्नी को साथ ले जायगा। विवाह के पश्चात् पत्नी को ले जाते समय, वह किसी प्रकार का दहेज का सामान नहीं ले जायगा।"

इस प्रकार की बातों से लक्ष्मी को बहुत दुःख हुआ और वह लाला चरणदास से बोली, "हमारी निर्धनता को नंगा कर लोगों को

दिखाने से आप तथा सुन्दर को क्या मिलेगा ?"

चरणदास ने कहा, "बहन ! जो तुम कहो मैं सुन्दर को लिख देता हूँ। यह विवाह उसने ही निश्चित किया है और उसकी इच्छा ही मेरे लिए सर्वोपरि है।"

इस पर सदानन्द ने कहा, "लालाजी ! लिखने की आवश्यकता नहीं। मैं सुन्दर भैया के स्वभाव को जानता हूँ। उसकी हमें बदनाम करने की इच्छा नहीं। वह हमारी मान-प्रतिष्ठा को बनाए रखने के विचार से ही यह सब कुछ कर रहा है। हम उसकी इच्छाओं का आदर करेंगे। शिवालय मे विवाह होगा। बरातियो के स्वागत का भार हम उठाएँगे और जो कुछ हमने अपनी बहन को देना होगा, उसको देखने का अधिकार बाहर वालो को नही है।"

परमानन्द सदानन्द की सूझ-बूझ पर विश्वास रखता था। इस कारण उसने सदानन्द के कथन का समर्थन कर दिया। बात तय हो गई। पण्डित से विवाह की तिथि निकलवा ली गई।

जब विवाह इतने साधारण ढग से होने का निश्चय हुआ तो यह सुन्दर की माँ को ठीक प्रतीत नहीं हुआ। परन्तु जब से उसने विवाह का विरोध करना आरम्भ किया था, उससे सम्मति ली जानी ही बन्द हो गई थी।

यह नही कि सुन्दर की माँ ने इस अवहेलना को भगवान् का विधान मान शान्तिपूर्वक स्वीकार कर लिया हो। उसने मुहल्ले में घर-घर जाकर रमा और रमा के भाइयो की निन्दा करनी आरम्भ कर दी। परन्तु इसका कुछ परिणाम नही निकला। रमा की विवाह-तिथि निश्चित् हो गई और विवाह सम्पन्न हो गया।

सुन्दर ने निमन्त्रण-पत्र अपने सब सम्बन्धियों, मित्रो और कार्यालय के सहयोगियो को भेजे। मुहल्ले के सब लोग भी आमन्त्रित थे। लोग इस विवाह की सूचना पर लाला चरणदास से पूछने लगे, "लाला जी ! आपकी पत्नी कहती फिरती हैं कि वह बहू को बसने नहीं देगी

तो आप यह विवाह क्यों कर रहे है ?"

चरणदास शान्त चित्त से उत्तर देता, "भाई ! इस विवाह मे मेरी पत्नी की सम्मति नहीं है। इस पर भी लडका और लडकी वाले विवाह कर रहे हैं। मेरे विचार से वे ठीक कर रहे है। सुन्दर की माँ के घर मे बहू नहीं आएगी। इसके अतिरिक्त वह कर ही क्या सकती है !"

लोग हँस देते और तमाशा देखने के लिए विवाह के समय एकत्रित हो गए। सुन्दर के खिलाडी मित्र भी वहाँ आये हुए थे और सुन्दर ने उनसे कह रखा था कि वे विवाह मे किसी प्रकार की गडबड न करें।

विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया और सुन्दर अपनी पत्नी को ले मन्दिर से ही सीधा रेल के स्टेशन चला गया। चरणदास उनको गाडी पर चढाकर घर लौट आया तो सुन्दर की माँ को शोक-भवन मे कैकेई की भाँति लेटा देख खिलखिलाकर हँस पडा। सुन्दर की माँ ने मुख उठाकर अपने पति को सिरहाने खडा देखा, तो पूछा, "तो कर आए हो विवाह ?"

"हाँ देवी जी ! इससे तो यह सिद्ध होता है कि विवाह भगवान् के घर मे निश्चय होते हैं। तुम्हारे जैसी स्त्रियों के करने से विवाह न हुए है और न रुक सकते हैं।"

"यदि तुम इसमे सहायक न होते तो यह विवाह कदापि न हो सकता था।"

"कदाचित् तुम ठीक ही कहती हो। परन्तु मेरे मन मे इस विवाह के पक्ष मे प्रेरणा भी तो भगवान् की दी हुई थी। सुन्दर ने दफ्तर मे ही मुझसे कहा था कि वह रमा से विवाह करेगा और उसी क्षण मे मेरे मन मे यह बात उत्पन्न हुई कि सुन्दर का चुनाव बहुत अच्छा है। यह विचार बिना किसी के कहे, किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? मै समझता हू कि भगवान् ने ही यह बात मेरे मन मे कह दी थी कि मै इस विवाह का समर्थन करूँ।"

"परन्तु मेरे मन मे यह बात किसने पैदा की कि मै इस विवाह का

विरोध करूँ ?"

"देखो भाग्यवान्! यदि तुम्हारे मन की प्रेरणा भगवान् से की गई होती तो विवाह रुक जाता। यह रुका नहीं। इससे तुमको समझ लेना चाहिए कि तुम्हे प्रेरणा देने वाला भगवान् नहीं बल्कि शैतान था, जिसने तुम्हारे मन में विवाह का विरोध करने को कहा होगा।"

"पर क्या शैतान भगवान् से अधिक बलवान है, जो उसने भगवान् को मेरे हृदय में घुसने नही दिया ?"

"नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने अपने हृदय का द्वार इतना छोटा कर रखा है कि उसमें भगवान् जैसी महान् वस्तु घुस नहीं सकी। तुमने कभी यह माना ही नहीं कि दूसरे के मन में भी भावना होती है। उसका भी आदर करना चाहिए। तुमने कभी विचार नही किया कि झूठ बोलने से हृदय सकीर्ण होता है।"

"पर मैं यह विचार कर रही थी कि सुन्दर बहू को लेकर मुझसे आशीर्वाद लेने आएगा।"

चरणदास हँस पड़ा और पूछने लगा, "यह विचार तुमको क्यो आया ? क्या तुम समझती हो कि वह यहाँ आता और विवाहित जीवन की पहली ही घड़ी वह पत्नी को गालियाँ दिलवाने से आरम्भ करता ?"

"पर मैं तो आशीर्वाद देने के लिए बैठी थी। यह देखो मैंने बहू को देने के लिए क्या निकालकर रखा है।" इतना कह उसने अपने सिरहाने के नीचे से गले की कण्ठी निकालकर दिखाई, "यह मगलसूत्र मै बहू के गले में अपने हाथ से डालने वाली थी।"

'तो तुम वहाँ क्यों नहीं आ गई ? किसी ने आने से रोका था तुम्हें ?"

"मुझको अब वहाँ जाने में लज्जा लगती थी।"

"क्यों ?"

"मैंने बहू की निन्दा जो बहुत की थी।"

"अब तो इस आशीर्वाद को देने के लिए प्रतीक्षा और प्रायश्चित्

की आवश्यकता है। सुन्दर जब बहू को लेकर लाहौर आएगा तो वह उसको दे देना।"

"तो वह आएगा?"

"बहू की माँ और भाई-बहन यहाँ तो रहते हैं। वह आएगी और सुन्दर उसको लाएगा ही।"

शबनम का पत्र आए छः मास के लगभग हो गए थे। पुलिस ने फिर सदानन्द का पीछा करना छोड़ दिया था। सदानन्द की किताब 'सैरे परिस्तान' छपी और बिक रही थी। उस किताब को पढ़कर पसन्द करने वालों के पत्र तथा बधाईयाँ सदानन्द को आ रही थीं। सदानन्द इस सफलता से उत्साहित हो एक और पुस्तक लिखने की तैयारी कर रहा था।

वह अभी भी इनामी प्रेस में कातिब था। इस कारण उसकी फिरोज़ इत्यादि से कभी भेंट नहीं होती थी। धीरे-धीरे वह फिरोज़, शबनम की माँ और फकीरुद्दीन आदि को भूलने लग गया था।

एक दिन वही लड़की, जो उसको लायब्रेरी में मिलने आई थी और जो शबनम का पहला पत्र लाई थी, अनारकली बाजार में कुछ खरीदती हुई मिल गई। सदानन्द भी उसी दुकान से कुछ ले रहा था। उस लड़की ने सदानन्द को देखा और मुस्कराते हुए पूछा, "आपने मुझको पहचाना?"

सदानन्द ने ध्यान से देखा और कहा, "जी हाँ। सुनाइए, आपकी सहेली कैसी है। फिर कभी उसका पत्र नहीं आया।"

"आपकी अन्तिम चिट्ठी से उसको सन्तोष नहीं हुआ।"

"मुझको इसका बहुत शोक है। परन्तु मैंने अपने मन से बहुत ही सरल भाषा में उत्तर भेजा था।"

"भाषा की सरलता किसी बात को समझने में इतना भाग नहीं लेती जितना समझने वाले की अपनी शिक्षा है।"

सदानन्द उस लड़की की सूझबूझ पर चकित रह गया। वह उसका मुख देखता रहा। इस पर उसने पूछा, "क्या आपके पीछे अभी भी पुलिस लगी है?"

"मेरे विचार में नहीं। कभी किसी को देखा नहीं।"

"मैंने आपकी किताब 'सैरे-परिस्तान' पढ़ी है।"

"कहाँ मिली आपको?"

"एक दिन शबनम बहुत तारीफ कर रही थी। मैंने एक बुकस्टॉल पर लगी देखी तो मोल ले ली। शबनम ने पढ़कर सुनाई तो वास्तव में बहुत ही रुचिकर लगी।"

"तो आप स्वयं नहीं पढ़ सकीं?"

"नहीं। मैं उर्दू पढ़ी नहीं हूँ। हिन्दी जानती हूँ।"

"लेकिन उस किताब की भाषा भी उर्दू ही है?"

"मैं उर्दू समझ सकती हूँ।"

सदानन्द अपना सामान खरीदने लगा तो बातचीत का सिलसिला टूट गया। उस लड़की ने भी कुछ क्रीम पाउडर इत्यादि सामान खरीदा। सदानन्द एक शीशा, सेफ्टी रेजर, ब्लेड और साबुन खरीद बँधवा रहा था कि उस लड़की ने फिर पूछा, "मैं यदि आपसे मिलना चाहूँ तो लायब्रेरी में मिल सकती हूँ?"

"मैं लगभग नित्य वहाँ जाता हूँ।"

"तो किसी दिन मिलूँगी।"

एक दिन वह मिलने गई। सदानन्द तो समझता था कि उसके मिलने में कुछ प्रयोजन नहीं हो सकता। शबनम उससे किसी कारण नाराज है, अतएव उसकी कोई चिट्ठी आने की आवश्यकता नहीं। जब चिट्ठी नहीं आनी तो चिट्ठी लाने वाले के मिलने की भी आवश्यकता नहीं।

इस कारण जब वह लड़की उसकी कुर्सी के समीप की कुर्सी पर आकर बैठी और उसका ध्यान उधर गया तो उसको विस्मय हुआ। वह प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। उस लड़की ने कहा, "अभी तो कुछ पढ़ने बैठी हूँ।"

"मैंने समझा कि आप शबनम का कोई पत्र लाई हैं?"

"मैं उसको बताकर नहीं आई। उसको पता होता कि मैं यहाँ आपसे मिलने आ रही हूँ तो अवश्य पत्र देती।"

"अच्छी बात।" इतना कह सदानन्द अपनी पुस्तक पढ़ने लगा।

इस पर उस लड़की ने पूछा, "क्या पढ़ रहे हैं आप?"

"यह 'कथा सरित-सागर' एक विख्यात संस्कृत का ग्रन्थ है।"

"क्या लिखा है इसमें?"

"बहुत ही रोचक कहानियाँ हैं।"

"यह तो अँग्रेजी में है?"

"हाँ। परन्तु मूल ग्रन्थ संस्कृत में है। यह अंग्रेजी अनुवाद है।"

"कभी मैं भी पढ़ूँगी।"

जब सदानन्द अपने निश्चित समय पर उठकर जाने लगा, तो वह भी अपनी पुस्तक लौटाकर चल पड़ी। दोनों इकट्ठे बाहर निकले।

"आप किधर जाएँगे?" लड़की ने पूछा।

"कुछ काम है क्या?"

"ऐसे ही आपकी पुस्तक के विषय में कुछ पूछना था।"

"पूछिए। मुझको अभी कुछ काम नहीं। यहाँ से तो मैं घर ही सीधा जा रहा हूँ।"

"तो चलिए आपका घर भी देख लूँगी।"

सदानन्द बिना उत्तर दिए चल पड़ा। चलते-चलते उस लड़की ने पूछा, "वह नरवर का चरित्र, जो आपने अपनी पुस्तक में खेंचा है, क्या कोई ऐसा चरित्र आपकी जानकारी में है?"

"उसमें विचित्र बात क्या प्रतीत हुई है आपको? मैं तो उनको

एक साधारण स्त्री का चरित्र ही समझता हूँ।"

"सरवर अपने पिता, भाई और पुत्र से बहुत ही मुहब्बत करती है।"

"कौन स्त्री है, जो ऐसा नहीं करती ?"

"मगर उसकी मुहब्बत सफल नहीं होती।"

"मुहब्बत सफल तो हुई है। जब वह कठिनाई में पड जाती है, तो तीनो ही उसकी रक्षा के लिए आ उपस्थित होते हैं।"

"तो प्रेम की क्या इतनी ही सफलता है ?"

"ये सफलता के बाहरी चिह्न हैं। प्रेम तो एक दीपक की भाँति ज्योतिर्मय भाव है। जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक जलता है, वैसे ही एक प्रेम करने वाले हृदय से दूसरे हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है। इसी तरह दूसरे से तीसरे मे। जब प्रेम की ज्योति जाज्वल्यमान हो उठती है, तब परस्पर सहायता तो वैसे व्यक्ति का एक साधारण गुण हो जाता है।

"यही सरवर ने किया। परिस्तान एक ऐसा देश है, जहाँ सौन्दर्य की उपासना होती है। वहाँ सौन्दर्य शारीरिक रेखाओं से आँका जाता है। यह सरवर इस ससार की भूली-भटकी परिस्तान में पहुँच जाती है। वहाँ का स्थान सुन्दर, जीवन अतिसुलभ देख, वह अपने पिता, भाई तथा पुत्र को वहीं बुला लेती है। जैसा प्रेममय जीवन उसका यहाँ था, वैसा ही परिस्तान मे बना रहा। यहाँ प्रेम है तो घृणा भी है, वहाँ न तो प्रेम था न घृणा। सब अपने-अपने शृगार में मस्त रहते थे।

"सरवर के प्रेम को देख और अपने सम्बन्धियों से विशेष प्रेम देख परिस्तान के लोग उसको एक अद्भुत जानवर समझने लगे। वहाँ तो एकरस रहा जाता था। सरवर जैसा प्रेम अपने पुत्र तथा भाई को दे सकी, वैसा प्रेम वहाँ कोई नही जानता था। साथ ही जैसी अवहेलना वह वहाँ के अन्य रहने वालों के प्रति रखती थी, वैसी अवहेलना वहाँ कोई नही जानता था।

"इससे सरवर का जीवन परिस्तान में एक विलक्षण बात हो गई। उन विलक्षणता के कारण उसको एक पिंजड़े में बन्द कर एक दर्शनीय वस्तु बना रख दिया गया।

"यह है मेरी कहानी। विलक्षणता सरवर में नहीं प्रत्युत् परिस्तान के रहन-सहन में है।"

"तो आप इस दुनिया के रहन-सहन को, जहाँ प्रेम और घृणा साथ-साथ होते हैं, पसन्द करते हैं ?"

"मैं क्या पसन्द करता हूँ और क्या पसन्द नहीं करता, यह बताने के लिए मैंने पुस्तक नहीं लिखी। मैंने तो एक काल्पनिक संसार की, जैसा कि परिस्तान में वर्णित है, कल्पना की है और वहाँ पर मनुष्य यदि पहुँच जाये तो बेचारे की क्या हालत हो सकती है, लिखने का यत्न किया है। अच्छा और बुरा बताने से मेरा कोई अभिप्राय नहीं था।"

"आपने हिन्दू धर्म की व्याख्या शबनम को अपने दूसरे पत्र में की थी। वह असत्य नहीं थी क्या ?"

"इसमें असत्य क्या बात थी ? वास्तव में धर्म का अर्थ साधारणतः आप लोग मजहब से लेती हैं। धर्म और मजहब में अन्तर है। हिन्दू कोई मजहब नहीं। हिन्दू धर्म है। धर्म का सम्बन्ध आचरण से है, विचारों से नहीं। आचरण व्यक्तिगत विचारों के अधीन नहीं पलता। यह एक समाज के सामूहिक निर्णयों के अधीन बनता है। विचार इसके विपरीत व्यक्तिगत होते हैं। इस पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं होता। मजहब विचारों का संग्रह होता है। एक विचार के लोग एक मजहब के मानने वाले माने जाते हैं। परन्तु एक प्रकार का आचरण रखने वाले लोग एक धर्म के अनुयायी कहे जाते हैं।

"उदाहरण के रूप में गोमांस-भक्षण हिन्दुओं में वर्जित रहा है। यह एक आचरण है। जब तक इसको हिन्दू-समाज में आचरण का अंग माना जाता रहा है, इसके भक्षण करने वाले अहिन्दू हो जाते रहे हैं।

"हिन्दू धर्म के मानने वालो मे कई मजहब है। अर्थात् हिन्दुओं मे विचारों के आधार पर कई समुदाय हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख, आर्य समाजी, देव समाजी इत्यादि अनेक मत है और इन मतो में अनेक मतान्तर हैं। चूँकि ये सब हिन्दू हैं, इस कारण ये विचार-ऐक्य को आचरण-ऐक्य से पृथक वस्तु मानते हुए, परस्पर विचार-भेद पर लडते नहीं।

"लडने वाले अहिन्दूपन को स्वीकार नहीं किए हैं। उदाहरण के रूप में सिखों के नौ गुरु तो हिन्दू ही थे। उनमे, पाँच ककार, जो सिखों के मुख्य चिह्न माने जा रहे है, नहीं थे। अतएव वे जब उन हिन्दुओं से, जो यह पाँच ककार नहीं रखते, झगड़ते है, तो वास्तव में वे अपने नौ गुरुओं की निन्दा ही करते हैं। यह व्यवहार न केवल अयुक्तिसगत है, प्रत्युत् आत्मघातक भी है। वे हिन्दू-धर्म में ककारों का रखना एक अग बनाना चाहते हैं। अर्थात् सिख अब गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादुर तक से सम्बन्ध-विच्छेद कर एक भिन्न आचरण के पोषक हो रहे है। इनके विचारों में जो महानता पाँच ककारों मे है, वह सत्य, धैर्य, क्षमा इत्यादि आचरणो मे नहीं रही। अतएव वे हिन्दुत्व के लक्षणों से दूर होते जा रहे हैं।

"कोई समय था, जब सिख पच-ककारों को हिन्दुओं से सम्बन्ध रखने अर्थात् हिन्दू आचरण रखने से गौण समझते थे। तब सिख हिन्दू धर्म के अन्तर्गत थे। परन्तु अब वे ककारों को मुख्य मानते है और आचरण को गौण। अत. हिन्दुओं से भिन्न होते जा रहे है।

"यही बात ईसाईयों की है। एक ईसाई अहिन्दु इसलिए नहीं कि वह 'टैन कमॉण्डमैंट्स' (दस खुदाई हुक्मों) को मानता है, प्रत्युत् इस कारण कि उसका रहन-सहन अर्थात् आचरण हिन्दुओं के समान नहीं रहा। ईसाईयों ने ईसाई नाम लेने के साथ-साथ हिन्दू समाज के आचरणो का त्याग किया था।"

"कौन से आचरण का त्याग किया था?"

"खान-पान में शुद्धता के आचरण को, सगोत्र-विवाह के आचरण को, विवाह-विच्छेद के आचरण को इत्यादि। ये बातें हिन्दू समाज के विद्वानों से निर्णय की गई थीं। उन हिन्दू विद्वानों की व्यवस्था के बिना ईसाई मज़हब का बपतिस्मा लेते ही, उनको हिन्दुओं से पृथक् करने वाला सिद्ध हुआ था।"

वह लड़की सदानन्द की बातों को एकाग्र-चित्त होकर सुनती आ रही थी। इस समय वे सदानन्द के घर के नीचे पहुँच गए थे। सदानन्द खड़ा हो गया और बोला, "लीजिए, यह है मेरा घर। हम बहुत निर्धन लोग हैं। यदि इस बात का विचार न हो तो आइये भोजन करिए। यह भोजन का समय है।"

"नहीं, आज नहीं। फिर किसी दिन करूँगी। मेरा आपसे परिचय का तो आज श्रीगणेश है। न जाने यह परिचय कहाँ तक ले जाएगा?"

"मैं समझता हूँ कि अभी भी श्रीगणेश नहीं हुआ। आपने अपना नाम-धाम तो बताया ही नहीं।"

"ओह! यह तो मैं भूल ही गई थी। क्षमा करिए। आपका नाम तो मैं पहले से ही जानती थी। आज धाम भी जान गई हूँ। मुझको यहाँ तक पहुँचने से पूर्व ही अपना नाम बताना चाहिए था। मेरा नाम शान्ति पीटर है। मैं श्री दुर्गादास पीटर, जो फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज में इतिहास के प्रोफेसर हैं, की बहन हूँ। मैं क्रिश्चियन गर्ल्स स्कूल में अध्यापिका हूँ।

"मैं समझती हूँ कि मैंने अपनी भूल का सुधार कर लिया है। अच्छा फिर किसी दिन भेंट होगी।"

शान्ति पीटर से भेंट सदानन्द का एक नया अनुभव था। वह आधा घण्टा से ऊपर उसकी बातों को शान्तिपूर्वक सुनती रही थी। सदानन्द

मन मे विचार करता था कि यह एकाग्रता क्या इस बात की सूचक है कि वह उसके विचारो को समझने लगी है अथवा केवल शिष्टाचार के नाते ऐसी थी। इसका उत्तर वह अगली बार मिलने पर जानना चाहता था। अतएव वह अगली भेट के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा।

आशा से पहले ही भेट हो गई। शान्ति यह जानती थी कि सदानन्द खाने के लिए दोपहर घर आता है और फिर साढे तीन-चार बजे तक घर पर रहता है। इस कारण एक दिन लगभग अढाई बजे वह घर जा पहुँची।

सदानन्द भोजन के पश्चात् विश्राम कर, चमेली को पढा रहा था। चमेली आजकल सदानन्द से हितोपदेश नामक कहानियो की पुस्तक पढती थी।

जब चमेली पढ रही थी तो किसी ने नीचे का द्वार खटखटाया। प्रभा, जो अब स्कूल पढने नही जाती थी, खिडकी मे से झाँक कर देखने लगी कि कौन है। उसने देख कर बताया कि एक लडकी है और सदा नैया को पूछ रही है। सदानन्द समझ गया कि यह शान्ति होगी। उसने प्रभा को नीचे भेज ऊपर ले आने के लिए कह दिया। वह चमेली को विग्रह के पाठ का परिणाम समझा रहा था।

प्रभा गई और शान्ति को ऊपर ले आई।

"आइये शान्तिदेवी जी!" सदानन्द ने कहा, "मै आपका अपने शेष भाग से परिचय करा दूँ।"

शान्ति चमेली के पास, जो पेट मे बच्चा होने के कारण फूली हुई थी, बैठ गई। प्रभा दोनो के पीछे बैठ गई। इस समय लक्ष्मी घर की छत पर कपड़े धो सूखने डालने के लिए गई हुई थी।

सदानन्द ने कहा, "यह हैं मेरे बड़े भाई की पत्नी। मेरी बचपन की सखी भी हैं। इनका नाम है पुष्पावती।"

शान्ति ने हाथ जोड नमस्ते की तो सदानन्द ने कहा, "और यह पीछे है मेरी छोटी बहन प्रभा। आजकल घर का काम करती है और

ौर अपनी जुड़वॉं बहन रमा के वियोग में रोया करती है।" प्रभा ने ाथे पर त्योरी चढ़ा कर सदानन्द की ओर देखा, परन्तु तुरन्त ही हँस ड़ी और शान्ति देवी को हाथ जोड़ नमस्ते करने लगी।

सदानन्द ने कहा, "एक तीसरा व्यक्ति है, जिससे आपका परिचय प्रत्यावश्यक है। वे मेरी मॉं हैं। इस समय ऊपर काम से गई हैं। मैं उनको बुलाता हूँ। प्रभा! जाओ मॉं को बुला लाओ।"

प्रभा ऊपर चली गई। शान्ति ने कहा, "आपकी बहन तो घर का काम करती है और आपकी भाभी क्या करती है?"

"तो आपको पता नहीं चला कि मैं क्या कर रही हूँ?" चमेली ने मुस्कुराते हुए कहा, "मैं इनके भाई साहब की एक प्रतिलिपि तैयार कर रही हूँ।"

तीनों हँसने लगे। शान्ति ने कहा, "मैं आज एक सन्देश लेकर आई हूँ।"

"शबनम का? तो लाइये।"

"मौखिक है।"

"क्या?"

"आप आज उसके साथ चाय पीजिए।"

"उसके साथ? उसका घर कहाँ है?"

"वह रहती तो है . . . . . .जालन्धर में। परन्तु मुझसे मिलने आया करती है। आज वह आई थी और जब मैंने आपसे अपनी भेंट का उल्लेख किया तो बोली कि आपको चाय पर नहीं बुलाया जा सकता क्या? मैंने ने स्वीकार कर लिया है और मैं आपको ले चलने के लिए आई हूँ।"

"तो चलेंगे। एक पथ दो काज होंगे। शबनम से भेंट होगी और आपके भाई साहब से भी परिचय हो जावेगा।"

सदानन्द की मॉं नीचे आई तो शान्ति से उसका परिचय करा दिया। लक्ष्मी ने पानी इत्यादि के लिए पूछा, परन्तु वह समय न जल पीने का

था और न भोजन का। लक्ष्मी बैठ गई तो बातचीत शबनम के विषय में चल पड़ी। शान्ति ने कहा, "मैं यह बताने का अधिकार नहीं रखती कि वह कहाँ रहती है। यह उसका अपना रहस्य है।

"इस पर भी आपको यह मानना ही पड़ेगा कि उसने घोर तपस्या की है। अब उस तपस्या के फल को प्राप्त करने का समय आ रहा है। कुछ ही महीनों में वह इक्कीस वर्ष की होने वाली है। तब ही वह अपनी माँ की बन्दिश से मुक्त हो सकेगी।"

"मैं अब उससे मिलने तो जा ही रहा हूँ। इस पर भी उसका अभी खुले बाजार में घूमना खतरे से खाली नहीं। कहीं किसी ने पहचान लिया तो बवाल उठ खड़ा हो सकता है।"

शान्ति मुस्कराकर चुप कर रही। जब दोनों घर से निकले तो सदानन्द ने पूछा, "किधर चलना चाहिए?"

"चर्च रोड पर एक कोठी के आधे हिस्से में भैया रहते हैं। वहीं चलना है।"

नगर-द्वार के बाहर से ताँगा कर लिया गया। ताँगे में किसी प्रकार की बात शबनम के अथवा किसी अन्य आवश्यक विषय पर नहीं हुई। सदानन्द साहित्य-कला पर ही बातचीत करता रहा।

हाई कोर्ट के पिछवाड़े में बड़े गिरजाघर के साथ शान्ति के भाई का निवास-स्थान था। आधी कोठी में एक वकील साहब रहते थे और आधी कोठी में दुर्गादास पीटर। वकील साहब का नाम सैयद अमीर खाँ था। वे चालीस-बयालीस वर्ष की आयु के प्रौढावस्था के व्यक्ति थे। वकील साहब की एक लड़की रुखसाना थी, जो फोरमैन क्रिश्चियन कालेज की बी० ए० की श्रेणी मे पढती थी। उसने इतिहास लिया हुआ था और प्रोफेसर दुर्गादास की छात्रा थी। वास्तव में उसके कारण ही प्रोफेसर साहब को इस कोठी में स्थान मिल सका था।

रुखसाना देखने में एक अच्छी खूबसूरत लडकी थी और ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी प्रकार का लगाव प्रोफेसर साहब से रखती थी।

जब से प्रोफेसर साहब इस कोठी मे आए थे, रुखसाना उनके आगे-पीछे चक्कर लगाया करती थी। सैयद अमीर खाँ ने इसमे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की थी।

आज भी वह प्रोफेसर साहब से मिलने आई हुई थी। प्रोफेसर साहब तो किसी काम से गये हुए थे और रुखसाना और शबनम बैठी परस्पर बातचीत कर रही थीं। शान्ति और सदानन्द के आने से पूर्व शबनम अपना पूर्ण परिचय रुखसाना को दे चुकी थी।

यूँ तो रुखसाना जानती थी कि शबनम एक यतीम लडकी है, जो जालन्धर मे ईसाइयों के यतीमखाने मे रहती है। चूँकि प्रोफेसर साहब ने उसको यतीमखाने मे प्रवेश दिलवाया था, इस कारण वह प्रोफेसर साहब की कृतज्ञ थी, परन्तु शबनम का बार-बार जालन्धर से चलकर आना और प्रोफेसर साहब के घर एक-दो रात के लिए रह जाना उसको भला प्रतीत नहीं होता था। इसमे आज वह शबनम के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त करना चाहती थी।

शबनम आज बहुत प्रसन्न थी और उसने भी उचित समझा कि एक भले घर की मुसलमान लडकी को विश्वास-पात्र बना लिया जाय। उसने अपनी पूर्व-कथा बता दी। रुखसाना की उससे पूर्ण सहानुभूति थी, परन्तु जब वह अपनी कथा के अन्तिम भाग मे आई तो रुखसाना का मुख लाल हो गया। शबनम ने कहा था, "जब पण्डित सदानन्द से मिलकर मैं घर पहुँची तो कमरे मे फकीरुद्दीन और नासिर को बैठा देख मै कमरे के बाहर खडी हो उनकी बाते सुनने लगी। फकीरुद्दीन कह रहा था, 'एक जवान लडकी और लडके को, जब उनके मन मे शादी करने का ख्याल पैदा हो जाय तो बिना शादी के नहीं रहना चाहिए। देखो आज नासिर के साथ क्या वारदात हुई है। एक हिन्दू लडकी इससे जूता खरीदने आई और आँखें मटका और दाँत दिखाकर, उसने इस पर ऐसा जादू डाला कि वह उसको जूता मुफ्त मे दे बैठा। वह जूता लेकर चली गई और अपना एक पता दे गई, जहाँ जाकर वह दाम वसूल कर

सकता था। यह वहाँ गया तो उस पते पर कोई उस नाम की लड़की रहती नही मिली।'

"यह कथा सुन मेरी माँ हँस पड़ी। उसने जूता, जो मै उसके पास रख गई थी, लाकर दिखाया और पूछा, 'क्या यही जूता है या कोई और भी किसी को दे दिया है?'

"वह जूता देख नासिर अवाक् रह गया और फकीरुद्दीन ने कहा, 'तो यह शबनम थी, जो इसको उल्लू बनाकर जूता ले आई थी। इसमे तो अब देरी करनी बेसूद है। शबनम के पर निकल आए हैं और वह बाजार मे हरजाई बन जावेगी। मै मुल्ला को बुला आया हूँ। उसके आते ही निकाह पढ़ा दिया जाना चाहिए।'

"मैने फिरोज से कहा कि मै अपने कमरे मे जा रही हूँ और वह अन्दर जाकर कह दे कि मै शादी के लिए तैयार नही। वह कमरे मे गया तो मै उल्टे पाँव मकान से उतरी और सीधा रत्नचन्द रोड पर मिशन अहाते मे पहुँच गई। वहाँ फादर रुबन्ज से मिली और अपना किस्सा बयान किया।

"तब से मै छिपी हुई जालन्धर के यतीमखाने मे रहती हूँ और वहाँ रहते हुए मेरे ख्यालात मे बहुत अन्तर पड़ गया है। पादड़ी विलियम की यह बात कि हिन्दू एक निहायत ही नकारा कौम है, समझ मे आने लगी है। यूँ भी, न तो पण्डित सदानन्द और न ही हिन्दुओं मे से कोई मेरी मदद कर सका है। मैं सदानन्द से शादी करना चाहती थी। मगर वह तो फिलौसोफी की बाते करने लग जाता है। वह बोला कि मै अगर हकीकत मे हिन्दू बन सकूँ तो वह शादी करेगा और वह मेरे बालिग हो जाने के बाद, माँ के पास रखकर मेरा इम्तिहान लेगा। इन सब बातो से मेरा मन उचाट हो गया है। चार साल हो चले है मुझको बालिग होने की इन्तजार करते-करते। अब सदानन्द चाहता है कि मै उसकी माँ की देख-रेख मे रहूँ।

"मुझको हिन्दुओं से ईसाई ज्यादा अच्छे मालूम होते है। प्रोफेसर

साहब मुझसे मुहब्बत करते है और जिस दिन मै बालिग होऊँगी, उसी दिन हमारी शादी हो जायगी। यूँ तो हम 'मैन ऐण्ड वाईफ' अब भी हैं।"

यह बात थी, जिसको रुखसाना सुन लाल सुर्ख हो गई थी। शबनम ने समझा कि वह कुँवारी लड़की है, इससे उसको शादी से पहले 'मैन ऐण्ड वाईफ' की बात सुन लज्जा-सी लगी है। वह इस विषय मे और बात करना चाहती थी कि इसी समय शान्ति और सदानन्द वहाँ आ पहुँचे। सदानन्द को देख रुखसाना चकित रह गई। वह गौरवर्णीय हृष्ट-पुष्ट युवक था। उसके मुख पर एक विशेष प्रकार का ओज था, जो वह पढ़े-लिखे युवको मे बहुत कम देखती थी। पर शबनम ने बताया था कि वह बहुत ही गरीब है। किताबत के काम से दो-तीन रुपये ही रोज कमा पाता है। इस बात को स्मरण कर उसका उत्साह, जो सदानन्द को देखकर उसमे उत्पन्न हुआ था, ठण्डा पड़ गया।

शान्ति ने रुखसाना का परिचय कराया। अब वे प्रोफेसर साहब की प्रतीक्षा करने लगे। शान्ति और रुखसाना पृथक् सोफा पर बैठी बाते करने लगीं और सदानन्द शबनम से बातचीत करने लगा। शबनम ने बताया, 'अगले महीने मेरी आयु इक्कीस वर्ष की हो जावेगी। मै इस योग्य हो जाऊँगी कि खुले-आम विवाह कर सकूँ। इसलिए मैने आपको बुलाया है कि आपके इसके मुताल्लिक ख्यालात जानूँ।"

"मेरे ख्यालो मे कोई अन्तर नही पड़ा। मै अपनी बीबी को पाक-दामन देखना चाहता हूँ और उसका आजाद ख्याल होना जरूरी है। इन सब बातो के लिए मेरी माँ की देख-रेख मे रहना होगा।"

'यह तो मुश्किल बात है। मै इतनी इन्तजार नहीं कर सकती। मेरा विवाह मेरे बाईसवें जन्म दिन को हो जावेगा।"

"शबनम ! मुझको इससे निहायत खुशी होगी। अगर इस मौके पर मुझको निमन्त्रण होगी तो मैं मुबारिकबाद देने आऊँगा।"

शबनम कुछ मन मे विचार करने लगी और चुप कर गई। सदा-

नन्द ने पूछा, "विवाह लाहौर मे होगा या कही बाहर ?"

"मै समझती हूँ कि जालन्धर के यतीमखाने के गिरजाघर में हो जाय तो ठीक है। यही राय करने आई हूँ।"

सदानन्द समझ गया कि वह प्रोफेसर साहब से राय करने आई है और उसका अनुमान था कि प्रोफेसर साहब से ही विवाह की बात होगी। इस विचार से उसके मन को शान्ति मिली थी। वह समझता था कि शबनम से विवाह करने पर उसको कई प्रकार की बातो का ध्यान रखना पडता। एक मुसलमान लडकी का, एक हिन्दू के घर में विवाह और वह भी विशेष रूप से उसके साथ, जो आपे लाहौर मे कवि के रूप मे विख्यात है, लाहौर मे हलचल उत्पन्न कर सकता है।

सदानन्द ने इस बात के जानने का यत्न नही किया कि किससे विवाह होगा। उसके लिए इतना पर्याप्त था कि विवाह उससे नही होगा। उसने बात बदल दी, "मैने तुम्हारी माँ पर विश्वास कर ही उसको तुम्हारा पत्र दिखाया था। वह मेरे सामने अपने किए पर पश्चात्ताप करती रहती थी। परन्तु पत्र पाते ही उसने पुलिस को मेरे पीछे लगा दिया।"

"मेरी माँ की बात छोडिए। मै उसकी बात सुन खुशी महसूस नही करती।"

"हाँ। और उसके बाद मैने फकीरुद्दीन की बैठक मे काम करना छोड दिया और अब तुम्हारी माँ के दर्शन ही नही होते।"

शबनम ने बात बदल दी। उसने कहा, "मै आज सायंकाल नौ बजे की गाडी से जा रही हूँ। आप मुझको स्टेशन तक छोडने चलिएगा न ?"

"हाँ, अगर तुम चाहो तो।"

इस समय प्रोफेसर दुर्गादास आ गए। शान्ति ने सदानन्द का परिचय कराया। दोनो हाथ मिला कर बैठ गए। प्रोफेसर के आते ही चाय का प्रबन्ध होने लगा। इस समय सैयद अमीर खाँ भी आगए

अपने को हाजिर तक नहीं किया था। ऐसी हालत में आज की खबर से मुझको मायूसी तो नहीं, हाँ हैरानी जरूर हुई है।

"हैरानी की वजह यह है कि तुम मुहब्बत के मायने समझने में भूल कर रही थीं। तुम, जो शायर हो, मुहब्बत के गलत मायने समझकर, शायरी भी गलत कर रही थीं। इस पर भी मैं समझता हूँ कि जो हुआ है, अच्छा ही हुआ है।"

इससे शबनम पुनः गभीर विचार में लीन हो गई। सदानन्द ने उसको चुप देखा तो स्वय भी चुप कर रहा। दोनो स्टेशन पर पहुँचे।

जब शबनम सेकेण्ड क्लास का टिकट ले रही थी, तो सदानन्द की दृष्टि एक आदमी पर पड़ी, जिसको वह खुफिया पुलिस का आदमी समझता था और जो शबनम के सम्बन्ध में उसका पीछा किया करता था। सदानन्द ने यह भी देखा कि वह खुफिया पुलिस का आदमी इनको देखते ही स्टेशन की पुलिस चौकी की ओर चला गया है। सदानन्द के मस्तिष्क में विद्युत की भाँति पूर्ण परिस्थिति का ज्ञान हो गया। शबनम अभी तक नाबालिग थी। उसके बालिग होने में अभी भी एक मास का समय था और शबनम की माँ ने उसके लापता होने की सूचना पुलिस में लिखाई हुई थी। पुलिस वालों का उस पर सन्देह भी है। अतएव उसने शबनम से कहा, "शबनम! तुम प्लैटफार्म पर चली जाओ। मैं अभी तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ।"

शबनम कुछ कहना चाहती थी परन्तु सदानन्द, उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना जल्दी से प्लैटफार्म नम्बर एक पर घुस गया। शबनम की गाड़ी नम्बर तीन से जानी थी और वहाँ पुल पर से होकर जाना पड़ता था। सदानन्द एक नम्बर के प्लैटफार्म पर हावड़ा मेल के लिए खड़ी भीड़ में लीन हो गया। भीड़ में खड़े-खड़े उसने देखा कि बावर्दी पुलिस शबनम के पीछे-पीछे पुल पर चढ़ रही है और वह खुफिया पुलिस का आदमी उनका पथ प्रदर्शन कर रहा है।

शबनम पुल पार कर प्लैटफार्म पर उतर रही थी कि पुलिस ने

उसको घेर लिया। सदानन्द ने वहाँ से टल जाना ही उचित समझा। वह प्लैटफार्म नम्बर एक से सात नम्बर और वहाँ से लाईन के साथ-साथ मुगलपुरा की ओर चल पड़ा। आधा मील नीचे लाईन के साथ-साथ जाने के पश्चात्, वह स्टेशन के अहाते से बाहर निकल गया। वहाँ से वह टाँगा कर सीधा दुर्गादास की कोठी पर जा पहुँचा। वहाँ शान्ति थी। प्रोफेसर साहब किसी काम से बाहर गए हुए थे। सदानन्द ने पूर्ण स्थिति से शान्ति को अवगत किया। शान्ति को एक बात सूझी। वह अपने भाई के लिए एक कागज पर सब कुछ लिख कर वहाँ रख, सदानन्द के साथ मिशन-अहाते में फादर एवन्ज से मिलने चली गई। फादर एवन्ज सोने की तैयारी कर रहा था। सदानन्द ने जब पूर्ण घटना सुनाई, तो उसने कहा, "उसको सदानन्द के साथ नहीं जाना चाहिए था। सदानन्द को पुलिस जानती है और उसके कारण ही वे शबनम को पहचान सके होंगे।"

इस पर भी उसने इन्स्पैक्टर-जनरल पुलिस मिस्टर स्मिथ को टेलीफोन किया। उसने बताया कि जाँच कर वह अभी बताता है। एवन्ज ने कहा, "मिस्टर स्मिथ! यह लड़की बालिग है और ईसाई हो चुकी है। मैं चाहता हूँ कि उसको हवालात में न रखा जाए। मैं उसकी जमानत देने के लिए तैयार हूँ। उसको यहाँ मिशन-अहाते में भेज देना चाहिए।"

दस मिनट के पश्चात् इन्स्पैक्टर-जनरल पुलिस का टेलीफोन आया। उसने कहा, "फादर एवन्ज! लड़की स्टेशन पर उसके अगवा करने वाले के साथ देखी गई थी। पुलिस दोनों को पकड़ना चाहती थी। ऐसा मालूम होता है कि वह लड़का बाहर से ही वापिस लौट गया है। इस कारण सिरफ लड़की ही पकड़ी जा सकी है।"

"वह लड़का अगवा करने वाला कौन है?"

"एक सदानन्द नाम का हिन्दू है, जो मुसलमान लड़कियों को हिन्दू बनाने का करता है।"

रुबन्ज ने हँस कर कहा, "यह पुलिस वाले कैसी कहानियाँ बनाते है। यह लड़की जालन्धर के क्रिश्चियन यतीमखाने मे रहती है। उसका बाप नहीं है। उसकी माँ उससे पेशा करवाना चाहती थी। लडकी भाग कर यतीमखाने मे पनाह ले रही थी। इस बात को तीन वर्ष से ज्यादा हो चुका है। आज वह अपने होने वाले पति से अपने विवाह की बात तय करने आई थी और रात के नौ बजे की गाड़ी से जालन्धर जा रही थी। उसके साथ उसके होने वाले पति का नौकर था। वह लड़की के पकड़े जाने को देखकर भाग कर यहाँ आया आया हुआ है।"

इन्स्पेक्टर-जनरल-पुलिस ने कुछ विचार कर कहा, "मैं अभी आज्ञा भेज देता हूँ कि उसको छोड दिया जाए। लेकिन कभी उस लडकी की जरूरत पडी, तो आपको उसको हाजिर करना पड़ेगा।"

"हाँ! वह मैं कर दूँगा।"

"तो गाडी लेकर नौलखा थाने में चले जाइये। लड़की आपके हवाले कर दी जावेगी।"

इस प्रकार फादर रुबन्ज ताँगा लेकर थाने जा पहुँचा। वहाँ थाने पर शबनम की माँ तथा फकीरुद्दीन उपस्थित थे। एक ईसाई पादड़ी को शबनम को लेने आते देख वे चकित रह गए। जब शबनम फादर रुबन्ज के साथ जाने को तैयार हो गई, तो शबनम की माँ ने पूछ ही लिया, "आप इसको कहाँ ले जा रहे हैं?"

"यतीमखाने में।"

"मैं इसकी माँ हूँ। इसको मेरे साथ रहना चाहिए।"

"हाँ। मगर यदि माँ लड़की से पेशा करवाए तो माँ को जेलखाने मे डाल देना चाहिए। देखो औरत!" रुबन्ज ने डाँट कर कहा, "अगर तुम कचहरी में किसी किस्म का झगड़ा करोगी तो तुम्हारे चाल-चलन और पेशे की बातें बता दी जावेंगी। होश में बात करो। कहीं लेने-के-देने न पड़ जावें।"

फकीरुद्दीन और शबनम की माँ यह डाँट सुनकर घबरा गए और

रमा का सुन्दर के साथ विवाह हुए आठ मास व्यतीत हो गए थे, परन्तु सुन्दर ने लाहौर आने की इच्छा तक प्रकट नहीं की। एक-दो बार चरणदास अपने पुत्र और पुत्रवधू से मिलने जालन्धर जा चुका था। वह जब भी कभी जाता था, प्रातः की गाडी से जाकर सायकाल तक लौट आता था। सुन्दर की माँ जानती थी कि उसके कारण ही सुन्दर न स्वय लाहौर आता है और न ही बहू को लाता है। इससे वह मन-ही-मन अति लज्जित और क्षुब्ध रहती थी।

एक दिन प्रात.काल ही वह स्नानादि से निवृत्त हो कपड़े पहनने लगी तो चरणदास ने पूछ लिया, "श्रीमती जी की सवारी किधर जा रही है?"

"जालन्धर। सुन्दर से मिलने।"

"मिलने या लड़ने?"

"दोनों काम करने। मिलूँगी और फिर इतने महीनों तक लाहौर न आने के कारण उससे लड़ूँगी। यदि देखूँगी कि रमा ने उसको सिखाया-पढाया है, तो उसकी चोटी मरोडूँगी।"

"तब तो मुझको भी चलना चाहिए।"

"क्यों?"

"तुम्हारी लड़ाई का तमाशा देखने।"

"तो मैं तमाशा करने जा रही हूँ?"

"तुम जो कुछ करने जा रही हो, सो तुम जानो। पर मैं तमाशा देखने ही चलता हूँ।"

"तो मैं नहीं जाऊँगी।"

"क्यों? मेरी सगत से ऊब गई हो क्या?"

"श्रीमान् जी! नहीं। आपको तो औरतों का नाच देखते लज्जा नहीं लगती, परन्तु मुझको तो मर्दों के सामने नाचते लज्जा लगती है।"

"तो भाग्यवान्! मिल तो आओ लड़के से और नाच किसी अन्य स्थान पर जाकर लेना।"

चरणदास भी जल्दी-जल्दी स्नानादि कर तैयार हो गया और दोनों जालन्धर जा पहुँचे। यह रविवार का दिन था। सुन्दर घर पर ही था। सुन्दर जब से जालन्धर में रेल्वे स्टोर का सुप्रिन्टेंडेंट नियुक्त हुआ था, साढे तीन सौ वेतन ले रहा था। जालन्धर में उसको सरकारी बँगला मिला हुआ था। इसका उसे चालीस रुपये किराया देना पड़ता था।

सड़क पर ताँगे में माता-पिता को उतरते देख सुन्दर नंगे पाँव ही बाहर चला आया और ताँगे वाले को भाड़ा देकर दोनों को भीतर ले गया।

उसने दोनों को बैठक में बिठाकर रमा को आवाज़ दी, "रमा! ओ रमा!! बाहर आकर देखो कौन आया है?"

रमा ने अपनी सास को आते देख लिया था। अतएव वह आई और श्वसुर और सास के पाँवों पर सिर रख पाँव लागूँ करने लगी। सुन्दर की माँ ने उसको पाँव पड़ते देखा तो सिर पर हाथ फेर प्यार दिया और आशीर्वाद देने लगी, "सौभाग्यवान हो बेटी! लो उठो।"

इतना कह उसने अपनी जेब से वही कण्ठी, जो विवाह के अवसर पर देने वाली थी, निकाल कर उसके गले में डाल दी और कहा, "लो अब तो प्रसन्न हो न?"

रमा उठकर पुनः पिछले कमरे में चली गई। सुन्दर की माँ ने कहा, "सुन्दर! तुम लाहौर आए क्यों नहीं?"

"माँ ने जब बुलाया नहीं था, तो कैसे आता? माँ! तुम बुलाओ तो अवश्य आएँगे।"

"देखो घर में चली थी तुमसे लड़ने और इस रमा चुड़ैल का जूड़ा नोचने, पर जब इसने बकरियों की भाँति पाँव पकड़ लिए तो मेरा क्रोध समाप्त हो गया है।"

"माँ! तब तो मिठाई बँटनी चाहिए। तुम आज रमा पर प्रसन्न हुई हो तो लो आज पूरी खीर मिठाई और पकवान बनवाता हूँ।"

यह कह कर सुन्दर ने नौकर को आवाज़ दी। नौकर आया तो

उसने कहा, "तुलसी ! जाओ बीबी जी से कहो कि आज पूरी-खीर और नौ पकवान बनेंगे। जाओ। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ।"

"बाबू जी ! बीबी जी तो पहले से ही कह रही हैं कि आज वे बहुत प्रसन्न हैं। इसलिए पूरी-खीर वगैरह बनेगी।"

"अच्छा जाओ। अभी माँ के लिए चाय और मिठाई लाओ।"

जब रमा चाय और मिठाई ट्रे में रखकर लाई तो चरणदास ने पूछा, "रमा बेटी ! तुलसी कहता है कि तुम बहुत प्रसन्न हो। कहता है कि तुम पूरी-खीर बनवा रही हो। क्या हुआ है बेटी ?"

रमा तिपाई पर ट्रे रखकर फर्श पर ही बैठ गई और बोली, "माँ जी ने आशीर्वाद जो दी है। इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है ?"

जब चरणदास और उसकी पत्नी चाय पीने लगे तो रमा ने पूछा, "बाहर एक लडकी मिलने आई है। मैं उससे बात करने जाऊँ ?"

"हाँ बेटी ! जाओ।" चरणदास ने कह दिया।

"पर वह है कौन ?" सुन्दर ने पूछा।

"कहती है कि वह सदा भैया की बहन है।"

"सदा भैया की बहन और तुम नहीं जानतीं ?"

"कोई बना ली होगी। बहन बनने को कौन इन्कार करता है। लाभ की बात ही तो होती है।"

"पर कोई-कोई तो बीवी बनने से भी इन्कार नहीं करती।"

"हाँ मेरे जैसी।" यह कह रमा कमरे मे बाहर निकल गई। जब वह कोठी के पिछवाड़े की ओर जाने लगी तो उसे सुन्दर इत्यादि के हँसने की आवाज सुनाई दी।

यह शबनम थी। सदानन्द ने साधारण रूप में उसे बताया था कि उसकी बहन रमा, जालन्धर में विवाही है। शबनम ने उसका पता पूछा तो सदानन्द ने सुन्दर का नाम और पता बता दिया। यह उस दिन की बात थी, जिस दिन प्रोफेसर के घर वह शबनम से मिलने और चाय पीने

गया था।

रमा ने अपना परिचय दे बताया कि उसके श्वसुर और सास लाहौर से आये हुए हैं। इस कारण वह किसी दिन फिर आकर मिले। या वह अपना पता दे जाए, वह स्वयं आकर उससे मिलेगी।

शबनम ने कहा, "नहीं बहन! मेरा यहाँ का पता जानने की जरूरत नहीं। मैं कल विवाह के लिए लाहौर जा रही हूँ। मेरे आने का मतलब केवल यह था कि यदि तुम और तुम्हारे घर वाले कल लाहौर चल सकें तो मेरी शादी में शामिल होकर शादी की रौनक बढ़ावें।"

"तो कल आपकी शादी हो रही है? बड़ी खुशी की बात है।"

"हाँ! वहाँ पर सदानन्द जी भी आयेंगे और उनकी बहन प्रभा और माता जी को भी निमन्त्रण दिया है। मैं उम्मीद करती हूँ कि वे भी रौनक अफरोज होंगे।"

"मैं समझती हूँ कि हम नहीं आ सकेंगे। इस पर भी मैं उनसे पूछ लूँ। शायद उनकी जाने की इच्छा हो जाए।"

"हाँ, हाँ। जरूर।"

रमा गई और सुन्दर को पृथक् कमरे में ले जाकर शबनम के विवाह का निमन्त्रण बता पूछने लगी कि क्या करना चाहिए। सुन्दर ने कह दिया, 'मुझको छुट्टी मिल नहीं सकती और तुम्हारा मैं विवाह के पश्चात् पहली ही बार अकेला जाना उचित नहीं समझता। उससे कह दो कि कल हम नहीं जा सकेंगे। हाँ, हमारी बधाई स्वीकार हो और मैं कोशिश करूँगा कि कोई भेंट उसके विवाह के समय वहाँ पहुँच जाए। उसका नाम पूछ लेना।"

सुन्दर ने अपने ट्रंक में से एक जोड़ा फूलदानों का निकाल, कागज में लपेट पिता जी को दे दिया और कहा, "पिता जी! यह जाते ही सदानन्द को पहुँचा दें और यह कार्ड भी साथ दे दें और कहें कि ये दोनों कार्ड पर लिखे पते पर वहाँ पहुँचा दे।"

कार्ड पर उसने अंग्रेजी में लिख दिया—

उसने कहा, "तुलसी! जाओ बीबी जी से कहो कि आज पूरी-खीर और नौ पकवान बनेंगे। जाओ। आज मै बहुत प्रसन्न हूँ।"

"बाबू जी! बीबी जी तो पहले से ही कह रही हैं कि आज वे बहुत प्रसन्न है। इसलिए पूरी-खीर वगैरह बनेगी।"

"अच्छा जाओ। अभी माँ के लिए चाय और मिठाई लाओ।"

जब रमा चाय और मिठाई ट्रे मे रखकर लाई तो चरणदास ने पूछा, "रमा बेटी! तुलसी कहता है कि तुम बहुत प्रसन्न हो। कहता है कि तुम पूरी-खीर बनवा रही हो। क्या हुआ है बेटी?"

रमा तिपाई पर ट्रे रखकर फर्श पर ही बैठ गई और बोली, "माँ जी ने आशीर्वाद जो दी है। इससे अधिक प्रसन्नता की बात और क्या हो सकती है?"

जब चरणदास और उसकी पत्नी चाय पीने लगे तो रमा ने पूछा, "बाहर एक लड़की मिलने आई है। मै उससे बात करने जाऊँ?"

"हाँ बेटी! जाओ।" चरणदास ने कह दिया।

"पर वह है कौन?" सुन्दर ने पूछा।

"कहती है कि वह सदा भैया की बहन है।"

"सदा भैया की बहन और तुम नही जानती?"

"कोई बना ली होगी। बहन बनने को कौन इन्कार करता है। लाभ की बात ही तो होती है।"

"पर कोई-कोई तो बीवी बनने से भी इन्कार नही करती।"

"हाँ मेरे जैसी।" यह कह रमा कमरे से बाहर निकल गई। जब वह कोठी के पिछवाड़े की ओर जाने लगी तो उसे सुन्दर इत्यादि के हँसने की आवाज सुनाई दी।

यह शबनम थी। सदानन्द ने साधारण रूप मे उसे बताया था कि उसकी बहन रमा, जालन्धर मे विवाही है। शबनम ने उसका पता पूछा तो सदानन्द ने सुन्दर का नाम और पता बता दिया। यह उस दिन की बात थी, जिस दिन प्रोफेसर के घर वह शबनम से मिलने और चाय पीने

गया था।

रमा ने अपना परिचय दे बताया कि उसके श्वसुर और सास लाहौर से आये हुए हैं। इस कारण वह किसी दिन फिर आकर मिले। या वह अपना पता दे जाए, वह स्वय आकर उससे मिलेगी।

शबनम ने कहा, "नहीं बहन! मेरा यहाँ का पता जानने की जरूरत नहीं। मैं कल विवाह के लिए लाहौर जा रही हूँ। मेरे आने का मतलब केवल यह था कि यदि तुम और तुम्हारे घर वाले कल लाहौर चल सकें तो मेरी शादी में शामिल होकर शादी की रौनक बढावें।"

"तो कल आपकी शादी हो रही है? बडी खुशी की बात है।"

"हाँ! वहाँ पर सदानन्द जी भी आयेंगे और उनकी बहन प्रभा और माता जी को भी निमन्त्रण दिया है। मै उम्मीद करती हूँ कि वे भी रौनक अफराज होंगे।"

"मैं समझती हूँ कि हम नहीं आ सकेंगे। इस पर भी मैं उनसे पूछ लूँ। शायद उनकी जाने की इच्छा हो जाए।"

"हाँ, हाँ। जरूर।"

रमा गई और सुन्दर को पृथक् कमरे मे ले जाकर शबनम के विवाह का निमन्त्रण बता पूछने लगी कि क्या करना चाहिए। सुन्दर ने कह दिया, "मुझसे छुट्टी मिल नहीं सकती और तुम्हारा मैं विवाह के पश्चात् पहली ही बार अकेला जाना उचित नहीं समझता। उससे कह दो कि कल हम नहीं जा सकेंगे। हाँ, हमारी बधाई स्वीकार हो और मैं कोशिश करूँगा कि कोई भेंट उसके विवाह के समय वहाँ पहुँच जाए। उसका नाम पूछ लेना।"

सुन्दर ने अपने ट्रंक मे से एक जोड़ा फूलदानों का निकाल, कागज मे लपेट पिता जी को दे दिया और कहा, "पिता जी! यह जाते ही सदानन्द को पहुँचा दें और यह कार्ड भी साथ दे दें और कहें कि ये दोनों कार्ड पर लिखे पते पर वहाँ पहुँचा दे।"

कार्ड पर उसने अंग्रेजी मे लिख दिया—

"विद बेस्ट कम्पिलमैंट्स औफ मिस्टर ऐण्ड मिसेज सुन्दरलाल औन दि औकेजन औफ दि आसपिशस मैरेज सैरेमनी औफ मिस्टर डी० पीटर ऐण्ड मिसेज ऐस० पीटर।"

जाने से पूर्व सुन्दर की माँ ने इच्छा प्रकट की कि वह सुन्दर के पास कुछ दिन रह जाना चाहती है। परन्तु चरणदास ने पूछा, "तो मैं क्या करूँगा ? कहाँ खाऊँगा ? घर की देखभाल कौन करेगा ?"

"जाते ही एक नौकर रख लेना। तब तक रोटी होटल में खा लेना।"

"और यदि दोपहर के समय मेरी अनुपस्थिति में कोई ताला तोड़ कर सब भूषणादि लेकर भाग गया तो फिर क्या होगा ?"

यह सुन सुन्दर की माँ का रंग फक हो गया। उसने तुरन्त अपने लाहौर जाने का निश्चय कर लिया।

सुन्दर ने मुस्कराते हुए पूछा, "माँ ! बहुत जायदाद छिपा कर रखी प्रतीत होती है ?"

"हाँ ! तुम्हारे पिता जी की जीवन-भर की कमाई है ?"

"किसके लिए रखी है समेट कर ?"

"तुम्हारे पिता जी की वृद्धावस्था में सुभीते के लिए।"

"तब तो माँ तुम बहुत ही अच्छी हो।"

"अच्छी तो मैं हूँ ही। तुम्हारे प्रमाण-पत्र की आवश्यकता नहीं। केवल मेरी बात कोई मानना नहीं। यदि तुम मेरा कहा मानते तो मैं तुमको ऐसी बहू लाकर देती, जो बाप के घर से दस हजार लाकर देती। अच्छा अब तुमने जो कुछ किया, तुम ही जानो।"

"पर माँ ! रमा जैसी सुन्दर और सुशील बहू न आती। जो दस हजार लेकर आती, वह छाती पर मूँग दलती। देखो रमा तो गऊ की भाँति है। जहाँ कीला गाड रस्सा बाँध दिया, वहाँ ही बैठी रहती है।"

"पर बेटा ! कभी-कभी गऊ भी सींग मार देती है।"

"और जो बाघिन तुम मेरे लिए लातीं, वह मुझको कच्चा ही

चला जाती।"

"अच्छा बताओ लाहौर कब आओगे ?"

"माँ ! जब तुम बुलाओ।"

"अगले रविवार चले आना। ठीक है न ?"

"हाँ माँ ! जरूर आऊँगा।"

पंचम परिच्छेद

शबनम का विवाह निर्विघ्न समाप्त नहीं हुआ। जिस समय गिरजाघर में विवाह की रस्म अदा की जा रही थी, बाहर दस-बारह हजार मुसलमानों का हजूम नारे लगा रहा था। मुसलमानों को शिकायत थी कि नाबालिग लड़की को जबरदस्ती ईसाई बनाया जा रहा है।

बहुत से मुसलमान गिरजाघर में घुस आए थे और जब विवाह की सौगन्ध ली जा रही थी, तो मुसलमानों ने शोर मचा दिया, "विवाह नहीं होगा।"

फादर रुबन्ज ने पुलपिट से हिन्दुस्तानी में एक व्याख्यान दे दिया। उसने कहा, "यह खुदा का घर है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान और ईसाई में कोई अन्तर नहीं रहता। मनुष्य सब समान हैं। मनुष्यों में कुछ लोग हैं, जो शैतान के वश में आकर गड़बड़ी मचाना चाहते है। यह लडकी शबनम एक मुसलमान पेट से पैदा जरूर हुई है, मगर उसने फैसला किया है कि वह दुर्गादास से विवाह करेगी। इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? . "

गिरजाघर में उपस्थित मुसलमानों ने नारे लगाने आरम्भ कर दिए। "विवाह नहीं होगा। लड़की नाबालिग है।"

रुबन्ज लोगों को शान्त करने के लिए फिर जोर से कहने लगा,

च्छी बात है। आप सब गिरजाघर से बाहर निकल जाओ और मैं
ाह रोक देता हूँ।"

"हम लड़की अपने साथ ले जाएँगे।"

"कहाँ ले जाओगे ?"

"इसकी माँ के पास।"

"तो जाओ इसकी माँ को बुला लाओ। मैं लड़की उसको सौंप
दूँगा।" इस पर कुछ मुसलमान परस्पर विचार करने लगे।

सदानन्द ने फादर रुमन्ज से कहा, "शबनम को पिछले दरवाजे से
बाहर कर किसी कमरे में छिपा देना चाहिए और पुलिस को टेलीफोन
कर देना चाहिए।"

ईसाइयों के लिए यह एक नवीन समस्या थी। इससे पहले
मुसलमान हिन्दुओं का विरोध करते तो रहते थे और ब्रिटिश सरकार
के अधिकारी हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा देख प्रसन्न हुआ करते थे।
उनका राजदंड तो तब ही उठता था, जब झगड़े में मार लुटाई आरम्भ
हो जाती थी। इसमें भी प्राय. उस समय, जब हिन्दू मुसलमानों को पीटने
लग जाते थे।

मुसलमानों की भागती हुई भीड ने बाजार में से गुजरते हुए हिन्दुओं की दुकानों को लूटना आरम्भ कर दिया और जो कोई भी हिन्दू नजर आया उसको पकड-पकड़ कर पीटने लगे। दो घण्टे तक अनारकली बाजार और लाहौरी दरवाजे के बाजार में नादिरशाही मची रही।

जब गिरजाघर में शान्ति हो विवाह-कार्य समाप्त हुआ और विवाह पर आए मेहमान चले गए तब पुलिस को नगर में शान्ति स्थापित करने का विचार आया। बहुत ही कठिनाई से शाम तक शान्ति स्थापित हो सकी और रात-भर के लिए कुछ हिन्दू बाजारों में कर्फ्यु लगा दिया गया।

फादर रुबन्ज ने विवाह-कार्य समाप्त होने पर जरा अभिमान से कहा, "हमारी शक्तिशाली सरकार ने भले लोगों की रक्षा के लिए जो सतर्कता दिखाई है, उसके लिए हम सरकार के बहुत आभारी हैं।"

प्रोफेसर साहब की कोठी में भोज होना था। भोज के पश्चात् दुर्गादास पुलिस की देख-रेख में अपनी बीवी को साथ ले हनी-मून के लिए नैनीताल को रवाना हो गया।

शान्ति अकेली घर में रह गई। दुर्गादास और शबनम को विदा करने के समय सदानन्द भी वहाँ उपस्थित था। उसके चले जाने के पश्चात् शान्ति ने बहुत ही चिन्तित भाव में कहा, "मैं यहाँ अकेली भय अनुभव करती हूँ।"

"तो चलो हमारे घर। माँ के पास चल कर रहना।"

"आपके घर में स्थान बहुत कम है।"

"हम सब भाई-बहन एक ही कमरे में सोते हैं। केवल बड़े भाई और भाभी नीचे के कमरे में सोते हैं।"

"सदानन्द जी! आप कुछ दिनों के लिए यहा ही रह जाएँ।"

"मैं डरता नहीं। परन्तु यह तुम्हारी पड़ोसिन रुखसाना, सत्य ही भय का कारण है। आज देखा नहीं कि कैसे दिए बुझाकर सब सो रहे हैं।"

"तो मुझको मिशन-हाऊस छोड़ आइये। मैं वहाँ फादर रुबन्ज के साथ रहने का प्रबन्ध कर लूँगी।"

शान्ति के मन पर इस दिन की घटनाओं की प्रतिक्रिया विचित्र हुई थी। क्यों ये लोग गिरजाघर पर चढ़ आए थे? इन लोगों ने पुलिस में रिपोर्ट क्यों नहीं लिखवाई? यदि ये अपने को ठीक समझते थे तो इन्होंने क्यों नहीं अदालती कार्यवाही की? शबनम की माँ इनमें नहीं थी, तो ये कौन लोग थे और शबनम से इनका क्या सम्बन्ध था? ये और इसी प्रकार के अन्य प्रश्न अनेकों उसके मन में उठ रहे थे और उसके मन में हलचल मचा रहे थे।

उक्त घटना के कई दिन पीछे की बात है कि शान्ति फादर रुबन्ज के साथ विवाह के दिन वाली घटना पर विचार कर रही थी। फादर रुबन्ज का मत इस विषय पर यह था, "मुसलमानों से हिन्दू घृणा करते हैं। इस कारण उनका संगठन हिन्दुओं के विरोध में बना रहता है। चूँकि तुम्हारे भाई का नाम हिन्दुओं जैसा है, इस कारण वे सब गिरजाघर पर आक्रमण करने चले आए थे।"

शान्ति को ये बातें युक्तियुक्त प्रतीत नहीं हुई थीं। उसने पूछा, "फादर! इनको बताया किसने कि भैया हिन्दू हैं? उस बताने वाले ने ऐसा झूठ क्यों बोला? शबनम की माँ तो यह नहीं हो सकती। उसको तो पता था कि झगड़ा करने से उसकी अपनी बदनामी ही होगी। साथ ही यह बात तो मूर्ख-से-मूर्ख भी समझ सकता है कि गिरजाघर में हिन्दुओं के विवाह नहीं होते।"

"जनता का मन, बेटी! इतनी विचित्र गति से चलता है कि उसमें युक्ति काम नहीं कर सकती।"

शान्ति को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ। वह दोपहर के खाने के समय सदानन्द के घर जा पहुँची। परन्तु वह घर पर नहीं मिला। केवल लक्ष्मी और प्रभा घर पर थीं। उसके पूछने पर लक्ष्मी ने बताया, "शबनम के विवाह पर हुई घटना की जाँच हो रही है और पुलिस ने

"परन्तु जो बेगुनाह पकड़े जा रहे हैं, उनको जो दण्ड मिलेगा ?"

"दण्ड तो किसी को नहीं होगा। वे सब छूट जाएँगे। पहली अदालत में भले ही इनको दण्ड मिल जाय, परन्तु जब हाईकोर्ट में इनकी अपील होगी तो वहाँ इनका दण्ड रद्द अथवा कम कर दिया जावेगा।"

"पर आप तो भगवान् के बन्दे हैं। आपको असत्य-भाषण नहीं करना चाहिए था।"

"सत्य-असत्य का निर्णय उसके उद्देश्य को ध्यान मे रखकर किया जाता है। ब्रिटिश सरकार का प्रभाव जनता पर स्थिर रहना चाहिए। यह एक महान् सत्य है। इसके कारण ही हम ईसाईयों का काम चलता है। मुसलमान ब्रिटिश सरकार के भारी सहायक हैं। लाहौर की पुलिस मे अस्सी प्रतिशत मुसलमान हैं। इस कारण मुसलमानों को नाराज करना हमारे लिए अन्याय और असत्य है। इसमे ही हमारे 'चर्च' और हमारे सम्प्रदाय की उन्नति निहित है।"

फादर रुबन्ज की इस घटना की विवेचना और उसका पुलिस में बयान शान्ति के मन में उथल-पुथल मचाने वाले सिद्ध हुए। दुर्गादास के हनीमून से लौटते ही शान्ति भाई के पास रहने चली गई। दुर्गादास को सदानन्द के पकड़े जाने पर भारी विस्मय हुआ। शान्ति के मन में इस घटना की प्रथम प्रतिक्रिया यह हुई कि आगामी रविवार को वह फादर रुबन्ज का 'सर्मन' सुनने नहीं गई। उसके भाई और शबनम ने पूछा तो उसने बता दिया, "मैंने इस समय एक स्थान पर एक आवश्यक कार्य से जाना है।"

जब उसके भाई-भाभी गिरजाघर चले गए तो वह सदानन्द की माँ से मिलने चली गई। परमानन्द आज घर पर ही था। शान्ति को इससे पूर्ण स्थिति का ज्ञान हुआ। परमानन्द ने बताया, "यह मुकद्दमा

चल नहीं सकता था, यदि फादर दवन्ज ने बयान न दिया होता अथवा अमल्य भाषण न किया होता। मैजिस्ट्रेट के सामने जमानत के लिए प्रार्थना की गई थी, परन्तु वह अस्वीकार हो गई है। इस समय चार्ट्स हिन्दू जेल में हैं और उनके विरुद्ध बलवा तथा विद्रोह के आरोप हैं।

"कल हम हाईकोर्ट में जमानत पर छोड़े जाने की अपील करने वाले हैं। पण्डित कँवरसेन और मिस्टर मैथ्यू इस मुकद्दमे की पैरवी कर रहे हैं।"

"भाई साहब!" शान्ति ने पूछा, "इन चार्ट्स में कितने मुसलमान हैं?"

"कोई नहीं। पुलिस का यह ख्याल है कि अगर कुछ मुसलमान भी पकड़ लिए गए तो यह एक मामूली-सा बलवा बन जायगा और फिर सबको दफा एक सौ सात में चालान कर, जमानत पर छोड़ना पड़ जायेगा। पुलिस यह नहीं चाहती।"

अगले दिन शान्ति हाईकोर्ट में उपस्थित थी। उसका विचार था कि अपराधियों को वहाँ लाया जायगा। परन्तु उनको नहीं लाया गया। इसमें शान्ति को कुछ निराशा हुई, परन्तु उसको मुकद्दमा सुनने का आनन्द आ गया। कँवरसेन ने जमानत पर अपराधियों को छोड़ देने की प्रार्थना उपस्थित की थी। साथ ही इस प्रार्थना में उसने पुलिस पर मूर्खता से तथा पक्षपात से दफाएँ लगाने का आरोप लगाया था। कँवरसेन ने उस दिन की पूर्ण घटना का विवरण देते हुए कहा, "शादी एक मुसलमान और एक ईसाई में होनी थी। मुसलमान लड़की अवयस्क कही जाती थी। स्वाभाविक रूप से मुसलमानों का रोष ईसाइयों पर था। उन्होंने गिरजाघर को घेर लिया और उसको आग तक लगाने की कोशिश की। पुलिस ने मुसलमानों की भीड़ को तितर-बितर कर दिया। भीड़ अनारकली बाजार में से लूट-मार करती हुई चली गई। लाहौरी दरवाजे में कुछ दुकानदारों ने अपनी जान व माल की रक्षा

में अपने मन में उठ रहे उद्गारों का वर्णन कर दिया। उसने कहा, "फादर रुबन्ज़ ने आपके विरुद्ध बयान दिए हैं। जब मैंने उनसे पूछा कि यह असत्य भाषण उन्होंने क्यों किया, तो वे कहने लगे कि 'चर्च' और सम्प्रदाय को इससे लाभ होगा। इस कारण यह असत्य वास्तव मे सत्य है।"

सदानन्द ने कहा, "यह तो उन्होंने सत्य ही कहा है कि उनके इस बयान देने से 'चर्च' और सम्प्रदाय को लाम होगा, परन्तु असत्य भाषण से जिस 'चर्च' तथा सम्प्रदाय को लाभ होता है, वह सत्य ही है क्या?"

"क्या हज़रत ईसा असत्य थे?"

"नहीं, यह मैंने नही कहा। उनका तो पूर्ण जीवन और उनका प्रत्येक प्रयास न तो किसी 'चर्च' के लिए था और न किसी सम्प्रदाय के लिए। जब यरूशिलम में मन्दिर के बाहर बैठे दुकानदारों को उन्होंने फटकार बताई थी, तब वह किसी सम्प्रदाय के हित के लिए नहीं थी। वे मनुष्य-मात्र के उद्धार के लिए जीवन व्यतीत कर रहे थे। ये 'चर्च' और सम्प्रदाय तो पीछे स्वार्थी लोगो ने बनाए हैं।"

"परन्तु क्या हिन्दू सम्प्रदाय नही ! आप सदैव हिन्दुओं के हित की बात करते रहते हैं?"

"कई हिन्दुओं के मन मे हिन्दू भी एक सम्प्रदाय है। मैं कहता हूँ कि हिन्दू एक असाम्प्रदायिक सम्प्रदाय है। जब पूजन की और विचारो की स्वतत्रता प्रत्येक के लिए दी जाती है, तब यह साम्प्रदायिकता विरोधी मत है।"

शान्ति इससे गम्भीर विचार मे पड गई। सदानन्द चुपचाप साथ चलता गया। चलते-चलते एकाएक शान्ति ने घूमकर पूछा, "यदि कोई ईसा मसीह को बहुत ही महान् पुरुष माने और उससे कही बातों को माने तो आप उसको हिन्दू मत से निकाल देंगे?"

"ईसा मसीह को महान् व्यक्ति मानने वालों में तो मैं भी हूँ। उससे

"दसवीं कक्षा फेल हूँ।"

शान्ति चकित हो पूछने लगी, "उस दिन आप भैया की लायब्रेरी से कार्लाइल लिखित 'फ्रैंच रैवोल्यूशन' पढ़ रहे थे। वह तो प्राय. बी० ए० पास भी कठिनाई से समझ पाते हैं?"

"भाषा में योग्यता, परीक्षा पास करने से नहीं, प्रत्युत् अभ्यास से आती है।"

"पर भाषा के साथ-साथ आपके बातचीत करने का ढंग, आपकी युक्तियाँ और आपका ज्ञान तो इतनी पढ़ाई करने वालों से कहीं अधिक है।"

"यह भी तो अध्ययन का परिणाम है। मैं नित्य दो से तीन घण्टा स्वाध्याय करता हूँ।"

इस समय वे दोनों प्रोफेसर दुर्गादास की कोठी में पहुँच गए। प्रोफेसर साहब कोठी पर नहीं थे। केवल शबनम थी और वह बड़ी सुहृदयता से मिली।

"आइये सदानन्द जी! मैं आपकी बड़ी एहसानमन्द हूँ कि आपने मुझको एक ही ठोकर से कहीं-का-कहीं पहुँचा दिया है। मैं अपनी माजूदा जिन्दगी से बहुत ही खुश हूँ।"

"मुझको यह जानकर निहायत ही खुशी हुई है। प्रोफेसर साहब भी यदि यही समझते हैं, तब तो सोने पर सुहागा है।"

"यह तो वे ही बता सकते हैं। हाँ अगर आईना में देखने वाले का अक्स ही दिखाई देता है, तो मेरी बात उनके दिल की बात का प्रमाण हो सकती है।"

"यही तो देखना है कि आईना ठीक अक्स दे रहा है या नहीं?"

शबनम हँस पड़ी और पूछने लगी, "आपको मेरी बात के सही होने पर शक क्यों है?"

"पहली बार यह गलत सिद्ध हो चुकी है। इस पर भी इस बार मैं सन्देह नहीं कर रहा।"

शबनम ने बात बदल दी और पूछने लगी, "आपकी दूसरी किताब कब तक निकलेगी ?"

"वह तो अभी लिखी ही जा रही है। समाप्त करने पर ही पता चलेगा कि कब तक प्रकाशित हो सकेगी। इस बार मैं हिन्दी में लिख रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"मुझको उर्दू से हिन्दी में लिखना आसान प्रतीत होता है।"

"पर जबानदानी कुछ और बात है और हरूफ दूसरी बात है। हरूफ नाकस हो सकते हैं, परन्तु उर्दू जबान तो बहुत शुस्ता और पुर-मायने है।"

"मैंने उर्दू जबान के खिलाफ कुछ नहीं कहा। मैंने तो उसकी लिखावट को अधूरी पाया है। हिन्दी की लिपि अधिक पूर्ण है।"

"तब तो मुझे उस पुस्तक को पढ़ने में दिक्कत होगी।"

"शान्ति देवी पढ़कर सुना देगी।"

"फिर वह लुत्फ नहीं आ सकता, जो उर्दू में लिखी किताब के पढ़ने में आता है।"

"यह अभ्यास की बात है। थोड़ा यत्न करने से सीख जाओगी।"

"पर आप हिन्दी में ही क्यों लिख रहे हैं ?"

"उसमें मुझको अपने विचार प्रकट करने के लिए अधिक उपयुक्त शब्द मिल रहे हैं।"

"यह बात तो पढ़ने पर ही पता चलेगी। क्या नाम रखा है आपने उस पुस्तक का ?"

"नाम तो अभी नहीं रखा। इसका निर्णय तो पुस्तक समाप्त होने पर ही होगा। हाँ विषय बता सकता हूँ। मैं यह लिखना चाहता हूँ कि मनुष्य का भाग्य मनुष्य के कामों में एक महान् प्रेरणा का काम करता है। मनुष्य अपने प्रयत्न से उस प्रेरणा का मुख मोड़ सकता है, परन्तु इसके लिए अतुल निष्ठा की आवश्यकता रहती है। जन्म मनुष्य के

अपने अधीन नहीं, शिक्षा उसके अपने अधीन नहीं, कारोबार में सफलता उसके अपने अधीन नहीं, विवाह उसके अपने अधीन नहीं और मृत्यु उसके अपने अधीन नहीं। ये सब मनुष्य, अपने इस जीवन से अतिरिक्त कहीं से लेकर आता है। इस पर भी कुछ सीमा तक इनको प्रयत्न से आगे-पीछे किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अनेक कार्य हैं, जिनको मनुष्य कर सकता है। उदाहरण के रूप में भाग्य से आपका वेतन केवल एक सौ रुपया है। आप उसमें से बचाकर उपकार के कार्य में लगा सकते हैं। आपको चल कर अमृतसर जाना है। आप तेजी से चल कर एक-दो घण्टा समय बचा सकते हैं और उस बचे हुए समय को अपने भविष्य में किसी हित के लिए प्रयोग मे ला सकते हैं। किसी का कुरूप लड़की अथवा लड़के से विवाह बँधा है, वह उस पर सन्तोष कर सकता है और प्रसन्न रह सकता है। इसी प्रकार प्रयत्न का क्षेत्र है। इससे कुछ सीमा तक तो यह जीवन सुखमय हो सकता है और अधिकतर भावी जीवन बनता है।"

"तो आप इन्सान की

नन्द एक घोर हिन्दू-पक्षपाती कवि है। वह बाजार और कवि-समारोहों में हिन्दू-मुसलमानों में नफरत फैलाने वाली कविताएँ सुनाया करता है। इसकी कविताओं में प्रभाव भी होता है। इसने कई बार लोगों को ऐसा काम करने के लिए उत्साहित किया, जो साधारण रूप में वे नहीं करते।

"यह सदानन्द इस विद्रोह का नेता है। यह शबनम से मुहब्बत करता था। इसी के कहने पर शबनम अपनी माँ के घर से भागकर लापता हो गई थी। सदानन्द ने अपनी जान छुडाने के लिए शबनम को ईसाई यतीमखाने में रखा, मगर बीच-बीच में उससे मिलता रहा। एकाएक शबनम प्रोफेसर दुर्गादास से मुहब्बत करने लगी। इससे सदानन्द को बहुत निराशा हुई और उसने यह बलवा करा दिया। वह भेष बदल कर मस्जिदों में गया और वहाँ जा कर मुसलमानों को भड़का कर, उन्हें शादी के दिन गिरजाघर में एकत्रित कर दिया। वहाँ जब लोग एकत्रित हो गए तो पीछे जो कुछ हुआ, उसका इस मुकद्दमे में कोई सम्बन्ध नहीं। आग लगाने वाले का जुरम तो उस वक्त होता है, जब उसने दियासलाई जलाकर किसी वस्तु को आग लगा दी। पीछे क्या जलता है, कितना जलता है, यह आग लगाने वाले के अधीन नहीं होता। उसका काम तो आग लगाना है।

"सदानन्द ने यह बलवा आरम्भ किया और लोगों को गिरजाघर के सम्मुख एकत्रित कर दिया। यह पुलिस का मुकदमा है। यह जुरम है। इसको साजिश कहते हैं और सदानन्द तथा शेष इक्कीस अभियुक्त सजा के काबिल हैं।"

इस प्रकार मुकद्दमा उपस्थित कर सरकारी वकील ने सरकारी गवाह बुलाने आरम्भ कर दिए। पहला गवाह शिवराम था। उसने कटहरे में खड़े होकर बयान देना आरम्भ किया। सरकारी वकील के प्रश्नों के उत्तर में वह सदानन्द के विषय में बताने लगा,

"मैं सदानन्द को जानता हूँ। यह मुन्शी नन्दलाल का लड़का है।

मुन्शी नन्दलाल दफा एक सौ सात में एक साल के लिए कैद में रहा है। यह लडका एक बार चमेली का भाई बनकर मेरी दुकान पर आया था। चमेली की मुझसे सगाई हो चुकी थी। मुझसे मिलने के पश्चात् इसने मेरे पर एक कविता बनाई और अपने मुहल्ले वालो को एकत्रित कर इसने सुनाई। इसने मेरे विषय मे कहा।

'इक राम ते शिव दा नामधारी, अखों अन्ना ते उल्लू दी जात वाला
चिट्टी दाढ़ी ते आटा खराब है सी, नाले करदा ए कम धिसात वाला।
चलदियाँ रखे जी हथ कमर उत्ते कहे मैं हाँ धन औकात वाला
ओ आ रिहा ए गुलिस्तान अन्दर हथ लाठी ते फूलदी गात वाला॥

"फिर लोगो को भड़काने के लिए उसने सुनाया,

'क्यो शर्म दे नाल न डुब मरिए बाग साडे विच ए चोर आया
सोनी कलियाँ नूँ उखाड़ के ते देन मसल, ओ शाहज़ोर आया।
कोई रब दा भय जे खान वाला माली बाग दा जे कोई होड़ आया
समझो बच गई कली चमेली ए, जे साजन ओस दा जोड़ आया॥

"इसकी कविता सुन मुहल्ले के लोग भड़क उठे और उन्होने चमेली की माँ को मजबूर कर मेरी सगाई तुड़वा दी और चमेली का विवाह सदानन्द के भाई परमानन्द से कर दिया।"

इस पर कँवरसेन ने जिरह की। कँवरसेन ने चमेली का एक फोटो गवाह को दिखाकर पूछा, "इस तस्वीर वाली को जानते हो?"

"हाँ जानता हूँ। यह चमेली का है। इसीसे मेरी शादी होने वाली थी।"

कँवरसेन ने एक दूसरी फोटो उपस्थित की, "अच्छा इसको जानते हो?"

"हाँ, यह मेरी है। मगर मेरी आँखें कुछ छोटी बनाई है।"

कँवरसेन ने मजिस्ट्रेट से कहा, "ये दोनो तस्वीरें मुकद्दमे की फाईल में रख ली जाएँ। इस गवाह की ईमानदारी और भलमनसाहत का अनुमान इसीसे लग सकेगा।"

दूसरा गवाह फादर रुबन्ज उपस्थित किया गया। उसने बताया, "मैं सदानन्द को जानता हूँ। इसको मैंने प्रोफेसर दुर्गादास के घर पर देखा था। सदानन्द का विवाह शबनम से होने वाला था। पीछे शबनम की शादी दुर्गादास से हो गई।"

इस पर कँवरसेन ने जिरह की। जिरह के उत्तर में फादर ने बताया, "मेरी सदानन्द से कभी बातचीत नहीं हुई। मैं एक दिन नौखला थाने में गया था। वहाँ मैंने बयान दिया था कि शबनम प्रोफेसर साहब के नौकर के साथ थी और उसी नौकर ने घर जाकर बताया था कि शबनम पकड़ी गई है। मैंने थाने में जाकर उसको छुड़ाया था।"

कँवरसेन ने पूछा, "यह आपको किसने कहा था कि सदानन्द शबनम से प्यार करता है?"

"शबनम ने।"

"आपने कभी अपनी आँखों से उनको प्यार करते देखा था?"

"नहीं।"

"कानों से उनसे कभी प्यार की बातें करते सुनी थीं?"

"नहीं।"

"तो फिर यह बात सुनी-सुनाई है?"

"हाँ।"

"शादी के समय सदानन्द कहाँ था?"

"गिरजाघर में।"

"जब बाहर शोर मच रहा था, सदानन्द आपके साथ टेलीफोन करने आया था क्या?"

"हाँ।"

"आपने सदानन्द को बाहर मुसलमानों की भीड़ में उनका नेतृत्व करते देखा था क्या?"

"नहीं। मैं बाहर गया ही नहीं।"

इस प्रकार गवाह-पर-गवाह आते गए और कँवरसेन तीन-चार

प्रश्नों में ही उन्हें उडाता चला गया। मुकद्दमे की प्रारम्भिक कार्यवाई पन्द्रह दिन तक चलती रही। सिटी-मजिस्ट्रेट ने सभी मुलजिमों को कसूरवार मान मुकद्दमा सेशन-कोर्ट में भेज दिया।

इन दिनों शान्ति नित्य स्कूल से अवकाश पा सदानन्द से मिलने जाया करती थी। वह सदानन्द को प्रायः अपने घर ले जाती थी और वहाँ दोनों में कई विषयों में बातचीत हुआ करती थी। शान्ति अपने मन के सशयों को खोल-खोलकर उसके सामने रखती और फिर जो-कुछ वह कहता, सुनती थी। इस प्रकार उसके मन का विकास हो रहा था। फादर रूबन्स के पुलिस के सामने झूठे बयान ने उसके मन को ठोकर मारी थी। उससे आरम्भ हुई उसके मन की हलचल, उसको धीरे-धीरे ईसाईयत से दूर ले जा रही थी। कभी-कभी शबनम भी इनकी बातों को सुनती और विस्मय करती थी। शान्ति और सदानन्द उसको दो पहलवान कुश्ती करते मालूम होते थे। वह यह भी देखती थी कि प्रायः शान्ति निरुत्तर हो जाती थी।

एक दिन शान्ति ने कहा, "हजरत ईसा ने कहा है कि मुझ पर ईमान लाओ और स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिए खुल जाएँगे। ठीक यही बात हिन्दुओं के श्रीकृष्ण ने कही है, 'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज। अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षिष्यामि मा शुच.।'

"मैं दोनों में अन्तर नहीं मानती।"

"तब तो आप हिन्दू हैं। वैसे तो हजरत ईसा ने भी परमात्मा के दस हुक्म के नाम से धर्म के दस लक्षण बताए हैं, जो मनु ने अपनी मनुस्मृति में लिखे हैं। यह कहा जा सकता है कि सब महापुरुष समान ही विचार करते हैं।"

"इस पर भी इन दस नियमों के अतिरिक्त भी तो कई बातें हैं, जिनको हिन्दू मानते हैं। हिन्दू समाज में रहने का प्रकार मुझको बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

"इसमें कौनसी बात आपको पसन्द नहीं?"

"पर मैं कहती हूँ कि यह हमारे वार्तालाप का विषय होना आवश्यक नहीं। क्या हम किसी अन्य विषय पर बात नहीं कर सकते ?"

"कर तो सकते हैं, परन्तु इस विषय पर विचार-विनिमय क्यों नहीं होना चाहिए।

"क्या आप समझती हैं कि अन्य मतावलम्बियों की भाँति मैं भी अपने मत पर आलोचना नहीं सुन सकता ? यदि इस कारण आप इस विषय पर बात नहीं करना चाहतीं तो मैं समझता हूँ कि आप मुझको समझी ही नहीं। मेरे अथवा मेरे विचारों के विषय में अन्य लोग क्या समझते हैं, यह मेरे ही जानने की तो बात है और मुझको ही आप बताना नहीं चाहतीं।

"अंग्रेजी सभ्यता के अनुयायी केवल उन विषयों पर ही बात करना पसन्द करते हैं, जिनमें वे सहमत होते हैं। इसमें कारण यह है कि वे अपने विचारों का विरोध सहन नहीं कर सकते। यह अहिन्दू व्यवहार है। हम तो विरोधियों की बात सुनकर मनन करना अपने व्यवहार का एक अंग मानते हैं।

"साथ ही आपने यह कैसे समझा कि मैं उन बातों को पसन्द ही करूँगा, जिनको आप पसन्द नहीं करती हैं ?"

"आप मानव-स्वतन्त्रता की बहुत बातें करते रहते हैं, पर जब मैं देखती हूँ कि जहाँ औरतों को विवाह-सम्बन्ध अथवा विवाह-विच्छेद की भी स्वतन्त्रता नहीं, वहाँ कैसी स्वतन्त्रता है ?"

"इस पर भी हिन्दुओं में अनेकों स्त्रियाँ हैं, जिन्होंने अपने पति को छोड़ रखा है। पति छोड़ने पर वे अहिन्दू नहीं हो गईं।"

"हाँ, पर उनको नीच तो समझा ही जाता है।"

"अच्छा अथवा बुरा, श्रेष्ठ अथवा नीच ये सापेक्षिक शब्द हैं। समय-समय पर इनकी कीमत बदलती रहती है। परन्तु इससे किसी स्त्री को हिन्दूपन से पृथक् करने का साहस किसी को नहीं हुआ।

"हिन्दू समाज एक विशाल सागर है, जिसमें सब विचारों के और

सब स्तरों के लोग रहते हैं।"

"तो प्रत्येक अवस्था में एक ही पति की पत्नी बन रहना एक उच्चकोटि की बात है क्या ?"

"आज हिन्दू समाज मे यह एक श्रेष्ठ बात मानी जाती है। कल यह एक घटिया बात भी मानी जा सकती है। इसमें हिन्दू-अहिन्दू का प्रश्न तो उत्पन्न होता ही नहीं। हिन्दुओं की मुख्य बातें वे हैं, जिनको न मानने से कोई हिन्दू नहीं रहता। मसलन मैं बताता हूँ। आज की हिन्दू-विचारधारा मे गौ, ब्राह्मण-हत्या एक मनुष्य को अहिन्दू बना देती है। यद्यपि गौ का अर्थ उस जन्तु से मान लें, जो मानव-शिशुओं के पालन के लिए दूध देता है और ब्राह्मण उसको मान लें, जो विद्वान् हो, तो बताओ इसमें क्या खराबी है ?

"इसी प्रकार वर्णाश्रम-धर्म मानने वाले को अथवा पुनर्जन्म और कर्म-फल मानने वाले को हिन्दू कहते हैं। वर्ण, जन्म से न मान, कर्म से मान लिए जायँ, तो मैं समझता हूँ कि इनके मानने में भी आपको आपत्ति नहीं हो सकती।

"दूसरे मतो से विलक्षण बात हिन्दुओ मे यह है कि यहाँ विचारों की स्वतन्त्रता देते हुए भी व्यवहार के लिए व्यवस्था दी है। इस व्यवस्था को मानने वाले व्यक्ति को श्रेष्ट और न मानने वाले को हेय-मात्र ही माना है।"

"आप क्या समझते हैं कि जहाँ पति नालायक हो, वहाँ भ विवाह विच्छेद उचित नहीं ?"

"ऐसी अवस्था हो सकती है, जहाँ विवाह-विच्छेद वाञ्छनीय ह जाय, परन्तु यह अवस्था सामाजिक नियम नहीं हो सकती। यह अपवा ही मानी जा सकती है।

"अपवाद-अवस्था मे पड़े स्त्री-पुरुप को वह मान नहीं मिल सकत जो सामाजिक नियम का पालन करने वाले को मिलता है। इस पर यह मानना होगा कि मान-अपमान का माप दण्ड समय-समय पर स

बदलता रहता है। क्या जानें निकट भविष्य में विवाह-विच्छेद मान की बात मानी जाने लगे ? जो बात स्मरणीय है, वह है किसी का पति को छोड़ने पर हिन्दू समाज से बाहर निकाला जाना आवश्यक नहीं।"

"स्त्रियों को दूसरा विवाह करने की स्वीकृति क्यों नहीं, जब पुरुषों को है ?"

"कोई स्त्री पहले पति को छोड़कर दूसरा विवाह कर ले तो कौन मना कर सकता है ? हाँ उसका यह कार्य शोभनीय नहीं माना जाता। इसी प्रकार पुरुषों में होता है। दो अथवा दूसरा विवाह करने वाले का उतना मान नहीं, जितना एक ही पत्नी अथवा एक ही विवाह करने वाले का होता है।"

"इस पर भी दो बीवियों वाले पति की उतनी निन्दा नहीं होती, जितनी दो पतियों वाली स्त्री की होती है।"

"यह तो फिर वही बात आपने कह दी। मैंने जो बताया है कि मान-अपमान का बँटवारा सब समाजों में समय-समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार से होता रहा है और होगा। सिद्धान्त एक ही है कि दो विवाह करने वाले को उतना मान नहीं मिलता, जितना एक विवाह करने वाले को मिलता है। हिन्दू समाज में पुरुष के दो विवाह करने को इतना आपत्तिजनक नहीं माना जाता। इसमें एक कारण यह भी हो सकता है कि इस समाज में पुत्र पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है। यदि एक स्त्री के दो पति हों तो इस झगड़े का निर्णय कि कौन पुत्र किस पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो, अति कठिन हो जावेगा। यह झगड़ा पुरुष का बहुपत्नीक होने से उत्पन्न नहीं हो सकता।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दू समाज में यह उत्तराधिकार का सिद्धान्त भी अशुद्ध है ?"

"हो सकता है। इस उलझन को सुलझाने का एक उपाय यह भी हो सकता है कि स्त्रियों की अपनी सम्पत्ति भी हो। कदाचित् तब दूसरा अथवा दो विवाह करने वाली स्त्री की मान-प्रतिष्ठा वैसे ही पुरुष के

समान हो जावेगी। ऐसी अवस्था में उत्तराधिकार के नियमों में भी परिवर्तन की आवश्यकता पड़ेगी।

"अब आर्थिक विधि-विधान बदल रहे हैं। इसके साथ मान-अपमान के माप-दंड भी बदल जाएँगे। एक धन की स्वामिन स्त्री दूसरा विवाह करने पर मान पा सकेगी।"

"तो यूरोपियन समाज का रिवाज कि लड़की-लड़के एक समान पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हों, ठीक हुआ?"

"हो सकता है कि वर्तमान अवस्था में यह अवस्था श्रेष्ठ हो, इस पर भी यह युक्तियुक्त अवस्था नहीं होगी।

"तनिक विचार करिए कि लड़की माता-पिता के परिवार का अंग नहीं है। विवाह तक तो वह प्राय. परिवार की सम्पत्ति व्यय करने वाली ही रहती है। तब तक उसके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा पर व्यय-पर-व्यय होता है। जब वह बड़ी हो जाती है और इस योग्य हो जाती है कि उसकी सेवाएँ परिवार के लिए उपकारी हों, तो उसका विवाह हो जाता है और वह एक दूसरे परिवार का अंग बन जाती है।

"इसके विपरीत लड़के जिस परिवार में उत्पन्न होते हैं, उसी परिवार में पलते हैं। उसी के व्यय से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करते हैं और फिर बड़े होकर, उसी परिवार को अपनी सेवाएँ देते हैं।

"तो क्या आप यह समझती हैं कि पिता के परिवार में दोनों का आर्थिक अधिकार बराबर होना चाहिए?"

"तो फिर लड़की का क्या होगा?"

"लड़की को भी सम्पत्ति का मालिक तो होना चाहिए, परन्तु जिस परिवार में सज्ञान होने से मरण-पर्यन्त वह सेवा करती है और अपनी सेवा से सुख प्रदान करती है, उस परिवार की सम्पत्ति में ही तो उसका भागीदार होना ठीक रहेगा। मेरी सम्मति में तो पत्नी का पति के बराबर अपने स्वसुर की सम्पत्ति में अधिकार मान लिया जाय, तो बहुत ही अच्छा रहेगा।

"जिस स्त्री की जिस परिवार मे सेवाएँ हो, उसकी सम्पत्ति मे ही उसका भाग होना चाहिए।"

"तब तो बहुत कठिनाई हो जायगी।"

"क्या कठिनाई उत्पन्न होगी?"

"भाई-बहन परस्पर विवाह करने लगेंगे! वे अपनी सम्पत्ति किसी दूसरे परिवार मे नहीं जाने देंगे।"

"यही तो बात समझ में नहीं आती कि पत्नी, जो पति की प्रत्येक प्रकार की सेवा करती है, वह किसी दूसरे परिवार की कैसे हो गई? भाई-बहन का विवाह हो सकेगा या नहीं, यह तो निश्चय से नहीं कहा जा सकता। हाँ, पिता की सम्पत्ति मे लड़की का भाइयों के समान अधिकार होने पर यह अवश्य हो जाएगा कि पति पत्नियों के घर मे रहने लगेंगे। समाज मे प्रथा यह चल पड़ेगी कि विवाह के पश्चात् पति का पत्नी के माता-पिता के घरों मे जाकर रहना ठीक समझा जावेगा।"

"जो होगा सो देखा जायगा। पतोहू का श्वसुर की सम्पत्ति मे भाग तो असम्भव है। पुत्री का पिता की सम्पत्ति मे सम्भव प्रतीत होता है।"

"सम्भव-असम्भव की बात का उत्तर विकट है। मै तो युक्तियुक्त व्यवहार की बात कह रहा हूं। आज की समाज यदि युक्तियुक्त बात को असम्भव मानती है, तो मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा के प्रश्न पर विचार होना चाहिए।"

शान्ति के विचार मे हिन्दू समाज एक गली-सड़ी व्यवस्था थी। वह जिधर देखती थी, उधर ही उसको आपत्तिजनक व्यवस्था दृष्टिगोचर होती थी। आज पहले दिन स्त्रियों के अधिकारों पर इतने विशिष्ट रूप मे विवेचना हुई थी। एक बात, जो सदानन्द ने उसको बताई थी, उसको

अच्छी नौकरियाँ, सुन्दर लडकियाँ और सरकारी क्षेत्रों मे मान-प्रतिष्ठा मिलती है।"

फादर रुबन्ज के व्यवहार से शान्ति की ईसाई-धर्म में रही-सही निष्ठा भी विलुप्त हो गई। अब वह रविवार के दिन गिरजाघर नहीं जाती थी। उसने फादर रुबन्ज के पास जा, अपने मन के सशयो का निवारण करना छोड दिया और उनके सम्मुख अपराध स्वीकार करना (कनफेशन) बन्द कर दिया।

वह स्कूल में लडकियों को हिन्दी पढाती थी, परन्तु पहले की भाँति हिन्दू-समाज, जिसमें की प्रायः लडकियाँ पढने आती थीं, की अब निन्दा नही करती थी। अब अनायास उसके मुख से सीता अथवा सावित्री की प्रशसा निकल जाती थी।

किसी लडकी ने, जब वह महाभारत की कथा लडकियों को सुना रही थी, कह दिया, "द्रौपदी के पाँच पति थे।"

शान्ति ने कहा, "ठीक है। पर जानती हो यह कब की बात है ?"

"कब की बहन जी ?"

"जब हजरत नूह अभी पैदा नहीं हुए थे। इग्लैंड और अमेरिका के लोग, जो आज बड़े सभ्य माने जाते हैं, अभी बन्दरों की भाँति पेड़ों पर चढ कर रहते थे। न उनको वस्त्र पहनने आते थे, न उनके यहाँ विवाह की रिवाज थी। प्रायः स्त्रियाँ भूल जाती थीं कि उनका पिछले दिन वाला पति कौन है और कहाँ है।"

लड़कियों को भी उनकी अध्यापिका में यह परिवर्तन आश्चर्य-जनक प्रतीत हुआ।

एक दिन स्कूल की मुख्याध्यापिका ने, जिसके पास कई ईसाई लड़कियाँ शान्ति देवी के विचारों में परिवर्तन के समाचार सुना जाया करती थी, शान्ति देवी को अपने कमरे में बुलाकर पूछा, "मुझको यह सूचना क्या गलत मिली है, कि श्रेणियों में तुम हिन्दू-धर्म की प्रशसा किया करती हो ?"

"मैं हिन्दू-धर्म की बात नहीं जानती। हाँ प्राचीन भारत के रहने वालों की बातों को निन्दनीय नहीं समझती। लड़कियों के समक्ष कभी हिन्दी पढ़ाते समय ऐसे विषय आ जाते हैं, तो मैं अपने पूर्वजों की असत्य निन्दा का खण्डन कर देती हूँ।"

"वे हमारे पूर्वज नहीं थे। यदि हों भी तो हमको उनसे क्या? हम न तो उनके धर्म को मानती हैं और न ही उनके रीतिरिवाज को।"

"इस पर भी बहन जी! वे हमारे पूर्वज तो हैं ही। वे सर्वथा असभ्य और अशिक्षित थे, यह सत्य नहीं। एक बात और भी है। मैं हिन्दी-साहित्य पढ़ाती हूँ। मुझको भारतवासियों की निन्दा का कार्य नहीं मिला।"

"पर मिस पीटर! यह तुमको विदित ही है कि इस स्कूल का वार्षिक-व्यय एक लाख रुपये के लगभग है। आय केवल तीस-पैंतीस हजार है। शेष धन धनी-मानी लोग ईसाई-धर्म के प्रचार के लिए देते हैं। यदि हम सीता, द्रौपदी और पद्मिनी की प्रशंसा करते रहे तो स्वाभाविक रूप में उनके आचार-विचार की भी प्रशंसा हो जाएगी। तब लोग क्यों ईसाई-धर्म स्वीकार करेंगे। हम उन दान देने वालों के उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेंगे, जिनके धन में से हम वेतन पाते हैं।

"मैं तुम्हें यह चेतना देती हूँ कि इस प्रकार का कार्य इस स्कूल के उद्देश्यों के विरुद्ध होगा।"

शान्ति के लिए यह एक नवीन अनुभव था। उसने स्कूल में कार्य अधिक सतर्कता से आरम्भ कर दिया। वह यत्न करती रहती थी कि श्रेणी में किसी प्रकार के विवादास्पद विषय पर बात न चलने पाए। कभी ऐसी बात उत्पन्न होने पर वह बात बदलने का यत्न करती थी।

वह आज समझती थी कि सदानन्द का कहना कि मनुष्य के प्रायः कार्य नारी की प्रेरणा से होते हैं, कितना सत्य है। कैसे वह सदानन्द के सम्पर्क में आई, कैसे उसके विचार ने उसके मस्तिष्क पर से पक्षपात का पर्दा उठाया और कैसे अब उसकी नौकरी छूटने वाली है। वह यत्न

कर रही थी कि ऐसा न हो। परन्तु परिस्थितियाँ विपरीत प्रतीत होती थीं। भाग्य उसके पुरुषार्थ से प्रबल सिद्ध हो रहा था।

सदानन्द मुकद्दमे से मुक्त हो अपने कार्य में लग गया था। उसकी प्रथम पुस्तक 'सैरे परिस्तान' का प्रथम सस्करण समाप्त हो गया था। उसका दूसरा सस्करण अब छप रहा था। पहले सस्करण में उसको एक सहस्र रुपया मिला था। इससे प्रोत्साहित हो उसने अपनी दूसरी पुस्तक लिखनी आरम्भ कर दी थी।

अब उसकी दिन-चर्या में परिवर्तन हो गया था। वह प्रात. सात बजे किताबत के काम पर जाता था। वहाँ चार रुपये का कार्य कर, एक बजे घर पर आ भोजन करता था। चमेली अब प्रभा से पढती थी। सदानन्द आधा घण्टा विश्राम कर, दो बजे अपना बस्ता ले किसी बाग में जा बैठता था। उसको एकान्त के लिए कभी बादामी बाग, कभी रावी के किनारे, कूएँ की जगत पर और कभी शाहदरा, जहाँगीर के मकबरे पर जाकर बैठना पडता था वहाँ बैठ वह मानव की त्रुटियों और विभ्रमताओं पर लिखता रहता था।

घर पर एक और घटना घट रही थी। प्रभा दिन प्रतिदिन दुबली होती जाती थी। इस पर भी वह माँ का घर के काम-काज मे हाथ बँटाती थी। चमेली के घर लडका हुआ तो वह उसके पालन-पोषण में लग गई। परन्तु उसका शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाता था। सदानन्द उसके निस्तेज तथा दुर्बल मुख को देख चिन्ता अनुभव करता रहता था। घर में सब उसकी इस अवस्था पर चिन्ता अनुभव करते थे। सदानन्द से छोटा देवानन्द अब आर्ट्स-स्कूल में चित्र कला सीखने जाता था। यूँ तो वह वहाँ की पढाई समाप्त कर चुका था। इस पर भी वह वहाँ जाता था और प्रसिद्ध कलाकारों के चित्रों की प्रतिलिपियाँ तैयार करता रहता

। वह भी प्रभा के विषय में चिन्ता तथा दुःख अनुभव कर रहा था।
ने एक दिन माँ से कह भी दिया, "माँ! प्रभा का विवाह कर दो।"
"वह विवाह नहीं करना चाहती। और अब इस अवस्था में उससे विवाह करेगा?"
बात यहाँ ही समाप्त हो जाती थी और इससे किसी को सन्तोष होता था। एक दिन सदानन्द रमा से मिलने जालन्धर गया। के विवाह को डेढ़ वर्ष से ऊपर हो चुका था और विवाह के पश्चात् लाहौर नहीं आई थी। रमा और सुन्दर दोनों का मत था कि वह ो में मिलने नहीं जायेंगे। जिस किसी को मिलना हो, वह जालन्धर कर उनसे मिल जाए। इस कारण सुन्दर का पिता महीने में एक बार र मिल आया करता था। सुन्दर की माँ दो बार जा चुकी थी और ी लक्ष्मी, कभी सदानन्द, कभी परमानन्द और कभी देवानन्द जाकर त आया करते थे। इस बार सदानन्द गया तो प्रभा की चर्चा चल । रमा ने एक बात कही, जिस पर सदानन्द उसका मुख देखता रह । उसने कहा, "सदा भैया! यह बात विचित्र तो प्रतीत होगी, परन्तु ठीक ही मालूम होती है। आप प्रभा का इनसे विवाह कर दीजिए।"
"किनसे, सुन्दर भैया से?"
रमा ने आँखें नीची किए हुए कहा, "हाँ, क्या हानि है?"
सदानन्द बिटर-बिटर रमा का मुख देखता रह गया। रमा ने को चुप देख कहा, "मैं नहीं जानती कि कहाँ तक माँ तथा आप ों को रुचिकर होगा। पर मेरी धारणा है कि इससे उसकी जान जाएगी। लोग कहते हैं कि जुड़वाँ बच्चे एक आत्मा और दो ीर होते हैं। कुछ भी हो, इसमें मुझको प्रसन्नता ही होगी।"
"पर रमा! विवाह तो सुन्दर का होना है। दो बीवियों के पालन-षण का भार तो उस पर ही होगा।"
"मैं उनकी अनुमति से ही कह रही हूँ।"
सदानन्द ने सुन्दर को पृथक् ले जाकर रमा का प्रस्ताव उसको

सुनाया। उसने इस पर विस्मय प्रकट किए बिना कहा, "पिछले सप्ताह आपकी माताजी आई थीं और प्रभा के विषय में कह गई थीं कि वह सूख कर काँटा हो गई है। इस पर मैंने रमा से राय की और हम दोनों इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यही एक उपाय है, जिससे उसके स्वास्थ्य लाभ करने की आशा की जा सकती है।

"यह मैं जानता हूँ कि सासारिक लोग मेरी निन्दा करेंगे। शायद आपके विषय में भी कुछ कहें। परन्तु हम पशु तो हैं नहीं, जो समाज के कहने पर अपना कर्तव्य निश्चित करें। हम एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर रहे हैं और हम इस परीक्षण के परिणामों को जानते हुए ही तो कह रहे हैं।"

"मैं माँ से बात करूँगा।"

"मैं तुम्हारे यहाँ आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। मेरा विचार था कि तुमको इस प्रकार का प्रस्ताव कर, मैं अपनी हँसी नहीं कराऊँगा। तुम मेरा आशय समझ सकोगे।"

"मान लो कि माँ और प्रभा स्वीकार कर लें तो फिर यह किस प्रकार होगा?"

"आप मुझको तार द्वारा सूचित करें। मैं रमा को आपके पास भेज दूँगा। यह प्रभा और अपनी माताजी तथा हो सके तो तुम और परमानन्द को भी लेकर यहाँ आ जाएगी। यहाँ इसी कोठी में विवा
— [illegible]यगा। बहुत आडम्बर करने की आवश्यकता नहीं होगी।

मैं [illegible] बातचीत कर लूँगा। वे कल य

सदानन्द लाहौर लौटा तो उसने सुन्दर और रमा का प्रस्ताव माँ के सामने रख दिया। लक्ष्मी इस प्रस्ताव पर स्तब्ध रह गई। परमानन्द को जब यह बात बताई गई, तो उसने इसको एक भारी अपमान-जनक प्रस्ताव समझा। सदानन्द इसके पक्ष मे था। उसने माँ और परमानन्द को समझाया कि एक पशु मे अपने वातावरण से अनुकूलन-शक्ति नहीं होती। मनुष्य में इस बात की विशेषता है कि वह अपने को परिस्थिति और अवस्था के अनुकूल बना सकता है। हमारी अवस्था ऐसी है कि दोनों बहनों के एक ही साथ विवाहने में लाभ प्रतीत होता है। हमको ऐसा कर देना चाहिए।

जब प्रभा की इस प्रस्ताव पर सम्मति माँगी गई, तो वह रो पड़ी। क्यों, वह बता नहीं सकी। सारा दिन और रात-भर वह रोती ही रही। सदानन्द का विचार था कि यह रोना असीम प्रसन्नता का सूचक है।

शान्ति को सदानन्द से मिले एक महीने से ऊपर हो चुका था। जब से वह अपनी पुस्तक लिखने बैठा था, तब से वह प्रोफेसर दुर्गादास से मिलने नहीं गया था और परिणाम यह हुआ था कि न शान्ति से भेंट हुई थी और न शबनम से।

आज शान्ति का आधे दिन का स्कूल था। सेंट बेनेडिक्ट का जन्म-दिन था और स्कूल में लड़कियों की खेलें और मीटिंग हुई थी। शान्ति एक बजे सदानन्द के घर पहुँच गई। चमेली अपने बच्चे को लिए घर के द्वार पर खड़ी थी। शान्ति ने उससे पूछा, "आपके सदा भैया आए हैं या नहीं?"

"आने ही वाले हैं। बहुत दिन उपरान्त आपके दर्शन हुए हैं। कहाँ रहीं आप?"

"आप भी तो भाभी! हमारे घर नहीं आतीं।"

"आप बड़े आदमी हैं। बिना बुलाए वहाँ जाने में भय प्रतीत होता है।"

"ओह! पर मुझको तो आपके घर आने में भय प्रतीत नहीं

होता।"

"एक तो आप बहुत पढ़ी-लिखी हैं। दूसरे आप स्कूल में मास्टरी करती हैं। तीसरे आप हमसे मिलने तो आती नहीं। आप तो सदा भैया को ही पूछती आती हैं।"

शान्ति खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसकर बोली, "अच्छा भाभी! आज मैं तुमसे ही मिलने आई हूँ। बताओ तुम्हारे घर चलूँ?"

"आइये।" चमेली ने शान्ति का हाथ पकड़ लिया और अपने कमरे में ले गई।

"यह है मेरा कमरा। हम विचार कर रहे थे कि एक बडा मकान भाड़े पर ले लें, परन्तु कुछ-न-कुछ विघ्न पडते ही रहते हैं। अब सदा भैया मुकद्दमे से मुक्त हो डटकर काम करने लगे हैं और हम मकान की खोज में हैं।"

"प्रभा क्या कर रही है?"

"आज प्रातःकाल से रो रही है।"

"क्यों, क्या बात है?"

"कुछ भी बताती नहीं। पर हम जानते हैं कि इसे अपनी बहन रमा से बहुत प्रेम था। उसके वियोग में यह घुली जा रही है।"

"आप इसका विवाह क्यो नहीं कर देते?"

"वह माने भी तो?"

"मैं उससे पता करूँ?"

"सदा भैया अभी आते होंगे। उनसे राय कर लें।"

"लडकियों के विषय में वे क्या जानते होंगे?"

"हमारे घर में सबसे अधिक समझदार वे ही माने जाते हैं।"

शान्ति को इस बात से विस्मय हुआ। वह चमेली से पूछने लगी कि उसके पति की क्या अवस्था है कि इसी समय सदानन्द आ गया। वह शान्ति को चमेली से बातें करते देख, उसका मुख देखने लगा। शान्ति ने उठ हाथ जोड नमस्ते की तो सदानन्द ने नमस्ते का उत्तर दे

पूछा, "आज कैसे आना हो गया ?"

"बहुत दिनों से आपके दर्शन नहीं हुए थे। आप आए नहीं। इस कारण मैं ही चली आई हूँ। देखिए आपकी भाभी ने कहा है कि मैं तो आपसे मिलने आती हूँ। इनसे मिलने नहीं आती। इस कारण ये हमारे घर कैसे आ सकती हैं ?"

"ठीक तो कहती है।"

"तो आज मैं इनके घर आई हूँ और माताजी के घर में भोजन करूँगी। जिससे जब वे मेरे घर में आएँ तो वहाँ भोजन भी कर सकें।"

सदानन्द हँस पड़ा। चमेली मुख देखती रह गई। सदानन्द ने कहा, "तो भाभी! अब चलो न भोजन कराओ। नहीं तो इनके यहाँ जाकर कुछ नहीं मिलेगा।"

चमेली ने बच्चे को पलँग पर सुला दिया। बच्चा गोदी में ही सो गया था। तीनों ऊपर की मंजिल पर चढ़ गए। चमेली चौके में चली गई। सदानन्द ने माँ से कहा, "माँ! आज ये भी यहीं खाना खाएँगी।"

"अच्छा? तो अहोभाग्य हैं हमारे।"

"पर माँ जी! आपको कहीं बर्तन तो नहीं फेंकने पड़ेंगे? मैं तो ईसाई हूँ।"

उत्तर सदानन्द ने दिया, "तब तो मजा रहेगा। भोजन खाओगी और बर्तन फोकट में मिल जाएँगे।"

लक्ष्मी बिना उत्तर दिये चौके में चली गई। चमेली ने कड़ाई चूल्हे पर रख दी और पकौड़े तथा पूरी बनाने लगी थी। प्रभा ऊपर की छत पर बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। दूसरे बच्चे स्कूल गए हुए थे। शान्ति ने प्रभा के विषय में बात आरम्भ कर दी। "आप उसका विवाह क्यों नहीं कर देते?"

"एक अच्छे पढ़े लिखे लड़के से बातचीत हो गई थी। परन्तु जब

प्रभा को पता लगा तो उसने खाना-पीना बन्द कर दिया। विवश हमें उसका विचार छोड़ना पड़ा। रमा का एक प्रस्ताव आया है कि इसका विवाह सुन्दर से कर दिया जाय ?"

"सुन्दर से ? पागल हो गई है वह ?"

"सुन्दर ने उसके प्रस्ताव का समर्थन किया है और सुन्दर के पिता ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की।"

"मुझको तो यह बात कुछ ठीक प्रतीत नहीं हुई।"

"हमने इसको स्वीकार कर लिया है। शर्त यह है कि प्रभा भी पसन्द करे तो।"

"आपने प्रभा से इसका उल्लेख किया था ?"

"हाँ आज प्रातःकाल माँ ने उसे कहा था।"

"तो उसने क्या उत्तर दिया है ?"

"वह रो पड़ी थी।"

"तो फिर ?"

"मैंने इसे प्रसन्नता के आँसू समझे थे। इस पर भी इस सूचना की प्रतिक्रिया दो-तीन दिन तक देखकर ही समझ आवेगी।"

"इस पर भी एक पति की दो पत्नियाँ, आज बीसवीं शताब्दि में बहुत ही भद्दी बात मालूम होती है।"

"इस भद्दी बात के करने से यदि प्रभा का जीवन बच सके तो मैं कुछ हानि नहीं समझता। हिन्दुओं में पुरुष के लिए दो विवाह वर्जित नहीं हैं। ये दो विवाह की स्वीकृति विशेष परिस्थिति में ही होती है और इससे अधिक परिस्थिति में विशेषता और क्या हो सकती है ?"

"आप हिन्दू खूब हैं। प्रत्येक रस्म में युक्ति निकाल लेते हैं।"

"इसको अनुकूलन-शक्ति (अडैप्टेबिलिटी) कहते हैं। जिस जाति में अनुकूलन शक्ति अधिक होती है, वह ससार की अनेकानेक परिस्थितियों मे भी जीवित रहने की शक्ति रखती है।

"देखिये शान्ति देवी ! हिन्दू जाति, जिसका प्राचीन नाम आर्य-

जाति है, बहुत ही पुरानी है। वर्तमान इतिहासकारों के विचार से भी दस हज़ार वर्ष पुरानी तो है ही। जब वेद लिखे गए थे, तब से ही हम वेद को प्रमाण-ग्रन्थ मानने वाले, यम-नियम को धारण करने वाले, परमात्मा पर अगाध विश्वास रखने वाले अब तक जीवित हैं। इसमें कारण यह है कि हम अपनी आधारभूत बातों को पकड़े हुए हैं और प्रत्येक प्रकार की अवस्था और परिस्थिति को अपने अनुकूल बनाने की शक्ति रखते हैं।

"यह दो विवाह की प्रथा भी निरुद्देश्य नहीं है। यह हमारी अनुकूलन-शक्ति की परिचायक है।"

चमेली और लक्ष्मी भोजन परसकर ले आईं। चमेली जाकर पूरी बनाने लगी और लक्ष्मी बैठकर खिलाने लगी। शान्ति ने खाते हुए कहा, "माँ जी! देखिए। ये आपके लड़के क्या कहते हैं। ये कह रहे हैं कि आप इन बर्तनों को भ्रष्ट हुआ समझ फेंक देंगी और फिर मैं इन बर्तनों को अपने साथ ले जा सकूँगी। यह कितनी मज़ेदार बात है। भोजन भी खाऊँगी और बर्तन भी पाऊँगी।'

"हाँ बेटी! परन्तु मुझको तो कुछ और ही सन्देह हो रहा है।"

"वह क्या?"

'ब्राह्मण के हाथ की रसोई खाकर तो जन्म जन्मान्तर के पापी तर जाते हैं। तुम तो बहुत ही भली और सुशील हो। हमारे हाथ का भोजन खाकर इतनी पवित्र हो जाओगी कि ईसाई-घर में रहने योग्य नहीं रहोगी और हम तुमको घर की लड़की बना रख लेंगे।'

शान्ति का मुख लज्जा से लाल हो गया। सदानन्द ने बात टालने के लिए कह दिया, "पर माँ! क्या दो बेटियाँ तुम्हारे लिए काफ़ी नहीं?"

"हट ! मेरी तीन बेटियाँ पहले ही हैं। रमा, प्रभा और पुष्पा और यह चौथी भी आ जाएगी तो हानि है क्या ?"

सदानन्द और शान्ति हँसने लगे। शान्ति हँस तो रही थी, परन्तु उसका मुख ताँबे की भाँति लाल हो रहा था। इस समय चमेली और पूरी ले आई। शान्ति ने और लेने से न कर दी। चमेली ने विस्मय में पूछा, "बस इतनी ही ?"

"रोटी तो मैं खाकर आई थी। बर्तनों के लालच में बैठी थी, परन्तु माँ जी ने तो मेरे पर ही हाथ सफा कर दिया है।"

"वह तो मेरा हक हो गया है। दो-चार पूरी क्या, तुम एक ग्रास-भर भी खा लेतीं, तब भी ब्राह्मण के आशीर्वाद से पवित्र हो ब्राह्मणी बन जातीं। अब तो सन्देह ही नहीं रहा।"

"माँ ! हिन्दू मुसलमान थोड़े ही हैं, जो हाथ लगाने से किसी का धर्म परिवर्तन कर देंगे।" सदानन्द ने कहा।

"बहुत ही निःस्वार्थी हो तुम। बिना मूल्य एक लडकी बनती रोक रहे हो।"

भोजनोपरान्त सदानन्द चलने को तैयार हुआ तो शान्ति भी तैयार हो गई। उसने पूछा, "कहाँ जा रहे हैं आप ?"

"रोज तो किसी एकान्त स्थान में जाकर अपनी पुस्तक लिखा करता हूँ, परन्तु आज तो जहाँ आप कहेंगी, चलूँगा।"

"तो चलिए घर चलें। भैया कॉलेज से आ गए होंगे। शबनम भाभी भी होगी। वहाँ उनसे मिलकर फिर कहीं घूमने चलेंगे।"

"चलिये।"

सदानन्द और शान्ति को आते देख शबनम कोठी के बरामदे से, जहाँ वह बैठी किसी बहुत ही छोटे से बच्चे के लिए मोजे बुन रही थी, उठकर मिलने के लिए आगे बढ़ी। हाथ जोड नमस्कार कर उसने शान्ति से पूछा, ' आज इनको कहाँ से पकड लाई हो ?"

"इनको पकडने के लिए बहुत लम्बी यात्रा करनी पडी है और फिर

बहुत ही कठिनाई से इनकी माँ से इनको छुट्टी दिलवाकर लाई हूँ।"

"ओह!" शबनम ने कहा, "तो माँ ने अपने दूधपीते बच्चे को भेज दिया है आपके साथ? अच्छा मैं इनके लिए मिठाई लाती हूँ।"

इस समय सदानन्द की दृष्टि मोज़ों पर चली गई, जो शबनम बुन रही थी। वह हँसते हुए बोला, "तो यह तैयारी आरम्भ कर दी है दूध-पीते बच्चों को खिलाने, पहिराने की?"

शान्ति हँस पड़ी। वह कहने लगी, "आप दो महीने से आए नहीं न। यहाँ तो बहुत कुछ हो गया है।"

शान्ति आज बहुत प्रसन्न थी। शबनम भी अपनी अवस्था से अति सन्तुष्ट थी। इस कारण हँसी-ठट्ठा चल रहा था। शबनम ने बात के विषय को बदलने के लिए कह दिया, "सदा भैया! आप कब अपने विवाह का निमन्त्रण देने वाले हैं?"

"जब कोई देवी इस भूलोक पर अवतरित होकर अपनी कृपादृष्टि इस ओर करेगी।"

"सुना है कि आपने कविता पढ़कर अपने भाई के लिए बीवी ला दी थी। क्या नाम था उसका? वह, जिसने आपके मुकद्दमे में गवाही देते हुए कहा था कि आपकी कविता ने उसकी सगाई तुड़वाकर आपके भाई का विवाह करवा दिया था।"

"वह शिवराम था। एक आँख से काना, चवालीस वर्ष का युवक, लम्बे व टेढ़े मुख वाला और पक्षाघात के कारण लँगड़ा।"

"हाँ, उसकी होने वाली बीवी उड़ाकर अपने भाई के लिए दिलवा दी थी। अब कहीं कविता बोल अपने लिए भी ले आइये।"

"बोली तो थी पर असर नहीं हुआ।"

शान्ति ने पूछा, "कहाँ? और किस पर असर नहीं हुआ?"

"एक दिन मोरी दरवाजे के बाहर वाले बाग में मैंने गाया था—

पुरवा डोल गई कन विच बोल गई।
साजन आवन दी बात भी खोल गई॥

"एक सुनने वाली पर कुछ सामयिक प्रभाव हुआ भी था और उसने उत्तर में यह लिख दिया था :

परदेस तों पुरवा आई ए पाती सजनी दी सग लाई ए ।
साजन आ जा सजनी बेकल ई बैठी तकदी दे दुहाई ए ॥

"परन्तु समय व्यतीत होते-होते मेरी कविता का प्रभाव समाप्त हो गया और मैं प्रतीक्षा में बैठा रह गया ।"

"इस पर निराश होने की क्या बात है । फिर यत्न करिए ।" शान्ति ने कहा । "सफलता मिल सकती है और यदि न मिली तो फिर यत्न करिएगा । आप तो कर्मयोग के मानने वाले हैं ।"

इस समय प्रोफेसर साहब आ गए और सदानन्द को बैठा देख पूछने लगे, "किस काम के लिए यत्न करना चाहती हो शान्ति ?"

"भाभी ने बताया है कि एक बार इन्होंने एक लडकी के विषय में कविता बोली, तो उसकी सगाई इनके बड़े भाई से हो गई । हम कह रहे हैं कि एक कविता और बोलें तो शायद इनकी भी सगाई हो जाए ।"

"अच्छा अब समझा हूँ । तो सदानन्द जी ! यत्न आज और यहीं से आरम्भ कर दीजिए ।"

"मुझको डर लगता है कि कहीं शबनम मेरी कविता पर मोहित हो मुझसे फिर विवाह करने को तैयार हो गई, तो भारी गडबड हो जाएगी ।"

"अब तो मैं समझता हूँ कि इसके पाँव में दो बेडियाँ पड़ गई हैं । देखा नहीं यह मोजे बुन रही है ।"

"देखे हैं । पर कविता ने कहीं इतना असर किया कि ये बेडियाँ तोड भाग उठीं, तो फिर आप क्या करेंगे ?"

"क्यों शबनम ?" प्रोफेसर साहब ने मुस्करा कर पूछा, "क्या ये इतनी अच्छी कविता करते हैं ?"

"अच्छी-बुरी बात तो कोई इनसे बडा कवि ही बता सकता है ।

इतना मैं जानती हूँ कि इनकी कविता हृदय में चुभ जाती है।"

"तब तो सदा भैया! आज यहाँ पर कविता हो जाए।"

"जब मेरी कविता से शबनम मुझ पर मोहित हुई थी, तब ही मैंने मन में निश्चय कर लिया था कि स्त्रियों के सामने कभी कविता नहीं कहूँगा।"

"पर यहाँ है कौन, जो आप पर मोहित हो जाएगा?" प्रोफेसर ने पूछा। "शबनम पर आपका जादू समाप्त हो चुका है और ...।"

शान्ति ने बीच में ही बात काटकर कहा, "और मेरा पत्ता कट चुका है। इनकी माता जी ने चार पूरी खिलाकर कह दिया है कि उनके घर का अन्न खाने से मैं उनकी लड़की बन गई हूँ।"

"तो ठीक है। अब तो यहाँ आपकी कविता पर मोहित होने वाला सिवाय मेरे और कोई नहीं है।"

इस समय चाय आ गई। शान्ति चाय बनाने लगी तो शबनम ने कहा, "शान्ति देवी! वह उस दिन वाली कविता तुम ही सुना दो न।"

"तब तो बात बन गई। यदि शान्ति देवी कविता सुनायेंगी, तो मैं भी सुना दूँगा।" सदानन्द ने कहा।

"हुर्रे! हुर्रे!!" प्रोफेसर ने ताली बजाते हुए कहा, "बहुत खूब! तो आज यहाँ कवि दरबार लग जाए।"

"कवि-दरबार तो नहीं। हाँ एक कविता शान्तिदेवी सुना दें, तब मैं एक कविता कह दूँगा।"

"शान्ति! चाय मैं बनाता हूँ। तुम अपनी कापी ले आओ।"

"पहले चाय पी लें फिर आज अपनी छिपा कर रखी हुई दुर्बलता इनके सामने नग्न कर रख दूँगी।"

चाय समाप्त होते ही शान्ति अपने कमरे में गई और अपनी कविताओं की कापी ले आई। उसने कापी में पढ़कर, परन्तु लय से एक कविता सुना दी। कविता थी—

तारों से झिलमिल चुन्दरिया ओढ़ चली आ रही रजनी
प्रीतम के आवन की बतियाँ कानों में कह गई सजनी।

मंद समीर चली मदमाती रजनी का अचरा उधरा
चन्दा-सा मुख शोभित सुन्दर गगना में है दीख पड़ा।
विरह वेदना से उत्पीड़ित मलिन भया मुख सजनी का
प्रियतम ढूंढन चली जा रही चढ़ा है मद ज्यों मदनी का।
कमल दलों पर चलते चलते पांव फफोलों से गल गए
अमर भयी यह प्रेम परिक्रमा भाग्य जो उनके थे जल गए।
पिय मिलन की वेला में भयी फीकी आभा रजनी की
चूनर से उड़ गए सब तारे शोभा मिट गई सजनी की।
लज्जा से मुख लाल हुआ ले छिपी चाद से मुखरे को
करेगी फिर शृङ्गार है सजनी शेष करन इस दुखरे को।

सदानन्द ने कहा, "वाह। आप तो व्यर्थ में सकोच कर रही थीं। बहुत सुन्दर बनी है। विशेष रूप में, "चूनर से उड गए सब तारे, शोभा मिट गई सजनी की।"

"तो आप भी सुनाइये न।" शबनम ने कहा।

"मैं तो पजाबी में ही सुनाऊँगा।"

"ठीक है, हम विलायत से नहीं आए। आप शौक फरमाइये।"

सदानन्द ने कुछ विचार कर आरम्भ कर दी।

रुत वसन्त दा औना सुन के ते पई बोल ए सुत्ती सितार मेरी
फुल्ले हार सिंगार ते मोतिया ए फूल दी कलि ए विच प्यार मेरी।
हरी घास ते ओस पई लगदी ए मोतियां नाल ए जिवें जड़ी होई
पवन महकदी आरही वाग मालन हथ पटार फुल्ला दी फड़ी होई।
कमल दला वे सिर लेटा के ते वाग सारस दे मैं सौं जावां
पागल हो हो लहरा हसदियां मैं शोर औना विच खो जावां।
चले पवन मन्द मस्तानी जे चूनर कलियां दी पई उड़दी ए
रगा रंग दे फुल्ला दा कर शृंगार रुत वसन्त पई हुन सजदी ए।

शरम नाल झुका के अखियां नूं कोई राह किसी दी देखदा ए,
मनदी वीन दे सुर हुन बोल उठे किदी याद नू पेया ओ डोलदा ए।

प्रोफेसर कविता सुन स्तब्ध रह गया। उसने कहा, "मैं नहीं जानता था कि पंजाबी में भी ऐसे भाव व्यक्त किए जा सकते हैं।"

"भाव तो कवि के होते हैं। भाषा केवल माध्यम है।"

इस पर प्रोफेसर ने कहा, "इस समय एक कमी रह गई है।"

"क्या?" सदानन्द ने पूछा।

"शबनम भी अपनी कापी उठा लाए और एक-दो शेर सुना दे तो मैं समझूँगा कि आज दिन का कार्यक्रम पूर्ण हो गया।"

शबनम ने प्रश्न-भरी दृष्टि से प्रोफेसर साहब की ओर देखा। प्रोफेसर ने प्रोत्साहन देते हुए कहा, "हाँ-हाँ। क्यों नहीं। बुलबुल भी पढ़ाले।"

"तो मैं भी पंजाबी में सुना दूँ? कुछ हरज है क्या?"

"बिल्कुल नहीं। जिसमें मन करे।"

शबनम ने कापी के बिना ही सुनानी आरम्भ कर दी।

क्यों चुंजा मार तू घायल होवें, ए पिंजड़ा तोड़ न सकेंगा।
पक्का बहुत बनाया ज़ालम ने, सीख इक वी मोड़ न सकेंगा॥

ओ भोलिया पंछिया न घबरा, तैनु खान पीन नूं मिलदा ए।
खंड बादाम ते चूरमे कुट कुट के, कुछ करन बिना सब जुलदा ए॥

ऐथे डर नईयों बिल्ली बाजां दा, तेरी जान सुखली रहन्दी ए।
फेर उड्डन दी लोड़ की तैनूं, की मुसीबत हुन पई पैन्दी ए॥

ऐथे मौजां खूब बहारां ने, टोटा रत्ती इक भर दा नईयों।
दूध मिलदा रोज मलाई वाला, कुत्ते बिल्लीदा हुन डर नईयों॥

पर मन मेरा नहीं मनदा ए, घड़ी इक वी ऐथे रैवन नूं।
ए कमाई हरान दी सारी ए, जी कम्बदा एमदे खावन नूं॥

उड्डजा बैठा हरा कालियां ते, डाल डाल दी मौज उड़ावां मैं।
पीले लाल गुलाबी फुल्लां दी, इक सोनी सेज सजावां मैं॥

सोना श्रो सी घौंसला कक्खा दा, जिदी छत्त असमान दे नाल हैसी।
उड चद ते तारिया वाग फिरदा, पिंजड़े दा न ए जजाल है सी॥
भावें कुत्ते बिल्लिया वाजा तों, डर रवे हमेशा जिन्दरी दा।
रव पर दित्ते उड़ जावन नू, फिर लेखा की इस पिंजड़ी दा।
जी कैंदा ए तोर मरोड़ सुट्टा, एस सोने दे सोनिया जाला नू।
जे तोड़देया जान हलाक होवे, छुट जावा सौ ववाला तू॥

शबनम की कविता ने एक गम्भीर अवस्था उत्पन्न कर दी। यह लिखने वाले के दिल की दु खित अवस्था को प्रकट करती थी। शान्ति ने इस शोक मय तथा दु.ख की अवस्था को मनों से निकालने के लिए सदानन्द से पूछा, "अब आपका क्या प्रोग्राम है?"

"आज मैं लिखने के कार्य पर नहीं बैठा। इस कारण कुछ काम नहीं है। रात के आठ बजे खाना-खाने के समय माँ के पास जा पहुँचना चाहिए, नहीं तो वे चिन्ता करने लगती हैं।"

"अभी तो साढे पाँच बजे हैं। चलिये जरा घूम आयें।"

प्रोफेसर साहब ने कहा, "मैंने आज एक लेख लिखना है। मैं यहीं रहूँगा।"

शान्ति अपने कमरे में गई और कपड़े पहन तैयार होकर आ गई। सदानन्द ने देखा कि आज उसने कपड़े काफी बढिया पहने हैं। मुख पर पाउडर का हल्का छींटा और होठों पर हल्की-सी सुर्खी लगाई हुई थी। सदानन्द इसका अर्थ नहीं समझा। उसने पूछा, "तैयार हैं, तो चलें?"

दोनों कोठी से निकल मजग रोड पर से होते हुए, लौरेंस गार्डन को चल पड़े। शान्ति ने अपनी सजधज का कारण बयान करने के लिए कह दिया,

"आज आप के साथ सैर करने चली तो विचार आया कि स्कूल की अध्यापिकाओं जैसी पोशाक उतार दूँ।"

"मेरे साथ सैर करने जाने के लिए यह चटकदार कपड़े पहनने क्यों आवश्यक हो गए हैं?"

"आपको नगर में बहुत से लोग जानते हैं। इस लिए आपके साथ जाने वाली भी कोई भले घर की प्रतीत होनी चाहिए। साथ ही मुझको भय लग गया है कि एक हैं, कहीं वे न मिल जाएँ।"

"कौन एक?" सदानन्द ने मुस्करा कर पूछा।

"तो आप इतना भी नहीं जानते कि वे कौन होते हैं, जिनको एक स्त्री 'वे' 'एक' इत्यादि शब्दों से सम्बोधन करती है।"

"अच्छा तो यह बात है? तो मुझको साथ क्यों ले चली हो? मैं तो दोनों में व्यर्थ की बाधा बन जाऊँगा। और यदि मेरा उनसे परिचय कराना था, तो पहले बताती, जिससे मैं भी गोटा किनारी लगे कपड़े पहन कर आता।"

"उनका आपसे परिचय कराने के लिए ही तो आपको साथ लाई हूँ। आपको बढ़िया कपड़ों की आवश्यकता नहीं। भगवान् ने आपको रूप-रंग ही ऐसा दिया है कि बिना सुन्दर कपड़ों के ही भले प्रतीत होते हैं।"

"खैर छोड़ो कपड़ों की बात। विवाह तो तुम्हारा उनके साथ होना है न। सजने की आवश्यकता भी तुमको है। मुझको उनसे मिलकर बहुत प्रसन्नता होगी। आपके 'वे' कौन हैं? क्या करते हैं?"

"एक हैं। कविता करते हैं। कहानियों की किताबें लिखते हैं। शहर में रहते हैं। सुना था आज इधर घूमने आने वाले हैं।"

"ओह!" सदानन्द को पूर्ण विश्वास हो गया कि शान्ति उसकी ओर ही इशारा कर रही है। इस पर भी वह प्रकट नहीं करना चाहता था कि वह उसके कहने का अर्थ समझ गया है। इस कारण उसने कहा, "क्या नाम है? मैं समझता हूँ कि मेरा तो उनका परिचय प्राप्त करना मेरे लिए लाभ की बात होगी।"

"नाम ? देखिये मैं हूँ तो ईसाई, परन्तु मुझको हिन्दू-स्त्रियों द्वारा प्रेमी के नाम न लेने की रिवाज बहुत पसन्द है।"

सदानन्द को विश्वास हो गया कि आज वह उसके विवाह की चर्चा अवश्य करेगी। यूँ तो वह इस विषय पर कई बार मन में मनन कर चुका था, परन्तु वह समझता था कि एक मैट्रिक फेल, किताबत का काम कर जीविकोपार्जन करने वाले, कम शिक्षितों के लिए चिट्ठे और कहानियाँ लिखने वाले से, एक प्रोफेसर की बहन, बी० ए०, बी० टी० तक पढ़ी, डेढ़ सौ रुपया महीना कमाने वाली, सभ्य-सुशील विवाह पसन्द नहीं करेगी। फिर वह कट्टर हिन्दू और यह ईसाई। इस सम्बन्ध को वह असम्भव समझ मन से निकालने का यत्न करता रहता था।

आज एकाएक इस प्रकार के विषय को सामने आता देख वह सतर्क हो बात करने लगा। उसने बात बदल देने के लिए कहा, "तो आपके हिन्दुओं के सस्कार अभी तक आपके मन पर मौजूद हैं।"

"हाँ सस्कार बहुत कठिनाई से मिटते हैं और फिर 'वे' भी हिन्दू हैं। मैं समझती हूँ कि अब सस्कारों को मिटाने की आवश्यकता नहीं है।"

"परन्तु शान्ति देवी ! यह कैसे हो गया ? आप तो हिन्दू समाज को एक गली सड़ी हजारों वर्ष पुरानी लकड़ी मात्र ही मानती हैं। तो यह सम्बन्ध कैसे बना ? क्या वे बहुत धनी व्यक्ति हैं ? अथवा किसी बड़ी पदवी पर नियुक्त हैं ?"

"हमारे ईसाईयों में यह बात मानी जाती है कि विवाह भगवान् के घर निश्चय होते हैं और आप कहते थे कि हिन्दुओं में भी ऐसा ही माना जाता है। तो धन-पदवी को देखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। भगवान् ने देखी होगी और ठीक समझी होगी। तभी तो इस विवाह की प्रेरणा उसकी ओर से हो रही है।"

"फिर भी वे हैं क्या ?"

"बताया तो है कविता करते हैं, किताबें लिखते हैं।"

"कहाँ रहते हैं वे ?"

"शाहआलमी दरवाजे के अन्दर कूचा चाबेयों में।"

"तो विवाह के पश्चात् वे कोई कोठी शहर के बाहर लेने वाले हैं क्या? वह तो बड़ी ही गन्दी जगह है।"

"यह मैंने उनसे नहीं पूछा।"

"तो वे विवाह के उपरान्त ईसाई हो जाएँगे क्या?"

"इस बात के जानने की भी आवश्यकता नहीं समझी।"

"तो उनसे विवाह की बात पक्की हो चुकी है क्या?"

"आज होने वाली है। मैं चाहती थी कि आपके सामने बात हो जाए और आप मेरी सिफारिश करें।"

सदानन्द ने विचार कर कहा, "आपकी सिफारिश करने में मुझको बड़ी प्रसन्नता होगी, परन्तु मैं आपके विषय में बहुत कम जानता हूँ। आप कहाँ की रहने वाली हैं? आप ईसाई कैसे हुईं और आपके विचार ईसाई धर्म के विषय में तथा हिन्दू समाज के विषय कैसे हैं?"

"तो आपको यह सब पता नहीं? मैं समझती थी कि आप जरूर इधर-उधर से हमारे विषय में जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे।"

"हाँ! कुछ जानकारी तो प्राप्त कर चुका हूँ पर वह इधर-उधर से नहीं। प्रत्यक्ष निरीक्षण से।"

"भला यह बताइये तो कि आप मेरे विषय में कितना कुछ जान चुके हैं, जिससे शेष मैं बता दूँ। इससे आप मेरे विषय में बात भली-भाँति कर सकेंगे।"

"देखिए मुझको इतना पता लग गया है कि शान्ति देवी प्रोफेसर दुर्गादास की बहन हैं। बी० ए० बी० टी० तक पढ़ी हैं। नॉर्मल गर्ल्स क्रिश्चियन कॉलेज में अध्यापन-कार्य करती हैं और डेढ़ सौ रुपया महीना वेतन पाती हैं। पाँच फुट और लगभग चार इन्च लम्बी, चपल, चुस्त और अच्छी ....।

"बस-बस रहने दीजिए।" शान्ति ने बात बीच में ही काटकर कहा, "यह सब व्यर्थ की बातें आप जान गए हैं। इनसे तो आप मेरे विषय

में कुछ भी नहीं बता सकेंगे। सुनिए मैं आपको बताती हूँ।

"हम जालन्धर के रहने वाले हैं। मेरे पिता, ताऊ और बाबा, सब का सयुक्त परिवार था। जब भैया उत्पन्न हुए तो हमारे बाबा का देहान्त हो गया। जब मैं उत्पन्न हुई तो हमारे पिता का स्वर्गवास हो गया। विधवा माँ और हम दो बालक अपने ताऊ जी की कृपा पर पलने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि पिताजी के देहान्त के समय हमारे ताऊ ने, ठीक अथवा गलत, परिवार की सम्पत्ति मे से हमारा भाग पृथक् कर दिया और हमारे निर्वाह के लिए उसमे से व्यय होने लगा।

"जब भैया छठी श्रेणी मे पढते थे तो माताजी का देहान्त हो गया। इसके पश्चात् हमको घटिया खाना और उतरे हुए कपड़े मिलने लगे। इस पर ज्यों-त्यों कर निर्वाह चलता जाता था। भैया अपनी श्रेणी मे सदा प्रथम आते थे। इस कारण उनकी फीस मुआफ थी। कुछ वजीफा भी मिलने लगा था। परन्तु मै, जो चौथी श्रेणी मे पढती थी, फीस तथा पुस्तकों के लिए पैसे माँगती रहती थी।

एक दिन ताऊ जी ने भैया को बुलाकर कहा कि वे हमारा खर्चा अब नहीं दे सकते। हमारे पिता के भाग मे जितना रुपया था, वह समाप्त हो चुका है। इस कारण भैया को पढाई बन्द कर कहीं किसी दुकान पर नौकरी कर लेनी चाहिए।

"भैया ने स्कूल के हैड-मास्टर से नाम काटने के लिए कहा तो उसने इसका कारण पूछा। भैया ने पूर्ण परिस्थिति बता दी। हैड-मास्टर विलियम पीटर एक क्रिश्चियन पादडी था। उसने भैया को स्कूल न छोडने की सम्मति दी और हम दोनों का ईसाई यतीमखाने मे रहने का प्रबन्ध कर दिया। हम ताऊ जी का घर छोड वहाँ रहने लगे। भैया पढाई मे बहुत अच्छे थे, परीक्षाओं मे सदैव प्रथम रहा करते थे, इस कारण स्कूल और यतीमखाने मे हम दोनों को बहुत पसन्द किया जाता था।

"मैट्रिक मे भैया वजीफा ले गए और रैवरेंड पीटर ने हमारे पढने

का प्रबन्ध लाहौर फोरमेन क्रिश्चियन कालेज में कर दिया। हमको तब ही उन्होंने ईसाई धर्म की दीक्षा दी और भैया दुर्गादास पीटर और मैं शान्ति पीटर हो गई।

"जब हम लाहौर आये तो मैं नौवीं कक्षा में पढ़ती थी। हम रत्न-चन्द रोड वाले मिशन होम में रहते थे। वहाँ हमारा वास्ता फादर रुबन्ज से पड़ा।

"भैया ने एम० ए० पास किया तो उनके ही कॉलेज में नौकरी मिल गई और वे प्रोफेसर हो गए। मैंने बी० टी० किया तो अपने स्कूल में अध्यापिका बन गई। भैया ने मिशन हौस में रहना छोड़, इस कोठी के आधे हिस्से में रहना आरम्भ कर दिया।

"मेरे हिन्दुओं के प्रति विचार कुछ तो अपने ताऊ जी के कटु व्यवहार से और कुछ मिस्टर पीटर व फादर रुबन्ज के सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से बने हैं। इसके अतिरिक्त फादर रुबन्ज के साप्ताहिक व्याख्यानों ने मेरे मन में विष भर दी। परन्तु शबनम के मुकद्दमे में फादर रुबन्ज का असत्य भाषण और फिर उनका उस असत्य भाषण का कारण बताना, मेरी आँखें खोलने वाला सिद्ध हुआ है।

"तदनन्तर आपसे कई विषयों पर विचार-विनिमय करने से मेरी आँखों से रंगीन चश्मा उतर गया है।

"अब मैं ईसाई नहीं रही। यद्यपि मैं हिन्दू नहीं बनी तो भी मैं हिन्दुओं से अब घृणा भी नहीं करती। मैं बे-मजहब भी नहीं हूँ। परमात्मा, आत्मा और अच्छे कर्मों के अच्छे फल पर विश्वास रखती हूँ। यदि कोई मुझसे पूछे कि मैं किस धर्म को मानती हूँ तो मुझको जो कुछ समझ आता है, उसके अनुसार मैं यही कह सकती हूँ कि मैं मानव-धर्म को मानती हूँ।

"बताइये यह परिचय पर्याप्त है या नहीं? इससे आप मेरी प्रभावयुक्त सिफारिश कर सकेंगे या नहीं?"

इस समय दोनों लॉरेंस गार्डन में टहल-टहलकर बातचीत कर

रहे थे। सदानन्द ने इस प्रश्न का उत्तर दिया, "परिचय देने के लिए और सिफारिश करने के लिए पर्याप्त मसाला मिल गया है। पर वे महाशय तो कहीं दिखाई नहीं देते। उनका कोई भाई-बन्धु भी हैं या वे अकेले ही हैं?"

"वे एक बड़े परिवार वाले हैं। उनकी माँ भी हैं। एक बड़े भाई हैं और पाँच छोटे भाई हैं। तीन बहनें भी हैं। दो का विवाह हो चुका है, तीसरी के विषय में विचार किया जा रहा है।"

"तब तो परिवार वालों से भी बातचीत करनी पड़ेगी। विशेष रूप में उनकी माँ तथा बड़े भाई से।"

"माँ बेचारी तो गऊ समान हैं। उनकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। चिन्ता है तो उनके बड़े भाई की। सुना है कि वे किसी बड़े वकील के मुन्शी हैं। अवश्य ही वे बड़े चतुर और लोभी होंगे। देखिए आप उनसे मिल लीजिएगा। वे अपने छोटे भाई को कहेंगे तो बात बन जाएगी।"

"यह बहुत टेढी खीर है। इस पर भी यत्न करूँगा। अब तो साढे सात बज रहे हैं और आठ बजे माँ के रजिस्टर में हाजिरी लगवानी है। इधर आपके वे, जिनका आपने नाम नहीं लेना, आए नहीं। बताइये अब क्या किया जाए।"

"न जाने क्या बात है कि वे आए नहीं। अथवा यह भी हो सकता है कि वे आए हों और छिपकर हमारी बातें सुन रहे हों। कुछ भी हो। अब तो चलना चाहिए। कहीं आपकी माँ आपके कान खींचने लगीं और यह पाप मेरे सिर लगे। चलिए चलें।"

रमा का प्रस्ताव प्रभा को बताए एक सप्ताह से अधिक हो गया था। लक्ष्मी और सदानन्द इस सूचना का उस पर प्रभाव देख रहे थे। यद्यपि उसने इस प्रस्ताव को मुख से स्वीकार नहीं किया था, तो भी

उसके रहन-सहन और जीवन में रुचि लेने से एक परिणाम निकलता था कि वह इस विवाह के हो जाने से प्रसन्न होगी। जैसे एक अन्य युवक से विवाह के प्रस्ताव पर उसने खाना-पीना छोड़ दिया था, वैसी इस बार कोई बात नहीं हुई थी।

यह परिस्थिति रमा को लिखी गई और सुन्दर तथा रमा एक दिन लाहौर आए और प्रभा को साथ ले गए। सुन्दर का विचार था कि उसको अपने पास कुछ दिन रख यदि उसके भावों को अनुकूल समझेंगे तो फिर प्रभा की माँ को लिख देंगे और वे आकर विवाह कर जाएँगी।

प्रभा और रमा अब फिर इकट्ठी सोने लगी थीं और उनको परस्पर अपने विषय में बातें करने का अवसर मिलने लगा था। पहले कुछ दिन तो प्रभा ने रमा के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया। फिर धीरे-धीरे वह अपने मन के संशयों का वर्णन करने लगी। प्रभा का प्रश्न था, "क्या तुम आम या खरबूजे की भाँति पति भी मुझसे बाँट सकोगी?"

"क्यों नहीं। इसमें क्या कठिनाई है?"

"संसार की अन्य स्त्रियाँ तो अत्यन्त ईर्ष्या करती हैं। वह हमारी गली में सामने की ओर रानी रहती थी न? उसका पति किसी वेश्या के पास जाता था तो घर में कितना झगड़ा होता था।"

"वह बात दूसरी थी। वेश्या तो रानी के घर वाले का सब धन लूट लेती थी। रानी के लिए उसके पास एक पैसा भी नहीं बचता था।"

"परन्तु राजो और शानो दोनों सौतनें क्यों झगड़ती थीं?"

"इसलिए कि दोनों मूर्ख थीं। जब उनका पति घर पर दो साड़ियाँ लेकर आता था तो दोनों यह यत्न करती थीं कि उसे अधिक दाम की मिले और दूसरे को कम दाम की। परिणाम यह होता था कि दोनों लड़ती रहती थीं। उनके पति ने दोनों को पृथक्-पृथक् मकान ले दिए थे, जिससे एक यह न जान पाए कि दूसरे को क्या मिल रहा है।"

"पर एक बात है," प्रभा ने कहा, "यदि हम दोनों के माँ की भाँति बच्चे होने लगे तो फिर हमारा माँ के घर में भी झगड़ा हो जाएगा।"

"प्रभा ! यह नहीं। अव्वल तो हमारे बच्चे उतने नहीं होंगे। साथ ही माँ के घर की हालत इस कारण खराब नहीं थी कि बच्चे अधिक थे, बल्कि इस कारण कि पिता जी शराब पीते थे और वेश्या-गमन करते थे।"

"कुछ भी हो। हम दोनों का खर्चा तो तुम्हारे पति को देना पड़ेगा।"

"परमात्मा तुम्हारे लिए भी देगा।"

ये सब युक्तियाँ प्रभा को सन्तोष दे सकीं या नहीं, परन्तु वह विवाह के लिए तैयार नहीं हुई। सुन्दर ने भी बहुत समझाया परन्तु वह न मानी।

कुछ दिन उपरान्त लक्ष्मी आई और प्रभा को समझाने लगी। प्रभा ने कहा, "मैं विवाह नहीं करूँगी। हाँ, यदि सुन्दर भैया मुझको बहन बनाकर अपने यहाँ रहने दें, तो मैं समझती हूँ कि मेरी समस्या सुलझ जाएगी। मुझको रमा से मोह है, अन्य किसी से नहीं।"

सदानन्द भी आया और प्रभा के विचारों को सुन चकित रह गया। सुन्दर से बातचीत हुई तो उसने स्पष्ट कह दिया, "प्रभा यदि इससे सन्तुष्ट है, तो मुझे किसी प्रकार की भी आपत्ति नहीं।"

इसमें विचारणीय बात यह थी कि प्रभा का वहाँ बिना विवाह के रहना बदनामी का कारण बन सकता था। सदानन्द का विचार था कि जब वे विवाह तक करने को तैयार हैं तो फिर इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि किसी प्रकार सुन्दर और प्रभा में अनुचित सम्बन्ध भी बन जाता है, तो उनके दृष्टिकोण से आपत्तिजनक नहीं होना चाहिए। प्रभा यदि सुन्दर की पत्नी बन जाती है, तो क्या हुआ? सन्देह यदि करना है तो सुन्दर के विचारों की दृढ़ता के विषय में करना चाहिए। विवाह-संस्कार होने अथवा न होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। शेष जहाँ तक खर्चे का प्रश्न है, वे एक नियमित रकम प्रभा के लिए प्रतिमास भेजते रहेंगे।

सदानन्द जब लाहौर पहुँचा और उसने परिस्थिति परमानन्द को बताई तो परमानन्द ने कहा, "कँवरसेन की बात दूसरी थी। वे प्रौढ़ा-वस्था के पुरुष थे। इसके साथ ही कमला के विवाह की बात अभी विचार तक मे नहीं आई थी। प्रभा और सुन्दर मे विवाह की बात चल चुकी है। ऐसी अवस्था मे उनका सयम से रहना जहाँ कठिन है, वहाँ बाहर वालों की दृष्टि मे असत्य भी होगा। हमारे छोटे भाई हैं। उनका विवाह भी हमने करना है। यदि एक बार बदनामी हुई तो कठिनाई पड़ जावेगी।"

"भैया!" सदानन्द ने कहा, "मनुष्य और पशु मे यही अन्तर है कि एक संस्कारों के अधीन जीवन-भर कार्य करता रहता है। मनुष्य मे भी सस्कार उसी भाँति रहते है, जैसे पशुओं मे, यद्यपि मनुष्य के सस्कार और पशुओं के सस्कारों मे अन्तर रहता है। इस अन्तर के अतिरिक्त मनुष्य मे बुद्धि होती है, जिसके बल पर वह अपने को अपने वातावरण के अनुकूल बनाता रहता है। जहाँ वातावरण की माँग सस्कारों का विरोध करे, वहाँ सस्कारों का त्याग करना ही चाहिए। यही मानवता है।

"प्रभा की परिस्थिति विलक्षण है। हमारी समाज मे नियम और प्रथा इस विलक्षण परिस्थिति के लिए नहीं बने। अतएव हमारे सस्कार, जो उन नियमों और प्रथाओं के कारण बने हैं, इस विलक्षण समस्या का सुझाव उपस्थित नहीं करते। इस कारण हमे प्रभा के लिए नवीन मार्ग बनाना ही पड़ेगा।"

"तुम्हारी पूर्ण विवेचना के पश्चात् भी मेरा प्रश्न तो ज्यूँ-का-त्यूँ ही रहा। बदनामी का विरोध कैसे कर सकोगे?"

"देखो भैया! तुमने एक दिन के नोटिस पर विवाह कर लिया। हमारा किसी ने क्या कर लिया है? लोग कहते थे कि चमेली मेरी प्रेमिका है, परन्तु जब हमने इतना तो अपना व्यवहार ठीक रखा तो सब चुप कर गए। इसी प्रकार प्रभा के विवाह के समय कुछ झगड़ा नहीं

हुआ। सुन्दर की माँ ने तो तूफान ही खड़ा कर दिया था। हमने ब्राह्मण होते हुए एक क्षत्रिय से उसका विवाह कर दिया। किसी ने क्या कर लिया है ?

"अब मैं एक बात और बताता हूँ। मैं अपना विवाह एक ईसाई लड़की से करने का विचार रखता हूँ। माँ ने तो स्वीकृति दे दी है। अब तुमने भी स्वीकृति दी तो विवाह हो जायगा। मैं जानता हूँ कि लोग एक-दो दिन हल्ला-गुल्ला करेंगे, परन्तु यदि मेरी पत्नी में साहस हुआ कि वह लोगों की ओर निर्भीकता से देख सके तो कुछ नहीं होगा। कुछ काल उपरान्त वही लोग, जो पहले मेरी निन्दा करेंगे, हमारी प्रशंसा करने लगेंगे।"

लक्ष्मी के घर में सदानन्द की ही चलती थी। वह अपनी बात को सदैव मानवता के तराजू पर तोलकर करता था। परिणाम यह होता था कि मनुष्य की भाँति युक्ति करने वाले के लिए, उसको गलत कहना कठिन हो जाता था।

"तो तुमने शान्ति से विवाह का निश्चय कर लिया है ?"

"यदि आपको कोई आपत्ति नहीं हुई तो।"

"मैं तो केवल एक बात कहना चाहता हूँ। वह पढ़ी-लिखी लड़की है। स्कूल में अध्यापिका है। हमारे घर में उसकी निभ सकेगी क्या ?"

"भैया! मैंने उससे कुछ भी छिपाकर नहीं रखा। वह कई बार माताजी से आकर मिल चुकी है और हमारे घर की पूर्ण व्यवस्था और अवस्था से उसका परिचय है। इस पर भी वह विवाह के लिए तैयार है। एक बात और। विवाह का प्रस्ताव उसकी ओर से ही आया है।"

"यह सब ठीक है। वासनाधीन प्राय. युवक-युवतियाँ वह बात कर बैठते हैं, जिस पर उनको पीछे पश्चात्ताप करना पड़ता है।"

"तो एक बात करो। तुम उससे स्वयं मेरी अनुपस्थिति में बात-चीत कर लो। मैंने प्रोफेसर साहब से कहा था। उन्होंने तो यह कह-कर टाल दिया था कि यह शान्ति के अपने विचार करने की बात है।"

"अच्छी बात है। मैं उसको किसी दिन चाय पर बुलाऊँगा। यदि उसने आना स्वीकार कर लिया तो बात हो जायगी।"

इस दिन की वार्तालाप का परिणाम यह निकला कि प्रभा को लक्ष्मी ने पच्चीस रुपया महीना भेजना आरम्भ कर दिया। सुन्दर ने तो कहला भेजा था कि इसकी आवश्यकता नहीं। इस पर भी लक्ष्मी भेजती रही।

प्रभा का सप्ताह में एक-आध पत्र आता था और वहाँ का समाचार सदानन्द को पता चलता रहता था। लगभग एक मास के उपरान्त प्रभा का पत्र आया कि वह मिशनरियों के खोले हुए सिलाई के स्कूल में भर्ती हो गई है। उसने लिखा, "सुन्दर भैया की कृपा से मेरा स्वास्थ्य ठीक हो रहा है और अब मैं सिलाई का काम सीख रही हूँ। मेरा विचार है कि दो वर्ष में आप तथा सुन्दर भैया पर बोझा नहीं रहूँगी।"

एक दिन शान्ति सदानन्द को इनामी प्रेस के बाहर ठीक एक बजे मिलने गई। सदानन्द ने विस्मय से पूछा, "क्या बात है शान्ति देवी? मैं तो आज स्वयं ही आपसे मिलने के लिए आने वाला था।"

"आप आते सायं पाँच बजे और मुझे आपकी आवश्यकता थी अभी। इस कारण स्कूल से एक घण्टा की छुट्टी लेकर यहाँ आई हूँ। यह देखिए! ताँगा खड़ा कर रखा है, जिससे घण्टे के अन्दर ही वापस पहुँच सकूँ।"

"ऐसी तो क्या जरूरत थी?"

"जरूरत है आपकी सम्मति की। यह देखिए।" उसने एक पत्र अपनी जेब में से निकालकर दिखाया। पत्र परमानन्द का था। लिखा था, 'मिस शान्ति पांडर जी,

नमस्ते। मुझको अत्यन्त प्रसन्नता होगी, यदि आप आज सायं चार

और इनका वकील नहीं आया। यह मुक़द्दमे की तारीख चाहती हैं।"

"कौन है इनका वकील ? सदानन्द ?" कॅवरसेन ने पूछा।

"जी नहीं।" शान्ति ने हाथ जोड नमस्ते कर कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "मैंने अपना वकालतनामा उनकी माताजी को दे रखा है।"

"वे तो आई नहीं।"

"उनको सूचना नहीं मिली। इस कारण यदि मुकद्दमे की तारीख दे दी जाए तो कैसा रहे ?"

सरोजिनी ने कहा, "तब तक तो चाय ठडी हो जाएगी ?"

"इसका खर्चा मुझ पर डाल दिया जाए।"

"यह मामला बहुत गम्भीर है। यह अदालत का स्पेशल सेशन है। मेरा विचार है कि आप पर जिरह आरम्भ कर दी जाए। यदि आवश्यकता समझी गई तो दूसरे पक्ष के वकील को पुन. जिरह करने की स्वीकृति मिल जाएगी।"

"जब अदालत ने हुक्म ही दे दिया है तो मजबूरी है।"

कॅवरसेन हँस पडा और परमानन्द चाय बनाने लगा। जब सब एक-एक प्याला चाय पी चुके तो कॅवरसेन ने बात आरम्भ कर दी। उसने पूछा, "शान्ति देवी ! सदानन्द की आर्थिक दशा तो आप जानती ही हैं। वह एक पढी-लिखी और समाज में घूमने-फिरने वाली बीवी का खर्चा सहन कर सकेगा अथवा नहीं, कहना कठिन है। वर्तमान स्थिति यह है कि वह चार-पाँच रुपये रोज ही पैदा कर सकता है। विवाह के पश्चात् आप नौकरी कर सकेंगी अथवा नहीं, विचारणीय विषय है। इसके अतिरिक्त एक हिन्दू से विवाह आपके स्कूल वालों को कैसा लगेगा ! शायद इसके पश्चात् आप वहाँ काम न कर सकें।

"यह है आपकी आर्थिक स्थिति, विवाह के पश्चात्। अन्य किसी बात से हमारा सम्बन्ध नहीं। आप ईसाई हैं अथवा हिन्दू , इन बातों को आप जानें अथवा आपका पति। परन्तु परिवार की आर्थिक स्थिति और अपनी स्थिति को भली-भाँति समझ लें। हम अपनी अनुमति इस

विवाह के लिए दे सकते हैं।"

शान्ति इस समय तक पूर्णरूप से गम्भीर हो चुकी थी। उसने वकील साहब की बात सुनी और फिर धीरे-धीरे नपी-तुली भाषा में अपने मन की बात कह दी, "मैं इस परिस्थिति से भली भाँति परिचित हूँ। मुझको यह विदित है कि मेरी नौकरी उस स्कूल में रह सकनी प्रायः असम्भव है। इस पर भी मुझको इस उक्ति पर विश्वास है कि 'विवाह भगवान् के घर में निश्चय होते हैं।' "

"यह तो हम भी मानते हैं, परन्तु भगवान् ने विवाह निश्चय करने के लिए हमें बुद्धि भी दी है। यदि हम उस बुद्धि का प्रयोग न करें तो भगवान् का निश्चय हम मानते हैं, हम कैसे कह सकते हैं?"

"भगवान् मस्तिष्क से बातें नहीं कहता। वह मनुष्य के हृदय में वास करता है और वहाँ से अपने आदेश देता है। देखिए जी! मेरी धारणा इस प्रकार है कि यह विवाह तो हो ही जाना चाहिए। रहा निर्वाह का प्रश्न। यह तो होता रहेगा। हम दो हाथ-पाँव और मस्तिष्क रखते हैं। हम अपना मार्ग अवश्य बना लेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

"वर्तमान तो क्या, क्या कोई किसी भी अवस्था में गारंटी कर सकता है? किसी भी परिस्थिति को कोई स्थायी कह सकता है? मानव इस दुस्तर सागर की तरंगों पर तृण समान है। वह यत्न अवश्य करता है और उसके लिए हम कोई कसर उठा नहीं रखेंगे। परन्तु परिणाम तो परमात्मा के हाथ में ही है।"

इसके पश्चात् कौन युक्ति दी जा सकती थी? सब चुप थे और चाय मिठाई इत्यादि खा-पी रहे थे। आखिर फैंचरमैन ने कहा, "शान्ति देवी! तुम तो बड़े-बड़े वकीलों के भी कान कतर सकती हो। तुमको वकील की क्या जरूरत थी? आज का फैसला तुम्हारे हक में हुआ है।"

"क्षमा करना भाभी!" परमानन्द ने मुस्कुराते हुए कहा, "मुझको सन्देह था कि सदानन्द ने तुम्हें पूर्ण परिस्थिति से अवगत नहीं किया। इस कारण आज तुमको यहाँ आने का कष्ट दिया है। अब मैं समझा हूँ

कि तुम हमारी गरीबी को जानती हो और इस पर भी यह निर्णय हमारे धन्यवाद का पात्र है।"

शान्ति देवी और सदानन्द कोर्ट मे आवश्यक पत्रको पर हस्ताक्षर कर के निकले तो शान्ति ने कहा, "मेरी इच्छा है कि दस मिनट के लिए हम गिरजाघर चले चले।"

सदानन्द को इसमे कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं हुई। दोनो टैक्सी मे सवार हो मिशन हाऊस के गिरजाघर मे जा पहुँचे। वहाँ फादर स्वन्ज आल्टर के सम्मुख बत्तियाँ जलाकर, उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। प्रोफेसर दुर्गादास और शबनम भी वहाँ उपस्थित थे। सदानन्द शान्ति देवी को लेकर आल्टर के सामने जा खडा हुआ। फादर स्वन्ज ने प्रार्थना पढी और तब तक दोनो घुटनो के बल खड़े रहे।

वहाँ की कार्यवाही समाप्त कर, दोनो कूचा पातेयों जा पहुँचे। वहाँ लक्ष्मी ने एक बडा-सा मकान भाड़े पर ले लिया था। परमानन्द की ओर से सब सम्बन्धियो और मित्रो को निमन्त्रण था। मकान के आँगन मे पण्डित वेदी बनाकर, विवाह पढने के लिए तैयार बैठा था।

इतने लोगो को एकत्रित देख शान्ति ने पूछा, "यहाँ क्या हो रहा है?"

"यहाँ इन लोगो के सामने हम पति-पत्नी बनने का वचन देगे।"

"इसकी अब क्या आवश्यकता है? दो बार तो हम प्रतिज्ञा कर चुके है।"

"तो एक बार और हो जाए। क्या हानि है?"

"यह क्या है?" शान्ति ने वेदी की ओर सकेत कर पूछा।

"यह पूजा का स्थान है।"

"यहाँ क्या होगा?"

"भगवान् से प्रार्थना होगी कि वे हमारे दाम्पत्य जीवन को दीर्घ और सुखमय करें।"

"वह भी हम कर आए हैं।"

"तो यहाँ भी हो जाए। मेरे भाई-बन्धु चाहते हैं।"

"मुझको अब इसमें सार प्रतीत नहीं होता।"

"तो न सही।"

"तो यहाँ क्या होगा?"

"प्रार्थना तो होगी ही। वे देखो, दो ऊँचे आसन बने हैं। एक मेरे लिए है और एक तुम्हारे लिए है। मैं अपने आसन पर बैठूँगा और दूसरे पर तुम्हें बैठना होगा।"

"मैं तो थक गई हूँ।"

"तो चलो आराम कर लो।"

"तब तक वे क्या करेंगे?"

"देखती जाओ। कोई-न-कोई मार्ग निकल ही आएगा।"

"तो निकाल लीजिए। मैं तो अन्दर जा रही हूँ।"

सदानन्द शान्ति को एक कमरे में, जो उसके लिए सजाया गया था, ले गया। वहाँ उसको बैठा, उसने अपने ट्रंक में से शान्ति का एक बड़ा-सा फोटोग्राफ निकाला।

शान्ति ने आश्चर्य में पड़ पूछा, "इसका आप क्या कर रहे हैं?"

"देखती जाओ। मैं इसको तुम्हारा स्थानापन्न बना रहा हूँ।"

शान्ति विस्मय से देखने लगी। सदानन्द वेदी के समीप जा, शान्ति के चित्र को एक आसन पर सीधा टेक, आप दूसरे आसन पर बैठ गया और बोला, "पंडित जी! आरम्भ करिए।"

पंडित मुख देखता रह गया। कंवरसेन और सदानन्द हँसने लगे। पंडित ने कहा, "सदा भैया! ऐसा नहीं होगा।"

"क्यों?"

"यज्ञ में पति-पत्नी का सम्मिलित होना आवश्यक है।"

कि तुम हमारी गरीबी को जानती हो और इस पर भी यह निर्णय हमारे धन्यवाद का पात्र है ।"

शान्ति देवी और सदानन्द कोर्ट मे आवश्यक पत्रको पर हस्ताक्षर कर के निकले तो शान्ति ने कहा, "मेरी इच्छा है कि दस मिनट के लिए हम गिरजाघर चले चले ।"

सदानन्द को इसमे कोई आपत्तिजनक बात प्रतीत नहीं हुई । दोनो टैक्सी मे सवार हो मिशन हाऊस के गिरजाघर मे जा पहुँचे । वहाँ फादर रुबन्ज आल्टर के सम्मुख बत्तियाँ जलाकर, उनकी प्रतीक्षा कर रहा था । प्रोफेसर दुर्गादास और शबनम भी वहाँ उपस्थित थे । सदानन्द शान्ति देवी को लेकर आल्टर के सामने जा खडा हुआ । फादर रुबन्ज ने प्रार्थना पढी और तब तक दोनो घुटनो के बल खडे रहे ।

वहाँ की कार्यवाही समाप्त कर, दोनो कूचा बावेयाँ जा पहुँचे । वहाँ लक्ष्मी ने एक बडा-सा मकान भाड़े पर ले लिया था । परमानन्द की ओर से सब सम्बन्धियो और मित्रो को निमन्त्रण था । मकान के आँगन मे पण्डित वेदी बनाकर, विवाह पढने के लिए तैयार बैठा था ।

इतने लोगो को एकत्रित देख शान्ति ने पूछा, "यहाँ क्या हो रहा है ?"

"यहाँ इन लोगो के सामने हम पति-पत्नी बनने का वचन देगे ।"

"इसकी अब क्या आवश्यकता है ? दो बार तो हम प्रतिज्ञा कर चुके है ।"

"तो एक बार और हो जाए । क्या हानि है ?"

"यह क्या है ?" शान्ति ने वेदी की ओर सकेत कर पूछा ।

"यह पूजा का स्थान है ।"

"यहाँ क्या होगा ?"

"भगवान् से प्रार्थना होगी कि वे हमारे दाम्पत्य जीवन को दीर्घ और सुखमय करें।"

"यह भी हम कर आए हैं।"

"तो यहाँ भी हो जाए। मेरे भाई-बन्धु चाहते हैं।"

"मुझको अब इसमें सार प्रतीत नहीं होता।"

"तो न सही।"

"तो यहाँ क्या होगा?"

"प्रार्थना तो होगी ही। वे देखो, दो ऊँचे आसन बने हैं। एक मेरे लिए है और एक तुम्हारे लिए है। मैं अपने आसन पर बैठूँगा और दूसरे पर तुम्हें बैठना होगा।"

"मैं तो थक गई हूँ।"

"तो चलो आराम कर लो।"

"तब तक वे क्या करेंगे?"

"देखती जाओ। कोई-न-कोई मार्ग निकल ही आएगा।"

"तो निकाल लीजिए। मैं तो अन्दर जा रही हूँ।"

सदानन्द शान्ति को एक कमरे में, जो उसके लिए सजाया गया था, ले गया। वहाँ उसको बैठा, उसने अपने ट्रंक में से शान्ति का एक बड़ा-सा फोटोग्राफ निकाला।

शान्ति ने आश्चर्य में पड़ पूछा, "इसका आप क्या कर रहे हैं?"

"देखती जाओ। मैं इसको तुम्हारा स्थानापन्न बना रहा हूँ।"

शान्ति विस्मय में देखने लगी। सदानन्द वेदी के समीप जा, शान्ति के चित्र को एक आसन पर सीधा टेक, आप दूसरे आसन पर बैठ गया और बोला, "पंडित जी! आरम्भ करिए।"

पंडित चुप देखता रह गया। कैमरमैन और सदानन्द हँसने लगे। पंडित ने कहा, "छोटे भैया! ऐसा नहीं होगा।"

"क्यों?"

"यज्ञ में पति-पत्नी का सम्मिलित होना आवश्यक है।"

"परन्तु जब दोनों पक्ष मे से एक किसी अनिवार्य कारण से उपस्थित न हो सके तो उसकी मूर्ति प्रतिष्ठित कर ली जाती है।"

"हमारे यहाँ ऐसा नहीं होता।"

सदानन्द ने मुस्कुराते हुए पूछा, "हमारे यहाँ से मतलब ?"

"वैदिक-धर्म के मानने वालों का यज्ञ पत्नी के बिना सफल नहीं हो सकता।"

"भगवान् राम वैदिक धर्मावलम्बी थे अथवा नहीं ?"

"हाँ। वे तो आर्य थे।"

"उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया तो सीता जी की अनुपस्थिति में उनकी मूर्ति स्थापित कर ली थी।"

"बहुत विचित्र बात है सदा भैया !"

"पण्डित जी ! मैंने आपको प्रमाण दे दिया है। राजपूतों में वर के युद्ध में चले जाने पर उसकी तलवार यज्ञ में रखकर विवाह कर लिया जाता था।"

पण्डित अभी सोच ही रहा था कि क्या करे, कँवरसेन ने कहा, "पण्डित जी ! आरम्भ करिए। हिन्दुओं में प्रत्येक परिस्थिति मे कार्य चलाने के लिए उपाय बना लिए जाते हैं। यह समाज तो स्टीम-रोलर है। सब विघ्न-बाधाएँ इसके नीचे दबकर चूर-चूर हो जाती हैं।"

डित ने कार्यारम्भ कर दिया। वह 'ओ विश्वानि देव ।' इत्यादि मन्त्रों से स्वस्ति वाचन करने लगा। इस समय सब मुहल्ले के तथा घर के लोग उपस्थित थे। पहले तो इस विधि-विधान पर काना-फूसी होती रही, परन्तु सदानन्द दत्तचित्त हो अपने स्थान पर बैठा यज्ञ में भाग ले रहा था। उसे इस प्रकार देख अन्य लोग भी चुप कर गए और देखने लगे कि आगे क्या होता है।

जब अग्नि प्रदीप्त होने लगी तो सदानन्द को अपने पीछे सर-सर का-सा कुछ शब्द सुनाई पड़ा। पण्डित बोल रहा था, 'ओं भूर्भुवः स्व. ·· ·।" सदानन्द जलते कपूर को कुण्ड में डालने लगा था कि

उसके साथ के आसन पर बैठी तस्वीर एक ओर हट गई और शान्ति वहाँ आकर बैठ गई। पंडित मन्त्र बोलता-बोलता चुप कर गया और सदानन्द हँस पड़ा। पश्चात् एक कलुछी उसके हाथ में दे कर बोला, "जैसे मैं करूँ वैसा करती जाओ।"

यज्ञ समाप्त हुआ। पंडित जी ने आशीर्वाद दिया और कहा, "दिन भर का भूला हुआ सायंकाल भी यदि घर आ जाए, तो बधाई का पात्र मानना चाहिए।"

सब ओर से बधाइयाँ मिलने लगीं और मित्र-सम्बन्धी शान्ति की झोली में शकुन (फल-फूल, मिठाई, रुपये आदि) डालने लगे।

इसके पश्चात् जब पति-पत्नी एकान्त में मिले तो शान्ति ने यज्ञ की बात स्मरण कर कहा, "आपका समाज विचित्र है। आप तो तस्वीर से ही काम चला लेते हैं।"

"हाँ! जब लोग परमात्मा की तस्वीर रख, उसमें परमात्मा का अस्तित्व मान पूजा-पाठ कर लेते हैं, तो शान्ति देवी की असली तस्वीर से काम क्यों नहीं चल सकता था?"

शान्ति को गिरजाघर में हजरत यशु मसीह और वर्जिन की तस्वीर की बात स्मरण हो आई। उसके मन में संशय दूर हो गए।

इस पर भी सदानन्द ने कहा, "देखो शान्ति! समाज के सब लोग एक ही स्तर के बुद्धिशील नहीं होते। वे वास्तविक बात और आडम्बर में भेद नहीं कर सकते। उनके लिए रस्म-रिवाज मुख्य और सिद्धान्त गौण हो जाते हैं। परन्तु महापुरुष इन रस्मों के आवरण को जब धारण भी करते हैं, तो समाज के उस निम्न कोटि के सदस्यों के लिए ही, जिनको अपना मार्ग स्वयं बनाना नहीं आता।

"देखो! हमने मैजिस्ट्रेट के समक्ष वचन लिया था, परन्तु हमारे वचन की कीमत तब समझी गई, जब हमने उसके सामने हस्ताक्षर किये।

"गिरजाघर में हमने वचन लिया, परन्तु पादरी साहब ने फिर हमारे हस्ताक्षर करवाए।

"परन्तु जब दोनों पक्ष मे मे एक किसी अनिवार्य कारण से उपस्थित न हो सके तो उसकी मूर्ति प्रतिष्ठित कर ली जाती है।"

"हमारे यहाँ ऐसा नहीं होता।"

सदानन्द ने मुस्कुराते हुए पूछा, "हमारे यहाँ से मतलब ?"

"वैदिक-धर्म के मानने वालो का यज्ञ पत्नी के बिना सफल नहीं हो सकता।"

"भगवान् राम वैदिक धर्मावलम्बी थे अथवा नहीं ?"

"हाँ। वे तो आर्य थे।"

"उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया तो सीता जी की अनुपस्थिति में उनकी मूर्ति स्थापित कर ली थी।"

"बहुत विचित्र बात है सदा भैया !"

"पडित जी ! मैंने आपको प्रमाण दे दिया है। राजपूतों में वर के युद्ध में चले जाने पर उसकी तलवार यज्ञ में रखकर विवाह कर लिया जाता था।"

पडित अभी सोच ही रहा था कि क्या करे, कँवरसेन ने कहा, "पडित जी ! आरम्भ करिए। हिन्दुओं में प्रत्येक परिस्थिति मे कार्य चलाने के लिए उपाय बना लिए जाते हैं। यह समाज तो स्टीम-रोलर है। सब विघ्न-बाधाएँ इसके नीचे दबकर चूर-चूर हो जाती हैं।"

डित ने कार्यारम्भ कर दिया। वह 'ओं विश्वानि देव ।' इत्यादि मन्त्रों से स्वस्ति वाचन करने लगा। इस समय सब मुहल्ले के तथा घर के लोग उपस्थित थे। पहले तो इस विधि-विधान पर काना-फूसी होती रही, परन्तु सदानन्द दत्तचित्त हो अपने स्थान पर बैठा यज्ञ में भाग ले रहा था। उसे इस प्रकार देख अन्य लोग भी चुप कर गए और देखने लगे कि आगे क्या होता है।

जब अग्नि प्रदीप्त होने लगी तो सदानन्द को अपने पीछे सर-सर का-सा कुछ शब्द सुनाई पडा। पडित बोल रहा था, 'ओं भूर्भुवः स्व. • • •।" सदानन्द जलते कपूर को कुड में डालने लगा था कि

उसके हाथ के आसन पर रखी तस्वीर एक ओर हट गई और शान्ति वहाँ आकर बैठ गई। पंडित मन्त्र बोलता-बोलता चुप कर गया और सदानन्द हँस पड़ा। पश्चात् एक कलुछी उसके हाथ में दे कर बोला "जैसे मैं करूँ वैसा करती जाओ।"

यज्ञ समाप्त हुआ। पंडित जी ने आशीर्वाद दिया और कहा, "दिन भर का भूला हुआ सायंकाल भी यदि घर आ जाए, तो बधाई का पात्र मानना चाहिए।"

सब ओर से बधाइयाँ मिलने लगीं और मित्र-सम्बन्धी शान्ति की झोली में शकुन (फल-फूल, मिठाई, रुपये आदि) डालने लगे।

इसके पश्चात् जब पति-पत्नी एकान्त में मिले तो शान्ति ने यज्ञ की बात स्मरण कर कहा, "आपका समाज विचित्र है। आप तो तस्वीर से ही काम चला लेते हैं।"

"हाँ! जब लोग परमात्मा की तस्वीर रख, उसमें परमात्मा का अस्तित्व मान पूजा-पाठ कर लेते हैं, तो शान्ति देवी की असली तस्वीर से काम क्यों नहीं चल सकता था?"

शान्ति को गिरजाघर में हज़रत यसु मसीह और वर्जिन की तस्वीर की बात स्मरण हो आई। उसके मन से संशय दूर हो गए।

इस पर भी सदानन्द ने कहा, "देखो शान्ति! समाज के सब लोग एक ही स्तर के बुद्धिशील नहीं होते। वे वास्तविक बात और आडम्बर में भेद नहीं कर सकते। उनके लिए रस्म-रिवाज मुख्य और सिद्धान्त गौण हो जाते हैं। परन्तु महापुरुष इन रस्मों के आचरण को जब धारण भी करते हैं, तो समाज के उस निम्न कोटि के सदस्यों के लिए ही, जिनको अपना मार्ग स्वयं बनाना नहीं आता।

"देखो! हमने मजिस्ट्रेट के समक्ष वचन लिया था, परन्तु हमारे वचन की कीमत तब समझी गई, जब हमने उसके सामने हस्ताक्षर किये।

"गिरजाघर में हमने वचन लिया, परन्तु पादरी साहब ने फिर हमारे हस्ताक्षर करवाए।

"इसी प्रकार यहाँ दो सौ उपस्थित बन्धु-बान्धवों के समक्ष हमने वचन लिया और यह वचन तब तक नहीं माना गया, जब तक हमने यज्ञ नहीं किया।

"मैं तो सबमें एक ही बात समझता हूँ। मुख्य वचन था, शेष समाज के बनाए आडम्बर हैं।"

शान्ति ने मन की एक बात, जो आज वह दिन भर मनन करती रही थी, इस समय प्रकट कर दी। उसने कहा, "मुझको कुछ ऐसा भास हो रहा है कि यह जो कुछ मैं देखती हूँ, यह आपकी विशेषता है। वैसे तो हिन्दू-समाज क्या और ईसाई समाज क्या, यहूदी क्या और मुसलमान क्या, सब के सब रूढ़ियों में फंसे हैं। यदि आपकी नैतिकता यहाँ न होती, तो आपके भाई-बन्धु, हिन्दू होने पर भी मुझको धक्के मार-मार कर यहाँ से निकाल देते।"

'तुम ठीक कहती हो। साधारण जन तो मट्टी का ढेला है। बनाने वाला कुम्हार, जो चाहे इनसे बना लेता है। इस पर भी एक बात तुमको समझनी चाहिए। यदि मैं गिरजाघर में घुटने न टेकता और सीधा खड़ा होकर अथवा बैठकर ही प्रार्थना करना चाहता, तो क्या होता? विचार करो और बताओ। यहाँ तो पंडित मान गया था कि तुम्हारे स्थान पर तस्वीर भी रखी जा सकती है और उसने यज्ञ आरम्भ कर दिया था।

"मुझको विश्वास था कि तुम आओगी। मैं तुमको साधारण मनुष्यों की भाँति मट्टी का ढेला नहीं समझता था। इस पर भी यदि पूर्ण यज्ञ में तुम्हारी तस्वीर पड़ी रहती और तुम नहीं आतीं, तब भी किसी का साहस नहीं था कि मुझको हिन्दू से अहिन्दू बना देता।

"हम मानव हैं। मानव मननशील जन्तु है। मनन से जो बात सिद्ध हो, वही मानव धर्म है।"

× × ×